ISSN : 2350-0441

Shodh Chetna

शोध चेतना

The International Registered Research Journal

Year - 2 **Jan. to March, 2016** **Volume - 1**

Chief Advisor
Ajaya Srivastava
Librarian, State Central Library, Rewa

Chief Editor
Sushil Kumar Kushwaha

Honourary Editor
Dr. Sanjay Shankar Mishra
Professor and Head, Department of Commerce
Govt. T.R.S. College, Rewa (M.P.)
Dean, Faculty of Commerce, A.P.S. Univ.Rewa (M.P.)

Dr. Smt. Poonam Mishra
Professor, Department of History
Govt. T.R.S. College, Rewa (M.P.)

Editor
Dr. Surya Naryan Gautam
Vedacharya
Goverment Sanskrit College, Rewa

Managing Editor
Harsh Kushwaha

- The persons holding the posts of the Journal are not paid any salary or remunaration. The Journal's work is purely academic, non political, posts of Journal are honorary.
- The Journal will be regularly indexed and four issues will be released every year in (January to March) - 1, (Apr. to Jun.) - 2, (July to Sept.) - 3, (Oct. to Dec.) - 4

Editorial Board

Shri Narendra Shashtri
Ved Pravakta, Arya Samaj, **Singapore**

Dr. Umakant Mishra
Prof. & HOD (Sanskrit)
T.R.S. College, **Rewa**

Dr. D. N. Tripathi
Associate Professor & HOD (Sanskrit)
Dharma Samaj P.G. College, **Aligarh**

Dr. Narendra Kumar Gupta
Professor, Department of Law
Himachal Pradesh University, **Shimla**

Dr. Vinod Tiwari
Prof. & HOD of Law
Rajeev Gandhi Law College, **Bhopal**

Dr. (Major) Vibha Srivastava
Professor & Head, Department of History

Dr. Mahendra Mani Dwivedi
Prof. Department of History
Govt. Girls P.G. College, **Rewa**

Dr. Sudha Soni
Prof. Department of History
Govt. Girls P.G. College, **Rewa**

Prof. Pratibha Srivastava
Prof. & Head, Department of Sociology
Govt. Girls P.G. College, **Shahdol**

G.H. PUBLICATION
121, Shahrarabag, Allahabad-211 003

Guidelines to the Authors

Manuscripts of research paper : It must be original and typed in double space on the one side of paper (A-4) and have a sufficient margin. Script should be chekced before submission as their is not provision of sending proof. It must include Abstract, Introduction, Methods, Results and References. English manuscripts must be in Times New Roman font, font size 12 and in double spacing. Hindi manuscripts must be Kruti Dev 010 font, font size 14 and in double spacing. All the manuscripts should be in two copies and in **CD/e-mail : ghpublication@gmail.com**, with a cheque of Rs. 1000 only in favour of G. H. Publication, also for Registration. Manuscripts should be in Microsoft word program. Authors are solely responsible for the factual accuracy of their contribution.

© *Publishers*

Registration Fee : **Rs. 1000.00 (One Thousand)**

Membership Fee :

Single Copy	**Rs. 350.00 (Individual)**	**$ 10**
	Rs. 500.00 (Institution)	**$ 15**
Annual (4 Issues)	**Rs. 1200.00 (Individual)**	
	Rs. 2000.00 (Institution)	

Mode of Payment :

DD/Cheque/Cash should be sent in favour of

G. H. PUBLICATION
Union Bank of India
Chowk, Allahabad-211 003
A/c. No. 394301010122432
IFSC-UBIN 0539431

स्वामी, मुद्रक एवं प्रकाशक : सुशील कुमार कुशवाहा द्वारा 'शोध चेतना', जी.एच. पब्लिकेशन, 121 शहरारा बाग, इलाहाबाद-211 003 से प्रकाशित एवं श्री विष्णु आर्ट प्रेस, 332/257, चक जीरो रोड, इलाहाबाद-3 से मुद्रित। प्रधान संपादक : सुशील कुमार कुशवाहा, (M) 09329225173, E-mail : ghpublication@gmail.com

जनरल में प्रस्तुत विचार और तथ्य लेखक का है, जिसके विषय में प्रकाशक, मुद्रक एवं सम्पादक मंडल सहमत हो, आवश्यक नहीं। सभी विवादों का न्यायिक क्षेत्र इलाहाबाद रहेगा।

ISSN : 2350-0441

विशेष आवश्यक सूचना

आपको सूचित करते हुए हमें हर्ष की प्रतीति हो रही है कि
हमारी त्रैमासिक, अन्तर्राष्ट्रीय पंजीकृत पत्रिका

''शोध-चेतना''

में प्रकाशित माननीय लेखकों के शोध-पत्र विभिन्न विश्वविद्यालयों (केन्द्रीय/राज्य), महाविद्यालयों (शासकीय/अशासकीय), शैक्षणिक संस्थानों एवं अन्य बौद्धिक मठों, आश्रमों/शोध-संस्थानों के पुस्तकालयों में अवरनत् रूप से भेजी जा रही है जिससे, इन शोध दृष्टियों से

'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय'

का

उद्देश्य पूर्ण हो सके।

...प्रकाशक

आज ही आदेश करें।

अप्रकाशित मौलिक शोध-पत्र, शोध प्रबन्ध, पुस्तक समीक्षा एवं पुस्तकों के प्रकाशन हेतु सम्पर्क करें :-

जी.एच. पब्लिकेशन

121, शहराराबाग, इलाहाबाद-211 003
e-mail : ghpublication@gmail.com
Ph. : 0532-2563028 (M) 09329225173

सम्पादकीय

ज्ञान का अर्थ उस प्रकाश से है जो किसी बाह्य पिण्ड से नहीं अपितु मानव के आनतरिक जगत् से प्रादुर्भूत होता है। वह निरन्तर विस्तार को लिए हुए जीवन पथ पर अग्रसर रहता है। आज ज्ञान प्राप्ति के संसाधनों की भीड़-सी लगी हुई है; एक से बढ़कर एक संसाधन सुलभ हो रहे हैं। जिनके आगोश में चिंतक, विचारक और अध्येतावर्ग पूर्णरूपेण समर्पित से दिखाई दे रहे हैं। जिसका सकारात्मक प्रतिफल यह भी दिख रहा है कि, अध्ययन के नवीन क्षेत्रों का निरन्तर विकास प्रारम्भ है तथा प्राचीन स्थापनाओं तथा सिद्धान्तों पर पुनर्विचार या चिंतन, मंथन को गति प्राप्त हो रही है। ज्ञान के अनुप्रयोग की मांग दिनोंदिन बढ़ती-सी दिखाई दे रही है। आज नये दौर में विशेषज्ञता की परिभाषा तथा उसकी परिधि में भी आमूलचूल परिवर्तन दिखाई दे रहे हैं।

स्वयं अर्जित ज्ञान की अभिव्यक्ति के संसाधनों की खोज करता हुआ मानव आज चित्रलिपि से आगे बढ़ता हुआ तरंगलिपि (ई-मेल) और फिर अन्तर्जाल (इण्टरनेट) तक पहुँच चुका है। ऐसे प्रतिस्पर्धी काल में बने बनाये खाँचों से नवसृजन संभव नहीं। अतः आवश्यकता है नवोन्मेष की, जिसके लिए खोजी पत्रिकायें उच्च शिक्षित जनों अर्थात् चिंतकों/विचारकों को अवसर प्रदान करती हैं। जिससे नवीन तथ्यों की उद्भावनाएँ निरन्तर उद्गमित होती रहें। हम चिंतकों/विचारकों से आशा करते हैं कि, नवचिंतन का उपहार दे इस 'शोध-चेतना' पत्रिका को सहयोग प्रदान करते रहेंगे तथा पाठक महानुभावों से भी साग्रह निवेदन है कि, पत्रिका में छपी सामग्री का अध्ययन कर भरपूर लाभ लेंगे।

डॉ. सूर्य नारायण गौतम
सम्पादक

SHODH CHETNA – YEAR-2 (JAN. TO MARCH., 2016) VOL. 1
ISSN : 2350-0441

अनुक्रम

1. **Scenario of Our Growing Economy** 9
Dr. Sanjay Shankar Mishra, Dr. Sanjay Pathak

2. **"Science is a Boon or Curse for Human-being"** 16
Smt. Geeta Manchanda

3. **काव्यशिल्प का प्रतिमान 'वाल्मीकि रामायण'** 19
डॉ. उमाकान्त मिश्र

4. **अभिलेखों के आधार पर उत्तर मौर्यकालीन आर्थिक स्थिति का वर्णन** 23
डॉ. विशाल सोनी
डॉ. राजेश प्रसाद सोनी

5. **आंचलित राजवंशों का इतिहास (गढ़ा-मण्डला के गोंड़ राजवंश के संदर्भ में)** 29
कृष्ण कुमार नागवंशी

6. **संस्कृत साहित्य में रस का स्वरूप** 34
डॉ. अरविन्द कुमार

7. **महादेवी वर्मा के काव्य में दृढ़ संकल्पशक्ति, एक प्रेरणादायक स्रोत** 37
उमेश कुमार 'निराला'

8. **वैदिक वाङ्मय में 'मोक्ष धर्म'** 41
डॉ. संध्या कुमारी

9. **महिलाओं के उत्थान एवं विकास में गांधी जी के विचार (भारतीय विधि के संदर्भ में)** 45
डॉ. विनोद तिवारी, बीरेन्द्र कुमार तिवारी

10. **संस्कार एवं जलोपयोग (सन्दर्भ-पारस्कार गृह्यसूत्रम्)** 54
डॉ. द्वारिका नाथ त्रिपाठी

11. **संस्कृत क्रियावाची शब्दों के मौलिक अर्थ एवं प्रयोग** 57
डॉ. सूर्य नारायण गौतम

12. **बघेलखण्ड की धार्मिक स्थिति एवं समाज (शैव एवं वैष्णव धर्म के विशेष संदर्भ में)** 62
डॉ. प्रो. विभा श्रीवास्तव

13. **विश्व ज्ञान के विकास में उपनिषदों का योगदान** 67
डॉ. अनिरुद्ध कुमार पाण्डेय

14. **लोकतंत्रात्मक व्यवस्था में सूचना का अधिकार अधिनियम** 69
डॉ. अनुपम सिंह, डॉ. संदीप कपूर

15. **महाराजा गुलाब सिंह की न्याय व्यवस्था** 72
प्रस्तुतकर्ता : डॉ. महेन्द्र मणि द्विवेदी

16. **बालश्रम एक गंभीर समस्या** 75
डॉ. प्रतिभा श्रीवास्तव

17. बदलते मानव मूल्य एवं पर्यावरण 70
डॉ. रमाकान्त त्रिपाठी

18. उच्च शिक्षा रीवा संभाग के शासकीय महाविद्यालयों में ग्रंथपालों की स्थिति 84
डॉ. एस.पी. सिंह, राजकुमार कुशवाहा

19. भारतीय नई आर्थिक नीति, कार्य एवं समाज पर प्रभाव 89
डॉ. राम किंकर पाण्डेय

20. 'दहेज' तथा दहेज प्रतिषेध अधिनियम 1961 92
डॉ. सुशील कुमार मिश्र

21. देश में औषधि मूल्य नियंत्रण प्रणाली 98
डॉ. एस.पी. पाण्डेय

22. प्राचीन भारत की ग्राम पंचायतों का आधुनिक पंचायतीराज व्यवस्था पर प्रभाव 104
डॉ. नीरज मिश्रा

23. रीवा जिलान्तर्गत महाविद्यालयीन ग्रन्थालयों की स्थिति एवं शिक्षा पर प्रभाव 109
रत्नेश सिंह बघेल

24. वैश्विक समाज की सुसंस्कृति संरचना में साहित्य का योगदान 116
अश्विनी सिंह

25. पंडित सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' का महाप्राणतत्व 119
डॉ. अजय शुक्ल, दिनेश कुमार पाण्डेय

26. किरातार्जुनीयम् में द्रौपदी की मनःस्थिति का मूल्याङ्कन 121
राजीव कुमार शुक्ल

27. वर्तमान परिप्रेक्ष्य में पर्यावरण का संरक्षण 125
संगीता

28. योग का महात्म्य 129
योगेश्वर कुमार पाण्डेय

29. मेघदूत में श्रृंगार का वैशिष्ट्य 133
श्यामाचरण उपाध्याय

30. महिला उद्यमियों की आपेक्षाएँ 138
हरिओम शुक्ला

31. ''हिंदी के प्रचार प्रसार में साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं का योगदान'' 145
अमृता केसरवानी

32. भारतीय कृषि पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव एवं स्मार्ट कृषि तकनीकियाँ 153
शिव प्रसाद विश्वकर्मा, एस. पी. वर्मा

33. भारत में भैंस से माँस उत्पादन : एक समीक्षा 158
एस. पी. वर्मा

34. ग्रामीण क्षेत्रों से कौशल पलायन का ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर आर्थिक प्रभाव 163
डॉ. जे.पी. सिंह

SHODH CHETNA – YEAR-2 (JAN. TO MARCH, 2016) VOL. 1
ISSN : 2350-0441

इस भौतिक जगत में हर व्यक्ति को
किसी-न-किसी प्रकार के
कर्म में
प्रवृत्त होना पड़ता है।
किन्तु
ये कर्म ही
उसे इस जगत से
बाँधते या मुक्त कराते हैं।
निष्काम भाव से परमेश्वर की प्रसन्नता
के लिए कर्म करने से
मनुष्य कर्म के नियम से
छूट सकता है और आत्मा
तथा परमेश्वर विषयक
दिव्य ज्ञान प्राप्त कर सकता है।

कर्मयोग-गीता

वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है।
वेद का पढ़ना-पढ़ाना
तथा
सुनना-सुनाना
सब आर्यों का परम धर्म है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती

SHODH CHETNA – YEAR-2 (JAN. TO MARCH, 2016) VOL. 1
ISSN : 2350-0441

SCENARIO OF OUR GROWING ECONOMY

❒ Dr. Sanjay Shankar Mishra*
❒ Dr. Sanjay Pathak**

ABSTRACT

Industries help in the growth of economy of the country. People can easily earn their livelihood when natural resources are utilized in proper manner. Large population of our country depend on agriculture. We are not using modem tools for agriculture in compare to developed countries. People are going in urban area in search of work. Unemployment and slums are major problems in major cities. The proper education guide people in right direction. Cottage industries are providing work to large number of people. In our country rich people are becoming rich day by day in compare to poor people. Globalization and liberalization has brought many changes in business. Cooperative is solving many problems of the people. It is necessary to promote products of cottage industries for creating employment in the country. Government has to focus on agriculture for changing economical conditions of our country. Agro based and cottage industries are suitable for large population. These industries carr'easily develop in rural area. They require protection from large scale industries. This isright step for bringing changes in villages. When condition of villages will improve then it is not go required to go in cities for work. It is necessary to make village self independent.

(1) Introduction

The growth in economy will create jobs. Government has to motivate entrepreneurs to invest in industries and provide suitable facilities for this purpose. This will bring change in the rate of employment in country. Large scale industries, small scale and cottage industries are important for creating jobs. Resources are utilized properly so that maximum benefit obtained. Education is also important for development of people. The trend in business has change due to globalization. Industries have to development in rural area and small works should not be neglected. ITI and other job oriented courses provide work to large number of people. There is need to focus

* Professor & Head (Commerce Deptt.), Govt. T.R.S. (Auto) College, Rewa (M.P.)
** Asst. Professor (MBA Deptt.), RIT, Rewa (M.P.)

on small works for providing employment to the people. The different self employment programmes are to be started by government. Animals are also resource for many industries. Repairing works also provide work to the people. Job oriented course are important in present scenario. This will create interest in the students.

(2) Faces of economy

The people want to establish large scale industries for maximum profit. Illiteracy as well as poverty effect the economy of the country. Gandhiji had said that there is enough to meet every body's need but not to meet every body's greed. Natural resources are limited in every country. People can survive easily when resources are utilized in proper manner. It is not possible that every body have high standard luxury life. The desire of some people to become rich has created pollution, poverty, backwardness, wide gap between poor and rich and crime in the society. Food, cloth, house, education, health and entertainment facilities are required by common man. Pandit Sri Ram Sharma Acharya had said in July 1967 "I want to make generation udhogjivi not bhikshajivi". There is inherent inner potential in all individual which is require to develop.

We are mainly agricultural country. A large percentage of population depends on agriculture. About 16% world population is present in our country. It is fact that population in developed countries are less in compare to developing countries. Machines are used for mostly work in advanced countries. The aim is to complete work with in time and profitably. This reduces work but not unemployment. In old days India was famous for its handicraft; rural industries and village were self independent.

Before independence 80 percent population belong to villages. Data reveal more than 75 percent people are migrated in city after 50 years. This has raised population of slums in urban area. According to census about 25 to 30percent urban population are in slum area. This percentage is 50 percent in Mumbai and 40percent in Delhi. Large scale industries are hampering the progress of cottage industries. The unemployment in our country is growing faster than population of the country. There are more than 4 crore unemployment in our country.

In our country more than 65percent population belong to villages. The changes in the villages will bring change in our economy. Agro based industries are base of economic power. In present time wide gap is growing rich and poor people. The rich people are becoming· rich day by day due to exploitation of low level people. Education is necessary for all people particularly for poor people. They will learn how utilize their resources. The good result will come when people work according to their nature. Dignity toward work is important for success.Capacity to work hard come through practice. Good knowledge is necessary for starting own business.

(3) Economic growth

The small number of people has become rich and prosperous due to wrong policy of government. They are utilizing loans, grants, discount etc provided by the government. There is different conditions of the poor people. The economic condition in last 50 years is in favour of upper level people of society. the banks are providing loan in easy manner and utilizing their profits. The people are poor due to lock of skill and employment. In 1991 employment growth rate was 1.44% which was further decreased. The population is growing at1.6percent per year. Globalization and liberalization has changed pattern of business. Multi nationtional companices require educated and skilled worker. The work which was completed by eight people can be easily completed by two in this computer age.

The policy of multinational companies is to provide maximum salary to some people of the management and minimum to worker. The management take maximum work from their worker. It is require to focus on agriculture to improve employment in rural sector. There is no short cut method for success. It is not easy to provide work to the large number of people. There are some crops which are sown more than two times in a year. They are also useful for the animals.The production of dalhan and tilhan should also increased. When there is change in pattern of agriculture then only condition of village will improve. Manures and pesticides have changed fertility of land. Agriculture is back bone of our economy. Farmers are growing vegetables, fruits and other cash crops. They are providing these things to the other industries for further processing. Animals are also depended on agriculture.

(4) Cottage industries

They are easily runned by family member and also not require large investment. They require raw material which are easily available in rural area. Right guidance is important for growth purpose. Cottage industries provide solution for the countries having less capital investment and high labour intensity. These industries can be run in every house and provide work to large number of people. In rural area people are illiterate and poor. They can handle simple machines easily. The industries will be given right direction so that common man earn their livelihood. It is fact that these industries are not able to produce attractive products. They are not able to compete with large scale industries so they are declining. Multinational companies are advertising their products through different media. Many products of these companies are not good for health. In cottage industries more pure products can be produced. It is required to motivate people for buying product of these industries. The produces which are in small packets are sold easily in compare to large one. The poor people are not able to spend on good quality products. This is one of reason that many industries are producing product in small package.

The people in rural area are facing more problems of employement. People find more work in urban area in compare to rural. In our country about 72% prop le are not skilled in particular profession. Development will not take place when there is no work. In our country cottage industries are better solution for solving problem of employment. This will raise average income of rural people. This can be started easily even by the poor people. The people of rural area can be employed in some work and they will become skilled in particular area. It is must to give right direction to the skill of people. It is true that cottage industries are not able to produce attractive product in compare to large scale industries.They should produce only those products which are not manufactured by cottage industries. It is necessary to change habits of people for increasing demand of these industries. They are producing large number of products which are required by people. People are facing various problem like lack of capital and other facilities, adverse situation, competition, non cooperation etc.

The large scale industries should produce only those products like iron, steel, heavy electrical, aero plane, railway, cement etc which are not manufactured by cottage industries. These industries should be protected from multinational companies.They should produce only those products which are not manufactured by cottage industries. The progress in nation will take place when every body have work. It is not easy to manage raw materials and labour for large scale industries.These industries will alone not solve the problem of developing countries.Cottage industries are providing livelihood to large number of people. They are helpful in solving problems of unemployment in developing countries. Migration of rural people in cities can be checked by cottage industries.

In present time demand of products has increased due to large number of population. Large scale industries create air pollution which increase temperature of atmosphere and air pollution. Cottage industries can be run in houses both by men and women. This fullfill demands of local people in rural area: The products that are produced by cottage industries should be given preference. It is necessary to raise feeling of swdeshi for using products of cottage industries.Gandhiji and other worked hard for promoting khadi industries.Large scale industries are creating pollution and also hurdles for the path of small scale and cottage industries. There should be cooperation in the work between the industries. Industrialization has effected cottage industries of our country. They are not able to compete with large industries. Cottage industries will develop when there is focus on requirement of local area. The demands of such area will be easily fulfilled by products of cottage industries.

(5) Cooperative

This is important from economic point of view. This save people from exploitation. Cooperative movements increases

economic development and employement. The group of 8 to 10 people having similar thoughts and economic condition should make cooperative. They collect money and invest for particular work. Combined effort and skill bring good result. This also arises self confidence in the people to fight against corruption. Capital can be utilized in better way through combined effort. This help large number of villagers who are illiterate and poor. Cooperative should be establish to sell products.

Khadi gramoudyog are becoming popular day by day. It is better to focus on products which are easily sold in the market. In developed countries mostly work are done by machines. .The work is more in compare to labour. In developing countries people are poor due 'to unemployment. Cottage industries produce product that are sold in rural area. The old men and women can earn their live livelihood through cottage industries.

(6) Other works

Animal breeding is also good occupation. Cows are kept for various purpose. Tree plantation is also proving work to large number of people. The production will increase when lands are used properly by the people. When industries of cities are spread in villages then large number of employment can generated. There are so many works which can be started in small houses or cottage industries. There should be cooperation in the work between the industries. Industrialization has effected cottage industries of our country. They are not able to compete with large industries.

Large number of people can be engaged in repairing work. This help III eliminating poverty. Repairing of cloth, utensils, cycle, tools, sewing machine are various works. This increases life of the products. There are some machines which are easily run even by handicapped people. According to requirement of time we want to complete our work. Many products can easily prepared in cottage industries. Animals are useful for many purpose. It is essential to find solution for the slogan 'Garibi hatao'. The poor people can easily engaged in cottage industries. Large scale industries are creating pollution and also hurdles for the path of small scale and cottage industries. Animals are used in agriculture. The progress in nation will take place when every body have work. In our country small number of people are living very luxuries life at cost of other work. It is fact that economy of our country will improve only when condition of villages improve. It is not possible to neglect them. Manpower, electricity, heavy machines, capital are required in large scale industries.

We know that over loading of vehicles are not good. Figure of our body will be. changed when any part of body will become too fat. It is believed that unwanted fluid has accumulated so it may burst. The truth is that if 80% population will be in working condition then only development will take place. In many places poor people are neglected in our society. In present time villagers in rural area want to go in cities.

When people will become financially sound in villages then they will not like to leave their native place. When there are cottage industries in all houses then only village will become self independent.

In swadeshi movement there IS fight against the product of multinational companies. Villages should be self independent in foods, pulses, bakery, cloth, and other various products. It is necessary to start different self employment programmes even in slum area of cities. Production and marketing division in any business are required to focus in any business. There are different works in self employment programme. This will provide path for large number of people' and change economy of our country. The nature has given enough to meet need of the people. The most important thing is how we are utilizing our natural resources. There is no shortage of work if small works are not neglected. The large population of our country depend on agriculture and industries. Self employment is good solution for unemployment.

Cooperative are playing big role in our society. Plantation and animal breading is also providing work to large number of people. Repairing work is improving the economical condition of the people. Government should made provision that large scale industries should manufacture only those products which cannot be prepared by cottage industries. The condition of poor people in most backward and rural area should have to improve. It is necessary to make village self independent. Education helps in removing poverty of people. Training help in becoming self independent.

(7) Conclusion

The growth in agriculture and industries will change the economy of any country. It is require to use resources in the proper way. The unemployment of any country can be solve by cottage industries and agriculture. It is necessary to promote products of cottage industries for creating employment. The mind of people work in proper way when they have suitable work. Job oriented courses are necessary to focus. Government should take proper steps for protecting cottage industries from large scale and multinational companies. Self employment programmes are important for creating employment.

There is require to focus on research work and self employment. Facilities should be provided to the villages so that they become self independent. Student should be given proper guidance for making then skilled. The large number of people in our country are engaged in agriculture and industries. We should not improve our economical conditions without improving villages.

(8) REFERENCE

1. Agarwal DC, Indian Economy, Sahitya Bhavan Agra,1992.
2. Datt Ruddra, Sundharam KPM, Indian Economy, SChand and Company Limited Ramnagar,New Delhi,1995.

3. Dhingra C Ishwar, The Indian Economy Environment and Policy, Sultan Chand and Sons, New Dehli, 2001.
4. Mishra SK, Puri V.K, Problems of Indian Economy, Himalaya Publishing House,Mumbai,2000.
5. Sivayya K.V, Das V.B.M, Indian Industrial Economy, SChand and Company Limited, New Delhi,2002.
6. Sundaram. SatyaI, Rural Development Himalaya Publishing House, Mumbai 1997.
7. SahayaA,SharmaV, Entrepreneurship and New Venture Creation, Excel books, New Delhi,2008.
8. Agarwal AN, Indian Economy; Problems of development and planning, Wishwa Prakash an, New D elhi,1997.

SHODH CHETNA – YEAR-2 (JAN. TO MARCH, 2016) VOL. 1
ISSN : 2350-0441

"SCIENCE IS A BOON OR CURSE FOR HUMAN-BEING"

❒ Smt. Geeta Manchanda

ABSTRACT

Science is useful of human-being but when we use it for our own profit then it become curse for society and nation. If any country used ammunition for safety than it is boon for nation but if any terrorist used ammunition for destroy any country or men than science is curse for human-life.

Science gives us so many inventions for expending our life happily. Many products are so good and confortable for us. Science gives us power of atom-bombs and Hydrogen-bomb also but if we use it for welfare of our society than nothing is bad in the world of sicence. There are two way of our life that we lived.

Most probably all the people of this beautiful earth wanted to happily. Thre are different type of peope in the world. Some people have a best in nature and behaviour so they are passing their lives by feeling of sympathy and such a people are helpful in nature. They are always ready for helps anyone in everywhere where the lives. They help rich or poor people in same way. Their good behaviours makes them best in society. After some time they became great man of nation because of their helping nature.

Some people of this beautiful earth are selfish and cruel in nature. They only lives for themselves and never solve anyone's problem in society. They think about only their own's family and own's kids. They only knows about the profit and gains of the life. So they only wanted to live for their ownself. They think only for earning too much money for themselves. They have not any feeling of sympathy and humanity. They are not helpful in nature.

So they are not as good as first type of people. They have not any feeling for nation or this world. They are not worried about any problem of society or nation or the world. They lived like wells ... so that they ahve not any responsibility about their society or their country because they are such a cunning fellow and they are friend of money only.

* B.A. English (Hons.), M. 08090462358

There are so many scientists are provided in this world. They invented daily some new electronic goods or new inventions of mobile, computer, internet or cooking system. There are so many electronic machines are in the world that we use in our daily life for passing our life comfortably. So that we save our time and live happily in society. In English language there is a famous proverb that "All that Glitter's is not gold". It is true in our life also because the good's which we use for our luxuries are best but these luxurieres goods are not best for our health also. Because we people become lazy by useing these products and we forget that have we do labour hard in our life. So these products are gives us comfortable life but not good health. By using these products we forget that we are only simple man who came on this earth for doing our bests. We are completely forget our responsiblities and duties about our life and we forget this curious problem.

We become selfish and proud for using these luxurious products. So science is not only boon for this world but it is also a curse.

If we see in our ancient history than we find that many times ago we people are living our life happily and safely in our society and nation. But today we live with fear in our home also because of terrorism and we have always lived fearly and worringly about safety of our family. We are not getting sleep calmly and peacefully. So that it affected our health and we because ill in whole our life-time. So science is boon also but it is curse for human beings health. Someone say in english literature that Health is Wealth. If our health is good than we must live happily with our family.

Atom bombs, Hydrogen bombs are best for security of our country but if we use these boms for any country or any town than this invention is curse for human-being. So all inventions are boon also but if we people use these products for torturing anyone that it become curse for society or nation or this world also. Almighty gives us this beautiful earth for living happily and peacefully but if we are it for our own profit only than it is not fair for us. The human-beings, all authorities are not hidden by God or Almighty but it is true that God .. all our feelings and mentality. He knows about every ... of human life. Our all activities are reason of God's inspiration. God inspire us for our works. All activities of science are inspiration of Almighty because this world is only products of God. We never knowes about science of God who make this beautiful earth are decorated it by beautiful sky, flourers rivers, seas, and ... He makes all things of nature beautifully. Many beautiful flourers and trees and rainbow in sky clouds for raining and all fruits which we eat all vegetable and grains of the world. All these importants things are products of God space and universe, star's, moons and many savets which we yet by God are gift for us. If our body is fit for doing any work than we must live happilly in this beautiful

earth. But jealous feeling, and a cruel person never live happily and peacefully. So that such a people are not knows about beauty of nature. Our fit body is alos gift of God. Our eyes, our hands and our all organs of body are fit of Almighty who make us and send us on this earth. In all creatures of the world human-being is a important creature for Almighty because God built human being for doing good works not for fighting and doing fix in their life. But the aim of human-being is for found where such a kind of God lived in earth or in space. So that today people search it that where God lived and from where he mannage all the management of this beautiful earth.

If a scientist invent something for use of human-beings bests that it is his good feeling but if in world of science scientist do inventions for their own use and wanted that they torture people by their inventions than science become curse for every-one. So there are two picture of science. One in useful for human-being and second is curse for everyone so it is a depend upon thought of the peopel that how we use these products of science.

SHODH CHETNA – YEAR-2 (JAN. TO MARCH, 2016) VOL. 1
ISSN : 2350-0441

काव्यशिल्प का प्रतिमान 'वाल्मीकि रामायण'

❐ डा. उमाकान्त मिश्र

शोध सारांश

संसार की प्रत्येक विधा का अपना शिल्प होता है और शिल्प ही उस विधा की कसौटी माना जाता है। काव्य के हेतु में जो प्रथम बात कही गई 'काव्यं यशसे' अर्थात् काव्य का प्रथम उद्देश्य यश की प्राप्ति है तथा वह यश प्राप्त होता है काव्य के कर्त्ता और काव्यपाठक को। किन्तु केवल काव्य रचना और काव्य पाठ मात्र से यश प्राप्ति संभव नहीं है। उसके लिए आवश्यक है उस काव्य का शिल्प जिससे सहृदय के हृदय को आह्लादित करने में सहायता प्राप्त होती है। उदाहरण के लिए यदि महर्षि वाल्मीकि न होते तो शायद ही राम को आज जाना जाता किन्तु इसके साथ यह भी कहा जा सकता है कि, यदि राम जैसे सुपात्र नायक को वाल्मीकि ने यदि अपनी कविता (रामायण) का नायक न बनाया होता तो निश्चय ही वाल्मीकि को आज नहीं जाना जा सकता था। यह महर्षि का काव्य शिल्प ही है कि, उन्होंने सरलता सहजता, लालित्यादि गुणों की मंजुल श्रेणी का निर्माणकर एक ऐसे उदात्त गुण के प्रतिनिधि को आम जनमानस के सम्मुख उपस्थित कर देते हैं कि, सारा विश्व उन्हें पुरुष से पुरुषोत्तम मानने के लिए बाध्य हो जाता है। प्रस्तुत आलेख मे महर्षि वाल्मीकि द्वारा श्रीराम की जिस रूप मे प्रतिष्ठा की गई है उस दिव्य स्वरूप से अवगत कराने का लघु प्रयास है।

महर्षि वाल्मीकि आदिकवि हैं तथा वाल्मीकीय रामायण आदि महाकाव्य है। यदि वाल्मीकि न होते तो हम कवि के वास्तविक स्वरूप तथा अभिराम आदर्श को कहाँ से सीखते? और यदि उनकी प्रसन्न–गम्भीर रामायण हमें नहीं मिलती तो महाकाव्य के माहात्म्य तथा गौरव को कैसे पहचानते? कवि और काव्य के विशुद्ध रूप की कसौटी है–आदिकवि का परम पावन, माननीय तथा मननीय, आदि काव्य रामायण।

रामायण की भाषा सुन्दर, सरल, ललित, प्रांजल एवं परिष्कृत है। वाल्मीकि का भाषा पर असाधारण अधिकार है। वे प्रसंग एवं भावों के अनुरूप शब्दावली का चयन करते हैं। प्राचीन होने पर भी कालिदास आदि की भाषा के तुल्य प्रौढता एवं परिष्कार परिलक्षित होता है। यथा–सुमुखी नायिकावत् शरत्कालीन रात्रि की शोभ का वर्णन–

रात्रिः शशांकोदितसौम्यवक्त्रा,
तारागणोन्मीलितचारुनेत्रा ।
ज्योत्स्नांशुकप्रावरणा विभाति,
नारीव शुक्लांशुकसंवृताो।।1।।

वाल्मीकि के अर्थान्तरन्यास और सुभाषित अत्यन्त हृद्य, भाव–प्रवण, सहृदय–संवेद्य एवं व्यंजना–प्रधान हैं। यथा–

* प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष–संस्कृत शास0 ठा0 रणमत सिंह (स्वशासी) महाविद्यालय, रीवा (म0प्र0)

(क) सुलभाः पुरुषा राजन्, सततं प्रियवादिनः।
अप्रियस्य च पथ्यस्य, वक्ता श्रोता च दुर्लभः।।2।।
(ख) उत्साहवन्तः पुरुषा नावसीदन्ति कर्मसु।।3।।
(ग) कुलीनमकुलीनं वा, वीरं पुरुषमानिनम्।
चारित्रमेव व्याख्याति, शुचिं वा यदि वाऽशुचिम्।।4।।
(घ) आमं छित्त्वा कुठारेण, निम्बं परिचरेतु कः।।5।।
(ग) न परेणाहृतं भक्ष्यं, व्याघ्रः खादितुमिच्छति।।6।।

वस्तुओं का मानस–बिम्ब अतिशय विशद रूप में मूर्त करने की सामर्थ्य वाल्मीकि की कविप्रतिभा की महती विशेषता है। साथ ही, केवल वस्तुओं को ही नहीं, चिरनिर्वृत्त घटनाओं को भी प्रत्यक्ष घटित–सी होती हुई दिखाने की उनकी कविता की क्षमता वाल्मीकि के समय में ही पहचान ली गयी थी, इसीलिये उसके विषय में कहा गया है–

चिरनिर्वृत्तमप्येतत् प्रत्यक्षमिव दर्शितम्।।7।।

उनकी कविता को इसी विशेषता के आधार पर आलंकारिकों ने भाविक अलंकार की कल्पना की, जिसकी पारिभाषिक शब्दावली भामह ने रामायण की उपर्युक्त पंक्तियों से ही ली–

तद् भाविकमिति प्राहुः प्रबन्धविषयं गुणम्।
प्रत्यक्षा इव दृश्यन्ते यत्रार्थाः भूतभाविनः।।

पर वाल्मीकि की कल्पना भाविक, स्वभावोक्ति आदि अलंकारों की परिधि को तोड़ कर और आगे तक पहुँचती है। वह वस्तुओं के बाह्य स्वरूप को चीरकर उनके अन्तरतम को खोजती है। कहीं पर बाह्य तथा आभ्यन्तर दोनों दृश्यालेख एक दूसरे में घुलमिल जाते हैं, कहीं पर वस्तु का बाहरी और यथार्थ चाक्षुष बिम्ब धुंधला पड़ जाता है, और उसका आन्तरिक गुण उभर कर सामने आता है। इसीलिये वृत्तान्त या प्रसंग के विपर्यय के साथ अयोध्या, लंका या किष्किंधा नगरियाँ किस प्रकार विपरिवर्तित हो जाती हैं–इसका सजीव वर्णन वे कर सके हैं। अयोध्या नगरी का एक वर्णन हमें रामायण के एकदम प्रारंभ में मिलता है। यह बात ध्यान देने की है कि वाल्मीकि ने अपने काव्य का समारम्भ ही उस नगरी के वर्णन के साथ किया है, अपने किसी नायक के वर्णन के साथ नहीं। नगर के वातावरण और गंध को वाल्मीकि ने वहाँ अपने वर्णन में समा लिया है। इसके बाद राम के राज्याभिषेक के उपक्रम के समय इस वातावरण में निखार आता है, और फिर उनके वनवास की सूचना के साथ ही विषाद, क्षोभ और आवेग में वह नगरी उद्वेलित हो उठती है। राम फिर भी वन चले ही जाते हैं, और दशरथ के निधन के पश्चात् जब भरत नगर में प्रवेश करते हैं, तो वे उसके विपरिवर्तित परिवेश को दूर से ही अनुभव करते हैंः

अयोध्यायां पुरा शब्दः श्रूयते तुमुलो महान्।
समन्तान्नरनारीणां तमद्य न श्रृणोम्यहम्।।8।।

रामाणय में प्रायः सभी रस प्राप्त होते हैं। करुण श्रृंगार और वीर इनमें मुख्य हैं। करुण रस अंगी है, अन्य रस अंग। श्रृंगार के दोनों पक्षों–संभोग और विप्रलंभ–का वर्णन प्राप्त होता है। अनेक प्रसंगों में, मुख्यतः युद्धकांड में, वीर रस ही प्रमुख है। सीता–वियोग–वर्णन में विप्रलंभ श्रृंगार का सुन्दर एवं सजीव चित्रण है। सीता–परित्याग के बाद राम की दयनीय मानसिक स्थिति के वर्णन में करुण रस की स्रोतस्विनी का अमन्द प्रवाह प्रसृत होता है। इस प्रकार रस–परिपाक के कारण वाल्मीकि को रस–सिद्ध कवीश्वर (रससिद्धाः कवीश्वराः) कहा जाता है।

वाल्मीकि समग्र कविसमाज के उपजीव्य हैं, विशेषतः कालिदास तथा भवभूति के। इन दोनों महाकवियों ने रामायण का गाढ़ अनुशीलन किया था और इनकी कविता में हमें जो रस मिलता है उसमें रामायण की भक्ति कम सहायक नहीं रही है। कालिदास का श्रृंगार रस सर्वश्रेष्ठ माना जाता है, परन्तु उनका 'करुण' रस कम प्रभावशाली नहीं है। कालिदास ने उभयविध 'करुण' को उपस्थित

कर उसे सांगोपांग रूप से दिखलाया है। पत्नी के लिए पति के करुण का रूप हम रघुवंश के 'अज–विलाप' में पाते हैं और पति के निमित्त पत्नी की करुण परिवेदना 'रति–विलाप' के रूप में हमें रुलाती है। ताप से लोहा भी पिघल उठता है, तब कोमल मानव–चित्त सन्ताप से मृदु बन जायगा–क्या इस विषय में संदेह के लिए स्थान है? 'अभितप्तमयोद्यपि मार्दवं भजते कैव कथा शरीरिषु? कालिदास के इन करुण वर्णनों में मानव–हृदय को प्रभावित करने की क्षमता है, परन्तु भवभूति के उत्तर–रामचरित में तो यह अपनी पराकाष्ठा को पहुँच गया है। यह भवभूति का ही काम था कि उन्होंने सीता के वियोग में राम को रोते देखकर पत्थर को रुलाया है और वज्र के हृदय को भी विदीर्ण होते दिखाया है–अपि ग्रावा रोदित्यपि दलति वज्रस्य हृदयम्। भवभूति के करुण को 'एको रसः'–मुख्य रस, अर्थात् समस्त रसों की प्रकृति माना है और अन्य रसों को उसकी विकृति माना है। एको रसः करुण एव निमित्तभेदात्'– इस कथन के मूल को हमें वाल्मीकि के अन्दर खोजना चाहिये।

रामायण में हृदयपक्ष का प्राधान्य होने पर भी कलापक्ष की अवहेलना नहीं है। वाल्मीकि की भाषा उदात्त भावों की अभिव्यक्ति का समर्थ माध्यम है। छोटे–छोटे, प्रायः समासविहीन पदों में महर्षि ने बड़े ही सरस तथा सरल शब्दों के द्वारा अपने भावों की अभिव्यंजना की है। शाब्दी सुषमा की ओर महर्षि का ध्यान स्वतः आकृष्ट हुआ है तथा उन्होंने इसका प्रकटीकरण बड़ी सुन्दरता तथा भावुकता के साथ किया है। आनुप्रासिक शोभा के लिए एक पद्य का दृष्टान्त पर्याप्त होगा।

विनष्टशीतांबुतुषारपंको महाग्रहग्राह–विनष्टपंकः।

प्रकाशलक्ष्म्याश्रयनिर्मलांको रराज चन्द्रो भगवान् शशांकः।।

वाल्मीकि ने उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, अर्थान्तरन्यास आदि अलंकारों का विशेष प्रयोग किया है। ऋतु–वर्णनों में अलंकारों की छटा विशेष रूप से दर्शनीय है। यथा–बादलों में चमकती हुई बिजली की रावण से अपहृत छटपटाती हुई सीता से उपमा।

नीलमेघाश्रिता विद्युत् स्फुरन्ती प्रतिभाति मे।
स्फुरन्ती रावणस्यांके वैदेहीव तपस्विनी।।9

वसन्त–वर्णन में वायु के फूलों से खेलने की बहुत सुन्दर उत्प्रेक्षा एक गेंद के खिलाड़ी से की गई है। जिसकी गेंद कभी नीचे, कभी ऊपर और कभी बीच में होती है।

पतितैः पतमानैश्च पादपस्थैश्च मारुतः।
कुसुमैः पश्य सौमित्रे, क्रीडन्निव समस्ततः।।10

वाल्मीकीय उपमा अपने औचित्य, आनुरूप्य तथा रसानुकूल्य से आलोचकों का ध्यान बरबस खींचती है। उसकी बड़ी मार्मिक विलक्षणता है–मूर्त की अमूर्त पदार्थों से तुलना। अशोक वाटिका के एकान्त में बैठी हुई दयनीय सीता के चित्रण में वाल्मीकि ने उपमाओं का एक भव्य व्यूह खड़ा कर दिया है, जो साहित्य–जगत् में एकदम अछूती, नवीन तथा चमत्कारिणी है। शोक के भार से न्यस्त सीता धूमजाल से संसक्त अग्नि की शिखा के समान है। सन्दिग्ध स्मृति, विहत श्रद्धा, प्रतिहत आशा, उपसर्ग (विघ्नबाधा) से युक्त सिद्धि, कलुषित बुद्धि, नवीन अपवाद के कारण विनष्ट कीर्ति के साथ शोकमग्ना सीता की तुलना करने वाला कवि हमारे हृदय में दैन्य की भावना को तीव्र बना देता है (सुन्दर, 15 सर्ग, श्लोक 31 और 32)। सीता को देखकर हनुमान की बुद्धि सन्देह में पड़ जाती है, जिस प्रकार शास्त्र के अनभ्यास से विद्या नितान्त शिथिल बन जाती है और पद–पद पर सन्देह पैदा करती हैः–

तस्य संदिदिहे बुद्धिस्तथा सीतां निरीक्ष्य च।
आम्नायानामयोगेन विद्यां प्रशिथिलामिव।।

अलंकार से विहीन, सुषमा से हीन सीता को देखकर हनुमान जी ने बड़े कष्ट से पहचाना कि यही सीता है, जिस प्रकार संस्कार से हीन तथा अर्थान्तर (भिन्न अर्थ) में प्रयुक्त वाणी को सुनकर श्रोता बड़ी कठिनता से उसके स्वरूप को पहचानता है–

दुःखेन बुबुधे सीतां हनुमानलंकृताम्।
संस्कारेण यथा हीनां वाचमर्थान्तरं गताम्।।

इसी प्रकार उत्प्रेक्षा का प्रदर्शन भी बड़ा चमत्कारपूर्ण है। लंका–दाह के अनन्तर हनुमान अरिष्ट पर्वत के ऊपर जब चढ़ते हैं (सर्ग 56), तब वाल्मीकि ने उत्प्रेक्षाओं की झड़ी लगा दी है–एक से एक नवीन चमत्कारी उत्प्रेक्षा जिसे कवि की वाणी ने स्पर्श कर उच्छिष्ट नहीं बना डाला है। पर्वत के शिखरों से लटकने वाले मेघों के द्वारा प्रतीत होता है कि वह पहाड़ चादर ओढ़े हुए हैः–

सोत्तरीयमिवाम्भोदैः ष्ाृान्तरविलम्बिभिः।

जल की बाढ़ की गम्भीर गड़गड़ाहट के कारण वह पर्वत अध्ययन करता–सा प्रतीत होता है तथा अनेक झरनों के शब्दों से वह गीत गाता–सा मालूम पड़ रहा है।

तोयौघनिःस्वनैर्मन्द्रैः प्राधीतमिव सर्वतः।
प्रगीतमिव विस्पष्टं नानाप्रस्रवणस्वनैः।।12

अलंकारों का यह विन्यास पाठकों के हृदय में केवल कौतुक तथा चमत्कार उत्पन्न करने के लिए नहीं किया है, प्रत्युत यह रसानुकूल है–मूल रस का पर्याप्त रूप से पोषक, तथा संवर्धक है। रूपक की भी छटा कम सुहावनी नहीं है। तात्पर्य यह है कि रसमग्न कवि जान–बूझकर किसी शाब्दी शोभा या आर्थी छटा को अपने काव्य में रखने का प्रयत्न नहीं करता, प्रत्युत वे आप–से–आप उपस्थित हो जाते हैं तथा काव्य को चमत्कृत बनाते हैं। इस तथ्य को हमारे आलंकारिकों ने खूब पहचाना है और इसीलिए आनन्दवर्धन रसपेशल अलंकार के लिए 'अपृथक् यत्ननिर्वर्त्य' होना नितान्त आवश्यक गुण मानते हैं। रसात्मक अलंकार के लिए कवि को कोई प्रयत्न अलग से नहीं करना पड़ता। रसाविष्ट दशा में वे स्वतः आविर्भूत हो जाते हैं, यह हमारे आलोचकों ने वाल्मीकि की काव्य–कला के विश्लेषण से अवगत किया।

वाल्मीकि का प्रिय छन्द अनुष्टुप् है। अधिकांश श्लोक छन्द में ही है। किन्तु स्थान–स्थान पर, मुख्यतः सर्ग के अन्त में, इन्द्रवज्रा, उपजाति आदि छन्द आए हैं। पाश्चात्य विद्वानों ने रामायण की रचना श्लोकों अर्थात् केवल अनुष्टुप् छन्द में मानी है और श्लोक शब्द का अर्थ केवल अनुष्टुप् छन्द माना है। यह सर्वथा भ्रान्त धारणा है। संस्कृत में 'श्लोक' शब्द पद्यबद्ध किसी भी रचना के लिए है। यह अनुष्टुप् का भी पर्यायवाची है, जिसके कारण यह भ्रान्त धारणा हुई।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आदिकाव्य रामायण काव्यशिल्प का प्रतिमान है, यही कारण है कि इसके काव्यत्व का परवर्ती साहित्य पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा है।

सन्दर्भ–

1. रामायण (किष्किन्धाकाण्ड) सर्ग 30
2. रामायण 3. 37. 2
3. रामायण 4. 1. 122
4. रामायण 1. 109. 4
5. रामायण 2. 35. 16
6. रामायण 2. 61. 16
7. रामायण 1. 4. 16
8. रामायण 2. 65. 17
9. रामायण 4. 28. 12
10. वा.रामा. 4. 1. 13
11. वा. रामा. सुन्दरकाण्ड 15. 37
12. वा. रामा. सुन्दरकाण्ड 56. 28

SHODH CHETNA – YEAR-2 (JAN. TO MARCH, 2016) VOL. 1
ISSN : 2350-0441

अभिलेखों के आधार पर उत्तर मौर्यकालीन आर्थिक स्थिति का वर्णन

❐ डॉ. विशाल सोनी*
❐ डॉ. राजेश प्रसाद सोनी**

शोध सारांश

मौर्य वंश के बाद अनेक छोटे राजवंश अस्तित्व में आये। सत्ता परिवर्तन के बावजूद भी मौर्योत्तरकाल में आर्थिक प्रगति में अवरोध उत्पन्न नहीं हुआ, अपितु व्यापार व वाणिज्य में और अधिक प्रगति हुई। अभिलेख इस बात के साक्षी हैं कि राजाओं ने राज्य की अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ करने के लिए अथक प्रयास किये। उन्होंने आन्तरिक व्यापार के साथ–साथ विदेशी व्यापार पर भी पर्याप्त ध्यान दिया। मौर्योत्तरकालीन अभिलेख अलग–अलग ग्रंथों व पत्रिकाओं में प्रकाशित हैं। प्रस्तुत शोध पत्र में इन सभी अभिलेखों का अध्ययन कर इनके आधार पर मौर्योत्तरकाल की आर्थिक स्थिति पर प्रकाश डाला गया है।

मौर्य साम्राज्य के पतन के साथ ही भारतीय इतिहास की राजनीतिक एकता कुछ समय के लिए खण्डित हो गई। शुंग, कण्व एवं सातवाहन वंश का शासन स्थापित हुआ। देश के विभिन्न भागों में अनेक छोटे राजतंत्र एवं गणराज्य पुनः अस्तित्व में आये। उत्तर पश्चिमी मार्गों से हिन्द–यवन, शक, पह्लव एवं कुषाण आदि विदेशी आक्रांताओं ने आकर अनेक भागों में अपने राज्य स्थापित किए। ईसा पूर्व द्वितीय शती से लेकर तृतीय शती ईसवी के मध्य भारत की आर्थिक स्थिति का स्वरूप निम्नानुसार था–

कृषि

उत्तर मौर्यकालीन आर्थिक दशा श्रेष्ठ एवं उन्नत थी। कृषि पशुपालन आर्थिक जीवन के प्रमुख आधार थे। हाथीबाड़ा अभिलेख से विदित होता है कि उस काल में संकर्षण की उपासना लोगों में प्रचलित थी। संकर्षण का शाब्दिक अर्थ हल जोतना है। ऐसा प्रतीत होता है कि संकर्षण कृषि से संबंधित देवता थे। इसकी पुष्टि मूर्ति विधान से भी होती है। उन्हें हल और मूसल लिए हुए प्रदर्शित किया जाता है।[1] हिन्द–यूनानी शासक अगाथोक्लेज के एक प्रकार के कांस्य सिक्के पर बलराम को हल तथा मूसल के साथ प्रदर्शित किया गया है।[2] हाथीगुम्फा अभिलेख से ज्ञात होता है कि कलिंग नरेश खारवेल ने पिथुण्ड नगर को गर्दभों से जुतवाया था।[3] इस प्रकार उसने कृषि कार्य में रुचि ली। अभिलेखों से ज्ञात होता है कि उस काल में गेहूँ, जौ, धान, चना, मूली आदि की खेती की जाती थी।[4]

* प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.), E-mail: vishalsoni864@gmail.com, Mob: 9977437600
* पी.जी.टी., वाणिज्य, केन्द्रीय विद्यालय, ग्वालियर, Mob: 7049859300

सिंचाई के साधन

राज्य की ओर से सिंचाई का समुचित प्रबन्ध था। खारवेल के हाथीगुम्फा अभिलेख से विदित होता है कि नंदराज द्वारा 300 वर्ष पूर्व बनवाई नहर को खारवेल अपनी राजधानी लेकर आया था।[5] रूद्रदामन के जूनागढ़ अभिलेख में वर्णन मिलता है कि रूद्रदामन ने सुदर्शन झील के बाँध का जीर्णोद्धार किया था। इस झील का निर्माण चन्द्रगुप्त मौर्य के शासनकाल में हुआ था। दक्षिण के सातवाहन नरेश पुलुमावि के राज्यकाल में सिंचाई हेतु तालाबों का निर्माण किया गया था।

नागनिका के नानाघाट गुहालेख में नागनिका द्वारा यज्ञ में दिये गये दान का उल्लेख है। नागनिका ने बहुत बड़ी संख्या में गायों, अश्वों, गजों एवं कार्षापणों का दान दिया।[6] इक्ष्वाकुवंशी नरेश वीरपुरूषदत्त के नागार्जुनीकोण्ड अभिलेख मे करोड़ों स्वर्ण सिक्के, हजारों गायें एवं हजारों हल आदि दान में देने का उल्लेख है। उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि राज्य की आर्थिक स्थिति अच्छी थी एवं कृषि भी उन्नत दशा में थी।[7] उस काल में बहुत बड़ी संख्या में गऊ पालन किया जाता था, अतः दुग्ध व्यवसाय के उन्नत दशा में होने का अनुमान लगाया जा सकता है।

व्यापार एवं वाणिज्य

इस युग में व्यापार और वाणिज्य बहुत उन्नत दशा में थे। व्यापार स्थलमार्ग एवं जल मार्ग से होता था। व्यापारी सुरक्षा के लिए समूह बनाकर एक स्थान से दूसरे स्थान को जाते थे। ऐसे समूह को सार्थवाह कहा जाता था। मथुरा के कंकाली टीला से प्राप्त जैन मूर्ति लेख में व्यापारियों के काफिले के नेता की पत्नी को ''सार्थवाहिनी'' कहा गया है।[8] व्यापार की प्रगति के लिए प्रारंभिक आधार तो मौर्यों ने ही प्रदान किया था। उन्होंने यातायात के साधनों और मार्गों को विकसित किया था। स्थल मार्ग द्वारा पाटलिपुत्र, ताम्रलिप्ति से जुड़ा हुआ था जो बंगाल के समुद्र तल पर स्थित एक महत्त्वपूर्ण बंदरगाह था। एक स्थल मार्ग तक्षशिला से काबुल तक जाता था। एक मार्ग कंधार से हेरात होकर ईरान जाता था।[9]

'पेरिप्लस' के ग्रन्थ से जानकारी प्राप्त होती है कि उस समय सबसे महत्वपूर्ण बंदरगाह गुजरात स्थित बेरीगाजा (भृगुकच्छ) था। उज्जैन तथा उत्तर भारत के दूरस्थ क्षेत्रों का सामान भृगुकच्छ बंदरगाह से विदेशों में निर्यात किया जाता था। 'प्रतिष्ठान' तथा 'तगर' यहाँ की व्यापारिक मण्डियाँ थीं। मुम्बई के समुद्र तट पर सोपारा एवं कल्याण, मालाबार के तट पर नौर, मुजरिस एवं नेल्सिण्ड प्रमुख बंदरगाह थे।[10] देश के भिन्न–भिन्न प्रदेश अलग–अलग वस्तुओं के लिए प्रसिद्ध थे। कश्मीर, कौशल, विदर्भ और कलिंग हीरों के लिए प्रसिद्ध थे। वृक्षों के रेशों से बने वस्त्रों के लिए मगध व मलमल के लिए बंगाल प्रसिद्ध था।[11]

रूद्रदामन के जूनागढ़ अभिलेख में उसके द्वारा विजित क्षेत्रों का विवरण है। उनमें से आकर–अवन्ति (आकर–पूर्वी मालवा जिसकी राजधानी विदिशा एवं अवन्ति–पश्चिमी मालवा जिसकी राजधानी उज्जयिनी थी), आनर्त (आधुनिक गुजरात का उत्तरी भाग), सुराष्ट्र (दक्षिणी कठियावाड़) एवं अपरान्त (उत्तरी कोंकण जिसकी राजधानी आधुनिक सोपारा थी) आदि भूभाग व्यवसाय व व्यापार के प्रसिद्ध क्षेत्र थे। जूनागढ़ अभिलेख में 'भाग', बलि', 'कर', 'विष्टि' और 'प्रणय' आदि करों का उल्लेख हुआ है।[12] इस प्रकार रूद्रदामन के जूनागढ़ अभिलेख से उस काल में प्रचलित करों के बारे में जानकारी प्राप्त होती है। जूनागढ़ अभिलेख में उल्लिखित सूरपारक (सोपारा) रत्नाभूषणों के व्यवसाय का एक केन्द्र रहा होगा क्योंकि कन्हेरी

बौद्ध गुहा लेख में सूरपारक के एक ''मणिकार'' द्वारा दिये गये दान का उल्लेख है।[13]

व्यापारिक श्रेणियाँ एवं उद्योग–धंधे

भारत में व्यावसायिक संघ अत्यंत प्राचीन हैं। प्राचीन साहित्य में व्यावसायिक संघों को 'श्रेणी' कहा गया है। एक श्रेणी के अंतर्गत एक ही व्यवसाय करने वाले सदस्य संघटित होते थे। श्रेणियाँ बैंकों का भी कार्य करती थीं। वे धन उधार देती थीं और अपने पास जमा किए गए धन पर ब्याज देती थीं।[14] श्रेणी के अध्यक्ष को 'श्रेष्ठी' कहते थे। मथुरा के कंकाली टीला से प्राप्त हुविष्क के अभिलेख में ''श्रेष्ठी'' शब्द का उल्लेख हुआ है। इस अभिलेख में श्रेष्ठी शिवदास एवं उसके पुत्र श्रेष्ठी रूद्रदास का उल्लेख हुआ है।[15]

मथुरा से प्राप्त हुविष्क के अभिलेख (वर्ष 28) में दो श्रेणियों में से प्रत्येक के पास पाँच सौ पचास पुराण अक्षयनीवी के रूप में जमा करने का उल्लेख है। इनमें से एक श्रेणी का नाम 'समितकर श्रेणी' था। यह आटा पीसने वालों की श्रेणी थी। दूसरी श्रेणी का नाम स्पष्ट नहीं है। अक्षयनीवी ऐसी दान व्यवस्था को कहते हैं, जिसमें मूलधन में कोई हस्तक्षेप नहीं किया जाता था, उसके सूद का ही उपयोग हो सकता था।[16] नासिक से प्राप्त राजा ईश्वरसेन के शासन के नवें वर्ष के अभिलेख में गोवर्धन की श्रेणियों का उल्लेख मिलता है। इस अभिलेख के अनुसार कुलरिकों की श्रेणी में एक हजार कार्षापण एवं औदयंत्रिकों की श्रेणी में दो हजार कार्षापण जमा किए गये थे। कुछ धन तिलपिशकों की श्रेणी में भी जमा था। चौथी श्रेणी का नाम नष्ट हो गया है। औदयंत्रिक श्रेणी धान कूटने वालों की श्रेणी थी परन्तु सेनार्ट महोदय ने इसे जल–यंत्र या जल घड़ी बनाने वाले कारीगरों की श्रेणी कहा है। कुलरिकों की श्रेणी कुम्हारों की श्रेणी थी। तिलपिशकों की श्रेणी तेल पेरने वालों की श्रेणी थी।[17]

शक संवत् 42 (120 ईसवी) का नासिक गुहा लेख ब्याज की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इस अभिलेख में शक नरेश नहपान के जमाता उषवदात के दान का उल्लेख है। इस दान के अंतर्गत तीन हजार कार्षापण की धनराशि भिक्षुओं के लाभ के उद्देश्य से गोवर्धन की श्रेणियों में जमा की गई थी। तीन हजार कार्षापणों में से दो हजार कार्षापण बारह प्रतिशत वार्षिक ब्याज की दर से जुलाहों की एक श्रेणी के पास जमा थे। जुलाहों की दूसरी श्रेणी के पास एक हजार कार्षापण 3/4 प्रतिशत मासिक अर्थात नौ प्रतिशत वार्षिक ब्याज की दर से जमा थे। इस अभिलेख में जुलाहों की श्रेणी द्वारा बौद्ध भिक्षुओं को चीवर की व्यवस्था करने का भी उल्लेख है। इस प्रकार इस अभिलेख से उस काल में प्रचलित ब्याज की दरों के बारे में जानकारी प्राप्त होती है एवं वस्त्र उद्योग के भी उन्नत दशा में होने का अनुमान लगाया जा सकता है।[18]

भद्रमघ के कोसम (जिला कौशाम्बी) अभिलेख में प्रस्तर का कार्य करने वालों की श्रेणी का उल्लेख है।[19] अतः प्रस्तर उद्योग भी उस काल में एक महत्वपूर्ण उद्योग था। जुन्नार के अभिलेखों में बांस का काम करने वाले एवं अनाज का व्यवसाय करने वालों (धानिकों) की श्रेणियों का उल्लेख हुआ है। जुन्नार बौद्ध गुहालेखों में बरगद, आम, साल आदि वृक्ष रोपे जाने का उल्लेख है। निश्चित रूप से इन वृक्षों की लकड़ी एवं फलों का आर्थिक महत्त्व होगा।[20] मथुरा जैन मूर्ति लेख, कार्ले बौद्ध स्तम्भलेख एवं पीतलखोरा बौद्ध स्तम्भ लेख में गंधिकों (सुगंध बेचने वाले) का उल्लेख हुआ है।[21] तृतीय शती ईसवी के शीलवर्मन के जगतपुर अभिलेख में ईंटों से वेदिका बनाने का उल्लेख है।[22] इससे स्पष्ट है कि उस काल में ईंट उद्योग भी प्रचलित

था। मघराजा भीमसेन के बांधवगढ़ से प्राप्त द्वितीय शती ईसवी के एक अभिलेख से ज्ञात होता है कि स्वर्णकारी, काष्ठकारी एवं लौहकारी महत्त्वपूर्ण व्यवसाय थे।[23]

मौद्रिक व्यवस्था

मौर्योत्तरकाल में व्यापार के विकास के साथ ही मुद्रा व्यवस्था का विकास हुआ। नहपानकालीन नासिक गुहा लेख से 'सुवर्ण' एवं 'कार्षापण' शब्दों के बारे में जानकारी प्राप्त होती है। हुविष्क के वर्ष 28 के मथुरा अभिलेख में अक्षयनीवी के रूप में दिये गये धन का उल्लेख ''पुराण'' के रूप में किया गया है। सिक्कों के रूप में पुराण का उल्लेख अन्यत्र केवल मनुस्मृति में हुआ है, जो कुषाण काल में सम–सामयिक चाँदी के सिक्कों के अभाव में जन–सामान्य में प्रचलित रहे होंगे।[24] उस समय सोने के सिक्कों को सुवर्ण अथवा दीनार कहते थे तथा कार्षापण मुख्यतः ताम्र मुद्रा थी, जिसका वजन 1 कर्ष = 80 रत्ती या 146.4 ग्रेन होता था।[25]

माप–तौल

ईसा पूर्व द्वितीय शती के तक्षशिला और अयोध्या के सिक्कों पर तराजू का चिन्ह मिलता है।[26] इससे स्पष्ट होता है कि उस काल में तराजू का प्रयोग तौल के लिए प्रचलित था। कुषाण नरेश हुविष्क के मथुरा अभिलेख में एक 'प्रस्थ' नमक एवं तीन ''आढ़क'' सत्तू का उल्लेख हुआ है। ये दोनों तौल की इकाईयाँ थीं। आढ़क लगभग आधा सेर को कहते थे। प्रस्थ संभवतः चौथाई आढ़क को कहते थे। इसी अभिलेख में ''घटक'' एवं ''मल्लक'' शब्दों का प्रयोग हुआ है, जो स्थानीय वजन हो सकते हैं।[27]

आयात एवं निर्यात

इस काल में भारत एवं रोम के बीच व्यापार उन्नत अवस्था में था। कुषाणों ने चीन को रोमन साम्राज्य से जोड़ने वाले सिल्क मार्ग को अपने नियंत्रण में रखा था। भारतीय व्यापारी चीन से रेशम खरीदकर रोम को भेजते थे तथा उसके बराबर सोना प्राप्त करते थे।[28] 'प्लिनी' ने लिखा है कि 'ऐसा कोई वर्ष नहीं बीतता, जिसमें भारत रोमन राजकोष में से दस करोड़ सैसोस्टियर (एक प्रकार के रोमन सिक्के) न खींच लेता हो।[29] पेरिप्लस ने अपने ग्रंथ में उन वस्तुओं की सूची दी है, जो पश्चिमी बन्दरगाहों से भारत आती थीं जैसे साधारण दर्जे के वस्त्र, कमरबन्द, शिलारस, धूप आदि। शिलारस मिस्त्र एवं सीरिया से आता था। इससे दवा बनती थी। औषधीय द्रव्य अरब से मंगाये जाते थे।[30]

पेरिप्लस ने अपने ग्रन्थ में उन वस्तुओं की भी सूची दी है, जो भारत से निर्यात की जाती थीं। इसमें रेशम मलमल, सूती वस्त्र, रत्न एवं मोती सम्मिलित थे। इसके अलावा काली मिर्च एवं अदरक भी भारत से रोम को निर्यात किये जाते थे। रोम के व्यापारी मुख्यतः मसालों का आयात करते थे। वे पौधों का आयात धार्मिक एवं औषधीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए करते थे।[31] भारत से मिस्त्र को हाथी दाँत, मसाले, मोती, उबटन, रंग, नील, दालचीनी और लोहे का निर्यात किया जाता था।[32] इनके अतिरिक्त भारत से निर्यात की जाने वाली वस्तुओं में कछुवे की खोपड़ी, गन्ध द्रव्य, रूई, धागा, सुपारी, गोंद, राल, गोलमिर्च, चीनी, ऊन, शंख, चीनी मिट्टी, जटामासी, आबनूस की लकड़ी एवं पत्थरों में कार्नेलियन, स्फटिक, निकोलो, जमुनिया, नीलम, माणिक्य, लाजवर्द आदि सम्मिलित हैं।[33]

भूमि का मापन

तत्कालीन अभिलेखों में दान में दिये जाने वाले क्षेत्र के सीमांकन के बारे में जानकारी प्राप्त होती है। ग्राम एवं भूमि की सीमा नदी, पर्वत, वन, गुहा, मन्दिर एवं वृक्ष आदि से दर्शायी जाती थी।[34] रूद्रदामन के जूनागढ़ अभिलेख से ज्ञात होता है कि सुदर्शन झील के बांध में चार सौ बीस हाथ लम्बी व इतनी ही चौड़ी दरार पड़ गई थी। इससे स्पष्ट होता है कि उस समय 'हस्त' माप की एक इकाई थी। गौतमीपुत्र सातकर्णि के नासिक गुहा अभिलेख (वर्ष 18) से ज्ञात होता है कि उषवदात के अधिकार में दो सौ निवर्तन भूमि थी।[35] अतः ''निवर्तन'' भी माप की एक इकाई थी। भद्रक प्रस्तर लेख में 80 ''आधावापस'' भूमि दान में देने का उल्लेख है जो कि निश्चित रूप से भूमि मापन की एक इकाई थी।[36]

इस प्रकार अभिलेखों के आधार पर आर्थिक स्थिति का अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि मौर्योत्तरकाल में राजाओं ने अर्थिक उन्नति के लिए कृषि की उन्नति पर विशेष ध्यान दिया। उस काल में अनेक व्यवसायों से संबंधित श्रेणियाँ थी जो बैंकों का कार्य करती थीं। ब्याज की विभिन्न दरें प्रचलित थीं। स्वर्ण व ताँबे की मुद्रायें विशेष रूप से प्रचलित थीं। ऐसा प्रतीत होता है कि विशेष लेनदेन में स्वर्ण मुद्राओं का तथा सामान्य व्यवहार में ताँबे की मुद्राओं का प्रयोग किया जाता था। व्यापार एवं वाणिज्य की स्थिति अच्छी थी। राजकोष का प्रयोग लोक कल्याणकारी कार्यों के लिए किया जाता था। सामान्य प्रजा का सुखी होना मौर्योत्तरकाल की आर्थिक समृद्धि का घोतक है।

संदर्भग्रंथ सूची

1. परमेश्वरीलाल गुप्त, प्राचीन भारत के प्रमुख अभिलेख, भाग 1, तृतीय संस्करण, वाराणसी, 1993, पृ. 87–89
2. संतोष कुमार बाजपेयी, ऐतिहासिक भारतीय सिक्के, ईस्टर्न बुक लिंकर्स जवाहर नगर, दिल्ली, 1997 पृ. 151
3. कृष्ण दत्त बाजपेयी, कन्हैयालाल अग्रवाल एवं संतोष बाजपेयी, ऐतिहासिक भारतीय अभिलेख जयपुर, 1992 पृ. 108 एवं हरिपद चक्रवर्ती, अर्ली ब्राह्मी रिकॉर्डस इन इण्डिया (300 बी.सी.–300 ए.डी.), कलकत्ता, 1974, पृ. 49
4. परमेश्वरी लाल गुप्त, वही, पृ. 210, 159, 195
5. के. पी. जायसवाल, द हाथीगुम्फा इन्सक्रिप्शन्स ऑफ खारवेल, एपिग्राफिया इण्डिका, आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, दिल्ली, 1929–30, खण्ड–20, पृ. 87
6. कृष्णदत्त बाजपेयी, वही, पृ. 40 एवं पृ. 118–120
7. आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया रिपोर्ट, 1928–29, पृ. 104
8. एच. ल्यूडर्स बर्लिन, लिस्ट आफ ब्राम्ही इन्सक्रिप्शन्स फ्रॉम द अर्लिएस्ट टाईम टू एबाउट ए.डी. 400 विद द इक्सेप्शन आफ दोज आफ अशोक, वाराणसी, 1973, संख्या 30, पृ. 6
9. द्विजेन्द्र नारायण झा एवं कृष्णमोहन श्रीमाली, प्राचीन भारत का इतिहास (संपादित), दिल्ली, 1998, पृ. 238
10. कैलाशचंद्र जैन, प्राचीन भारतीय सामाजिक एवं आर्थिक संस्थाएं, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, छठा संस्करण, 2000, पृ. 160, 161

11. द्विजेन्द्र नारायण झा एवं कृष्णमोहन श्रीमाली, वही, पृ. 239
12. कृष्णदत्त बाजपेयी, वही, पृ. 41, 142
13. आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ वेस्ट इण्डिया रिपोर्ट, खण्ड 5, संख्या 20, 1883, पृ. 82 एवं एच. ल्यूडर्स बर्लिन, वही संख्या 1005 पृ. 105
14. कृष्णदत्त बाजपेयी, वही, पृ. 42–43
15. जर्नल आफ बंगाल एशियाटिक सोसायटी, खण्ड LXVII, भाग 1, टिप्पणी 2, पृ. 276
16. स्टेन कोनो, मथुरा ब्राह्मी इन्सक्रिप्शन ऑफ द ईयर 28, एपिग्राफिया इण्डिका, आर्कियो–लॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, दिल्ली, 1931–32, खण्ड–21, पृ. 58–61
17. एच. ल्यूडर्स बर्लिन वही, संख्या 1137, पृ. 127 एवं परमेश्वरीलाल गुप्त, वही, पृ. 210
18. डी.सी. सरकार, सिलेक्ट इंसक्रिप्शन्स (संपादित), खण्ड 1, 1965, पृ. 164–167 एवं एच. ल्यूडर्स बर्लिन, वही, संख्या 1133, पृ. 126
19. हरीपद चक्रवर्ती, वही पृ. 74
20. एच. ल्यूडर्स बर्लिन, वही, संख्या 1162, 1180, 1162–1164, पृ. 70, 135–136, 132
21. वही, संख्या 37, 39, 68, 1090, 1187
22. हरिपद चक्रवर्ती, वही, पृ. 75
23. एन. पी. चक्रवर्त्ती, ब्राह्मी इन्सक्रिप्शन्स फ्रॉम बांधवगढ़ एपिग्राफिया इण्डिका, द मेनेजर ऑफ पब्लिकेशन, कोलकाता, 1955, खण्ड–31, भाग–4, पृ. 178
24. परमेश्वरीलाल गुप्त, वही, पृ. 195, 169, 159
25. कृष्णदत्त बाजपेयी, वही, पृ. 136
26. संतोष कुमार बाजपेयी, ऐतिहासिक भारतीय सिक्के, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, जवाहरनगर, दिल्ली, 1997, पृ. 43, 91
27. स्टेन कोनो, वही, पृ. 61 एवं परमेश्वरी लाल गुप्त, वही, पृ. 159, 161
28. कृष्ण चंद्र श्रीवास्तव, प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति, इलाहाबाद, 2000–2001, पृ. 379
29. पी.एन. चौपाड़ा, बी.एन. पुरी एवं एम.एम. दास, भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक इतिहास, प्रथम संस्करण, दिल्ली, 1975
30. राधाकृष्ण चौधरी, प्राचीन भारत का आर्थिक इतिहास, प्रथम संस्करण, पटना, 1986, पृ. 187
31. रामशरण शर्मा, प्राचीन भारत (अनुवादित), राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद, 1991, पृ. 183
32. पी.एन. चौपड़ा, वही, पृ. 140
33. राधाकृष्ण चौधरी, वही, 183–185
34. वही, पृ. 66–67
35. कृष्णदत्त बाजपेयी, वही, पृ. 140, 41
36. हरिपद चक्रवर्त्ती, वही, पृ. 75

SHODH CHETNA – YEAR-2 (JAN. TO MARCH, 2016) VOL. 1
ISSN : 2350-0441

आंचलिक राजवंशों का इतिहास

(गढ़ा-मण्डला के गोंड़ राजवंश के संदर्भ में)

❐ कृष्ण कुमार नागवंशी

शोध सारांश

किसी भी राष्ट्र के आंचलिक क्षेत्र ऐतिहासिक, भौगोलिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण होते हैं। वर्तमान में अनेक ऐसे क्षेत्र हैं जिनमें किसी-न-किसी प्रकार की विशेषताएँ हैं। भारत में अनेक राजवंशों का उत्थान और पतन हुआ। कल्चुरी राजाओं के शासन की समाप्ति के उपरांत गढ़ा-मण्डला क्षेत्र में कोई भी शक्तिशाली वंश का शासन स्थायी रूप से नहीं चल पा रहा था। ऐसी स्थिति में एक नये वंश 'गोंड़' राजवंश का उदय हुआ। गढ़ा गोंड़ राजवंश के प्रार्दुभाव से लगभग 900 वर्ष पूर्व से ही समीपवर्ती क्षेत्र छत्तीसगढ़ अमरकंटक तथा विदर्भ में गोंड़ जाति के लोग निवास करते थे। गोंड़ स्वयं को 'कोईतूर', 'कोयतोर' या कोयावंशीय कहते हैं। ऐतिहासिक दस्तावेजों में केवल मुगल काल में गोंड़ राजाओं के उल्लेख प्राप्त होते हैं।

गढ़ा-मण्डला गोंड़ राजवंश उद्‌भव के विषय में दो किवदंतियाँ मुख्य रूप प्रचलित हैं—प्रथम, गढ़ा के समीप कढंगा में 'सकत्' नाम का एक गोंड़ जाति का व्यक्ति रहता था, उसकी कन्या ने एक नाग से विवाह किया था, जो सहवास के समय पुरूष का रूप धारण कर लेता था। इस कन्या और नाग से धाकशाह का जन्म हुआ था। धाकशाह का पौत्र यादवराय था जिसने गढ़ा में गोंड़ राज्य की नींव रखी।

द्वितीय, गोदावरी तट पर स्थित सेहल ग्राम के निवासी जोधसिंह का पुत्र यादवराय लाँजी (बालाघाट) हैहयवंशीय राजा के यहाँ नौकरी करते थे। एक दिन राजा के साथ नर्मदा नदी के उद्‌गम स्थल अमरकंटक की यात्रा पर गये। एक रात्रि में उसने पहरा देते समय दो गोंड़ पुरुष तथा एक स्त्री को देखा, उनके पीछे एक बन्दर था, बन्दर ने यादवराय को देखा और उसके सिर पर मोरपंख गिराया यादवराय ने उसे उठा लिया और रात्रि विश्राम करने लगा। स्वप्न में नर्मदा देवी ने उससे कहा कि, वह एक दिन राजा बनेगा। गढ़ा के समीप तिलवारा घाट के निकट रामनगर में ब्राह्मण सुरभि पाठक रहता है उससे जाकर सम्पर्क करे। वह राजा की नौकरी त्यागकर ब्राह्मण सुरभि पाठक के पास गया और रात्रि के स्वप्न के विषय में बताया। ब्राह्मण ने एक शर्त पर उसका मार्ग-दर्शन करना स्वीकार किया कि, वह जब राजा बन जायेगा तो उसे प्रधानमंत्री बनायेगा। तत्कालीन गढ़ा शासक की रत्नावली नाम की एक ही कन्या थी, उसके स्वयंवर के समय राजा ने एक नीलकण्ठ को छोड़ा और कहा कि, यह नीलकण्ठ जिस पुरुष के सिर पर जाकर बैठेगा रत्नावली का विवाह उससे कर दिया जायेगा। संयोग से यादवराय गढ़ा का शासक बना और सुरभि पाठक को प्रधानमंत्री बनाया। अन्य लेखों में भी गढ़ा के शासकों में यादवराय को गढ़ा के शासकों में आदि पुरुष की संज्ञा दी गई है। इस प्रकार से यादवराय

* शोधार्थी, इतिहास, स्नातकोत्तर अध्ययन एवं अनुसंधान विभाग, रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.)

को भाग्य से गढ़ा का शासन प्राप्त हुआ और गोंड़ राज्य की स्थापना हुई। यह स्पष्ट है कि पाँचवी सदी के उपरांत जलबपुर जिले के समीपवर्ती दक्षिण में स्थित विदर्भ तथा पूर्व में स्थित अमकंटक और छत्तीसगढ़ में अधिक संख्या में गोंड़ जाति निवास करती थी, जिनमें राजगोंड़ों ने गढ़ा में शासन किया और गढ़ा को अपने राज्य का केन्द्र बिन्दु बनाया। मध्यकालीन ऐतिहासिक स्रोतों में कुछ फारसी और सभी समकालीन हिन्दी, संस्कृत आदि में इसे गढ़ा राज्य कहा है।

गोंड शासक नरेंद्र शाह के समय गोंड़ राज्य की राजधानी गढ़ा को परिवर्तित करके मण्डला बनायी गई। तब संयुक्त रूप से गोंड़ राज्य गढ़ा-मण्डला के नाम से विख्यात हो गया। 18वीं शताब्दी के मराठी और अंग्रेजी स्रोतों में इसे गढ़ा-मंण्डला के नाम से ही उल्लेखित किया गया है। गढ़ा के गोंड़ राजवंश का शासन काल 14वीं सदी से माना जाता है, इस राजवंश में 63 शासकों ने शासक किया था। 34वें शासक के रूप में मदन शाह हुए जिन्होंने गढ़ा की चट्टानों पर महल का निर्माण करवाया। बरगी परगना पर मदनपुर, प्रतापगढ़, अमरगढ़, राजगढ़, देवहासगढ़ तक राज्य विस्तार किया। मदन शाह के बाद उग्रसेन ने राज्य संभाला और 47वें शासक अर्जुनदास हुए। यादवराय से लेकर अर्जुनदास तक 47 शासकों की केवल नामावली ही प्राप्त होती है।

अर्जुनदास के उपरांत 1510 ई. में संग्राम शाह गोंड़ राज्य के शासक बने और यहीं से गोंड़ राज्य के उन्नति का काल आरम्भ होता है। संग्राम शाह गोंड़ राज्य वंश के प्रथम बलशाली राजा हुए। संग्राम शाह के शासन काल में संकुचित राज्य व्यापकता में परिवर्तित हो गया। संग्राम शाह ने एक छोटी-सी जागीर के स्वामित्व से प्रारम्भ कर अपने रण-कौशल से बावनगढ़ों पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। अबुलफजल ने महाराजा संग्राम शाह के राज्य विस्तार बताने वाले बावनगढ़ों का उल्लेख अपनी रचना 'अकबरनामा' में किया है। गोंड़ वंश का राज्य विस्तार लगभग 67,500 कि.मी. के क्षेत्रफल में जबलपुर, मण्डला, नरसिंहपुर, सागर, दमोह, सिहोरा, रायसेन, बिलासपुर भोपाल और विदर्भ तक था।

राजा संग्राम शाह के दो पुत्र दलपति शाह और चन्द्रशाह थे। संग्राम शाह की मृत्यु के बाद उसका ज्येष्ठ पुत्र दलपति शाह राजा बना दलपति शाह विद्वान और सुन्दर था। उसकी वीरता की चर्चा आस-पास के राज्यों तक व्याप्त थी। दलपति शाह का विवाह राठ और महोबा के चन्देल शासक सालबाहन की पुत्री दुर्गावती से हुआ। संग्राम शाह के शासन काल तक गोंड़ राजवंश ने पर्याप्त प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली थी। दलपति शाह और रानी दुर्गावती से एक पुत्र का जन्म हुआ जिसका नाम वीरनारायण रखा गया। बालक के जन्म के पाँच वर्ष के बाद राजा दलपति शाह का स्वर्गवास हो गया। पति की मृत्यु के बाद रानी दुर्गावती व्याकुल हो उठी किन्तु उन्होंने साहस और धैर्य के साथ अवयस्क पुत्र वीरनारायण की ओर से गढ़ा-मंडला की सत्ता सम्भाली।

गोंड़ राजवश में अनेक शासकों ने शासन किया परन्तु इस काल में यह क्षेत्र रानी दुर्गावती के शासनकाल में विशेष रूप से समृद्ध और शक्तिशाली रहा। समृद्धि और उन्नति का उल्लेख अबुल फजल ने 'आइने अकबरी' में किया है। रानी के शौर्य, साहस और रण-कौशल की चर्चा यत्र-तत्र फैलने लगी जिससे आस-पास के तत्कालीन राजा और सुल्तान रानी से ईर्ष्या करने लगे जिसका प्रमुख कारण रानी का स्त्री होना था। रानी दुर्गावती के काल में राज्य में तीन प्रमुख आक्रमण हुये, जिनमें से दो में रानी को विजय प्राप्त हुयी। जिनमें पहला संघर्ष मियाना अफगानों से दूसरा बाजबहादुर से जो मालवा का शासक था, और तीसरा मुगलों से हुआ। मुगल सम्राट अकबर की दृष्टि गढ़ा-मंडला की वैभवपूर्ण व्यवस्था पर पड़ी तो उसने अपने एक दूत को शाही फरमान लेकर भेजा, किन्तु रानी ने उसे अस्वीकार कर दिया जिससे सम्राट अकबर ने कड़ा-मानिकपुर के सूबेदार को रानी के राज्य पर आक्रमण करने का आदेश दिया। आज्ञा पाकर सूबेदार ने सिंगौरगढ़ पर आक्रमण कर दिया, यहाँ का मोर्चा रानी ने स्वयं

सम्भाला। बीरनारायण ने भी अपूर्व शौर्य का प्रदर्शन किया। इसी दौरान वीरनारायण घायल हो गया और रानी के आदेश पर उसे चौरागढ़ ले जाया गया। वीरनारायण के साथ रानी की आधी सेना चली गई जिससे मोर्चा में कमी आ गई। अंत में नर्रई में हुए घमासान युद्ध में एक तीर आकर रानी की दायीं आँख में लग गया। रानी ने साहस के साथ उसे निकाल फेंका लेकिन दुर्भाग्य से पुनः एक तीर आकर रानी की गर्दन में लग गया तथा रक्त की धारा निकलने लगी। रानी दुर्गावती ने 29 जून 1564 ई. को महावत के हाथ से कटार छीनकर वीरगति को प्राप्त हो गई।

रानी की मृत्यु के बाद वीरनारायण चौरागढ़ के किले से ही राज्य सम्भालने लगा। यहाँ से गोंड़ राजवंश की स्वतंत्रता पर अंकुश लगना प्रारम्भ हो गया। आसफ खाँ जो अकबर का सेनापति था, ने मुगल राज्य स्थापित करने के लिए वीरनारायण के पास आत्मसमर्पण का संदेश भेजा किन्तु वीरनारायण ने किसी प्रकार का जवाब नहीं दिया जिससे क्रोधित होकर आसफ खाँ ने चौरागढ़ पर चढ़ाई कर दी। दोनों के मध्य घमासान युद्ध हुआ आसफ खाँ की सेना के सामने वीरनारायण की सेना टिक नहीं सकी और युद्ध के दौरान ही वीरनारायण की मृत्यु हो गई। अवसर का लाभ उठाकर आसफ खाँ स्वतंत्र राजा बनने का पूर्ण विचार करके कुछ दिन वह गढ़ा में रूका और अपना राज्य स्थापित करने का प्रयत्न किया किन्तु वह सफल नहीं हो सका।

वीरनारायण के बाद दलपतिशाह का छोटा भाई चन्द्रशाह गोंड़ वंश का 51वां राजा बना। चन्द्र शाह का उल्लेख रामनगर के शिलालेख में प्राप्त होता है। चन्द्रशाह के बाद उसका पुत्र मधुकर शाह अपने पिता (चन्द्रशाह) और ज्येष्ठ भ्राता की हत्या कर गोंड़ राजवंश की गद्दी पर बैठा। इसके शासनकाल में गोंड़ राजवंश मुगलों की कठपुतली बनकर रह गया। मधुकर शाह के उपरान्त गोंड़वंश का अगला शासक प्रेमशाह हुआ। प्रेमशाह का वर्णन रामनगर शिलालेख पर क्र. 31 से 33 तक है तथा इनका नाम प्रेमनारायण मिलता है। अपने पिता मधुकर शाह की मृत्यु के समय प्रेमशाह आगरा में था। वापस अपने के पूर्व प्रेमशाह ओरछा के राजा वीरसिंह देव से मिलते हुए नहीं आया, जिससे वह क्रोधित हो गया और अपने पुत्र जुझारसिंह से मृत्यु के समय सौगंध करा ली कि वह प्रेम सिंह से अपने पिता के अपमान का प्रतिशोध लेगा। जुझारसिंह तथा ओरछा नरेश के भ्राता पहाड़सिंह ने चौरागढ़ पर चढ़ाई करके प्रेमशाह को मार डाला।

प्रेमशाह के पश्चात् उसका पुत्र हृदयशाह राजा बना जो अपने पिता की मृत्यु के समय दिल्ली में था। पिता की मौत की खबर जैसे ही हृदयशाह को मिली तो वह तत्काल दिल्ली से आकर भोपाल के सूबेदार से मिला और सूबेदार की सहायता से बुन्देलों पर आक्रमण कर जुझारसिंह को पराजित का उसका वध कर दिया। हृदयशाह गोंड़ राज्य को मुगल और बुन्देलों के आक्रमणों से असुरक्षित महसूस करने लगे। अतः उन्होंने सिंगौरगढ़ और चौरागढ़ से अधिक सुरक्षित स्थान खोजना शुरू कर दिया। अन्त में, हृदयशाह ने सतपुड़ा के घने जंगलों में नर्मदा नदी के तट के समीप रामनगर स्थान खोज निकाला। रामनगर को अपने राज्य की राजधानी बनायी और हृदयशाह ने रामनगर में दो महल बनवाये—मोती महल, बघेलन महल तथा एक कोठी जो राजभगत की कोठी के नाम से प्रसिद्ध है। मोती महल के दक्षिण में हृदयशाह की रानी सुन्दरी देवी के द्वारा 1667 ई. में मन्दिर बनवाया गया। हृदयशाह द्वारा उत्कीर्ण शिलालेख पहले मन्दिर में था, अब मोती महल में जड़ा हुआ है। मण्डला के समीप 1637 ई. में हृदयनगर नाम का एक गाँव बसाया।

गढ़ा-मण्डला का राज्य पतन की ओर बढ़ता जा रहा था। महाराजा शाह की मृत्यु बाद उसके ज्येष्ठ पुत्र शिवराज शाह को मराठों के द्वारा इस शर्त पर राजगद्दी पर बैठाया गया कि, वह चौथ के रूप में चार लाख अथवा शासन, राजस्व का एक चौथाई भाग कर देगा। पेशवा को गढ़ा-मण्डला से आठ लाख रुपये प्राप्त हुये

जिसमें चार लाख रुपये कर के थे और चार लाख रुपये लूट के थे। मराठों ने आक्रमण करके शिवराज शाह के छः किलों पर अपना आधिपत्य जमा लिया था। शिवराज शाह ने सात वर्ष तक शासन किया और लगभग 1740 ई. में उसकी मृत्यु हो गई। शिवराज शाह की कोई वैध संतान नहीं थी। वैश्य से उत्पन्न दुर्जनशाह नाम का एक पुत्र था।

शिवराज शाह की संतान न होने के कारण राजगद्दी के लिए पारिवारिक संकट आ पड़ा क्योंकि शिवराज शाह का अनुज निजाम शाह गद्दी पर बैठना चाहता था। लेकिन विधवा रानी के प्रयत्न से दुर्जन शाह को गद्दी पर बैठाया गया। निजाम शाह ने राजदरबारियों के साथ मिलकर षड्यंत्र रचकर दुर्जन शाह की हत्या करवा दी और स्वयं राजगद्दी पर विराजमान हो गया। निजाम शाह ने 27 वर्ष की आयु में राजगद्दी प्राप्त की थी। किन्तु गोंड़ राज्य की वास्तविक सत्ता तो नागपुर के राजा के हाथों में थी। निजामशाह केवल नाममात्र का शासक था। इसके शासनकाल में अनेक जनहित के कार्य किये गये। संग्राम शाह, रानी दुर्गावती, हृदय शाह के बाद निजाम शाह ही जनस्मृति में विद्यमान हैं। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि यह अत्यन्त लोकप्रिय राजा था। निजाम शाह के शासनकाल में संस्कृत, साहित्य तथा काव्य रचना को पर्याप्त प्रोत्साहन मिला। राजा स्वयं काव्य रचना करते थे, यह एकमात्र ऐसा राजा हुए जिन्होंने मृत्यु के समय यह बता दिया था कि गोंड़वंश का अगला राजा कौन बनेगा? निजाम शाह की मृत्यु के पश्चात् दासी पुत्र महिपाल शाह को राजा घोषित किया गया। लेकिन महिपाल शाह का राजा बनना रानी विलासकुंवरी को ठीक नहीं लगा। उन्होंने अपनी शक्ति और षड्यंत्र के माध्यम से महिपाल शाह को गद्दी से हटवाकर निजाम शाह के भतीजे नरहरिशाह को राजगद्दी पर बैठाया। नरहरि शाह का प्रतिद्वन्द्वी निजाम शाह का पुत्र सुमेर शाह था, जिसने नागपुर के भोसले और पूना के विसाजी के साथ मिलकर गढ़ा-मण्डला पर आक्रमण करवा दिया। विसाजी ने मण्डला को चारों ओर घेर लिया और नरहरि शाह को बन्दी बना लिया तथा सुमेरशाह को विसाजी ने इस शर्त पर सिंहासन पर बैठाया कि वह बीस हजार रुपये की अदायगी करेगा। सुमेर शाह ने किसी तरह चौदह हजार रुपये अदा किये किन्तु छः हजार रुपये चुकाने का भार गंगगिरि के प्रमुख राज्याधिकारियों को सौंप दिया। ऐसा करने से सुमेर शाह की सहायता करने वाले राज्याधिकारियों ने ही उसका वध कर दिया।

सुमेर शाह की मृत्यु के बाद विसाजी (सागर में स्थित पेशवा के प्रतिनिधि) ने नरहरि शाह को पुनः राजा बनाया और शर्त रखी कि वह पिछली संधि की पूरी राशि अदा करेगा। ऐसी अपमानजनक स्थिति में रहना नरहरि शाह को उचित नहीं लगा तो उसने एक योजना और 1782 ई. को मराठों के विरूद्ध युद्ध छेड़ दिया। युद्ध में मराठों को अत्यधिक क्षति हुई और विसाजी की मृत्यु हो गई। अब मराठा शक्ति कमजोर हो गई। कुछ दिनों के बाद नरहरि शाह ने पुनः मराठों से युद्ध किया और मराठों से परास्त होकर चौरागढ़ के किले में जाकर छिप गया। किले पर मराठों का अधिकार हो गया तथा नरहरि शाह को बन्दी बनाकर सागर ले जाया गया और गौरझामर के किले में डाल दिया गया। कुछ दिन जीवित रहने के बाद उसकी किले में ही मृत्यु हो गई और गोड़ राजवंश का सूर्य अस्त हो गया। अब सम्पूर्ण गढ़-मण्डला राज्य पर सागर के मराठों का अधिकार हो गया।

इस प्रकार से गोंड़ चौदहवीं सदी से अठारहवीं सदी तक गढ़ा-मण्डला पर राज करता रहा। इस वंश में 63 शासकों ने शासन किया लेकिन तत्कालीन परिस्थितियों का सामना करने का अदम्य साहस केवल राजा संग्राम शाह, दलपति शाह, रानी दुर्गावती, हृदय शाह और निजाम शाह में ही था। जिन्होंने तत्कालीन उदय हो रही मुगल, बुन्देला और मराठा शक्तियों से डटकर मुकाबला कर अपने राज्य की रक्षा की। शेष गोंड़ शासक तो केवल इनके कठपुतली बनकर रह गये। गोंड़ शासक कैसे भी हों किन्तु यदि आंचलिक राजवंश की दृष्टि से आंकलन

किया जाये तो गोंड़ राजवंश का गढ़ा-मण्डला में आज भी महत्व है जो राजवंशों के इतिहास में अमिट छाप छोड़ता है। इस राजवंश के शासकों द्वारा किये गये जनहित के कार्य, संस्कृति, कला, साहित्य और इनके द्वारा निर्माण किये गये महल, तालाब, कोठी, नगर आदि इनकी ऐतिहासिक कहानी कहते हैं।

सन्दर्भ—

- शर्मा आर.के., तिवारी एस.के. 'ट्रायबल हिस्ट्री ऑफ सेंट्रल इंडिया, दिल्ली', 2002, पृ.सं. 112
- चंदौल जी.के. गोंड़कालीन रामनगर, जबलपुर, 1991, पृ.सं. 136
- तिवारी एस.के., मिश्र कमलेश 'द राज गोंड़' आगरा पब्लिकेशन, दिल्ली, 1993, पृ.सं. 124
- अग्रवाल गिरजा शंकर 'मंडला के किले का इतिहास' गोंड़ी पब्लिक ट्रस्ट, मण्डला, 1994, पृ.सं. 109
- मिश्र सुरेश 'म.प्र. के गोंड़ राज्य' म.प्र. हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, 2000, पृ.सं. 125
- अग्रवाल रामभरोसे 'गढ़ा-मण्डला के गोंड़ राजा' गोंड़ी पब्लिक ट्रस्ट, मण्डला, 1961, पृ.सं. 128
- मिश्र सुरेश 'गढ़ा के गोंड़ राज्य का उत्थान और पतन' रा.दु.वि.वि. जबलपुर, 1986, पृ.सं. 123
- रायबहादुर हीरालाल 'जबलपुर ज्योति एक संकलन' भारतीय राष्ट्रीय न्यास, जबलपुर 1998, पृ.सं. 65
- मण्डला जिला गजेटियर, म.प्र, शासन, 1972
- जबलपुर जिला गजेटियर, म.प्र. शासन, 1969
- नरसिंहपुर जिला गजेटियर, म.प्र. शासन, 1976

SHODH CHETNA – YEAR-2 (JAN. TO MARCH, 2016) VOL. 1
ISSN : 2350-0441

संस्कृत साहित्य में रस का स्वरूप

❒ डा. अरविन्द कुमार

शोध सारांश

इस विषयक चिन्तन का समारम्भ आचार्य भरत के 'नाट्यशास्त्र' से विक्रम की प्रथम शती में ही हो चुका था, भरत मुनि के रससूत्र 'विभावानुभावव्यभिचारि संभोद्रसनिष्पतिः[1] की व्याख्याएँ की है। पण्डितराज जगन्नाथ आदि ने रस सिद्धान्त को साहित्य चिन्तन के सनातन सिद्धान्त के रूप में प्रतिष्ठित करने में विशेष योगदान दिया। रस-चिन्तन एक सर्वांगीण, सार्वकालिक, सनातन साहित्य-दर्शन के रूप में स्थापित हुआ। तथापि रस का सम्बन्ध जितना साहित्य से है, उतना ही जीवन और जगत् से भी है। 'रसो वै सः' के अनुसार रस को ब्रह्म रूप बताकर उसकी सार्वभौमिकता और सार्वकालिक पर प्रकाश डाला गया। रसानुभूति को ब्रह्मानन्द सहोदर बताया गया है।

आचार्य मम्मट ने रस की परिभाषा करते हुए लिखा है कि लौकिक रत्यादि के कारण कार्य तथा सहकारी काव्य और रूपक में विभाव, अनुभाव तथा व्याभिचारी भाव होते हैं। इन्हीं विभावादिकों से अभिव्यक्त स्थायी रस कहलाता है–

कारणान्यथ कार्याणि सहकारीणि यानि च।
रत्यादेः स्थायिनो लोके तानि चेन्नाट्यकाव्ययोः॥
विभावा अनुभावास्तत् कथ्यन्ते व्यभिचारिणः।
व्यक्तः स तैर्विभावाद्यैः स्थायी भावो रसः स्मृतः॥[2]

यह रस नौ प्रकार का होता है—

शृङ्गार-हास्य-करुण-रौद्र-वीर-भयानकाः ।
बीभत्साद्भुतसञ्ज्ञौ चेत्यष्टौ नाट्ये रसाः स्मृताः॥
निर्वेदस्थायिभावोऽस्ति शान्नतोऽपि नवमो रसः।

इन रसों की अनुभूति एकत्व में ही निहित है। अभिनवगुप्त ने लिखा है कि रस की संख्या में बहुत्व बतलाकर यहाँ पर एकत्व बतलाने का रहस्य यही है कि रस परमार्थतः एक है, जो सूत्रस्थानीय है। उसी का विभाग होता है **पूर्वत्र बहुवचनमत्र चैकवचनं प्रयुञ्जानस्यायमाशयः। एक एव तावत् रसः सूत्रस्थानीयत्वेन रूपके प्रतिभाति। तस्यैव पुनर्भागदृशा विभागः।** *(अभिनवभारती)*

अभिनवगुप्त के अनुसार सामाजिक के हृदय में वासनारूप से अवस्थित रत्यादि स्थायी भाव की ही अभिव्यक्ति रसास्वाद है। विभावादि का साधारणीकरण तथा रसाभिव्यक्ति-दोनों व्यञ्जना व्यापार से ही सम्पन्न होते हैं। इससे रस की ध्वन्यमानता भी सिद्ध हो जाती है। कविराज विश्वनाथ ने रसास्वाद की हृदयग्राही प्रक्रिया बतलायी, जो आज भी अकाट्य एवं प्रमाणिक मानी जा रही है। वे कहते हैं कि जन सहृदय काव्य अथवा नाटक में अलौकिक विभावादि का परिशीलन करते हैं तो उनका मन सत्त्वगुण हो जाता है। उस अवस्था में रजोगुण और तमोगुण - दोनों अभिभूत हो जाते हैं। ऐसे सत्त्वगुण के उद्रेक से अखण्ड प्रकाशमान ज्ञानरूप आनन्द, जो ब्रह्मानन्द के सदृश होता है, रस कहलाता है। इस रसानुभूति के समय अन्य ज्ञेय पदार्थों

* सहायक आचार्य (साहित्य विभाग), श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ (मानितविश्वविद्यालय) कटवारिया सराय, नई दिल्ली-110016

के ज्ञान का पूर्णतः अभाव रहता है। इस आनन्दरूप रस में अलौकिक चमत्कार होता है, जिससे चित्त का विकास होता है। चमत्कार ही रस में सार है, जिससे यह विचित्र माना जाता है। ऐसे रस का आस्वाद पुण्यवाले सहृदय की कर पाते हैं—

सत्त्वोद्रेकाद-खण्डस्वप्रकाशानन्दचिन्मयः ।
वेद्यान्तर-स्पर्शशून्य-ब्रह्मास्वादसहोदयाः ॥
लोकोत्तरचमत्कारप्राणः कैश्चिद् प्रमातृभिः।
स्वाकारवदभिन्नत्वे नायमास्वाद्यते रसः॥[3]
रसे सारश्चमत्कारः सर्वत्राप्यनुभूयते।
तच्चमत्कारसारत्वे सर्वत्राप्यद्भुतो रसः॥
तस्माददद्भुतमेवाह कृती नारायणों रसम्॥[4]

आचार्य विश्वनाथ ने अपने काव्य की आत्मा के रूप में रस को ही स्थापित कर दिया था। वाक्यं रसात्मकं काव्यम् यह रस अलौकिक हैं। यही कारण है कि वह न तो कार्य है और न ज्ञाप्य, न नित्य है न अनित्य, न भूत है न वर्तमान है, न भविष्य ही। न निर्विकल्पक-ज्ञान ग्राह्य है और न सविकल्पक ज्ञान से ग्राह्य है। यह रस न परोक्ष है और न प्रत्यक्ष। विश्वनाथ के अनन्तर पण्डितराज जगन्नाथ ने स्वकीय ग्रन्थ 'रसगङ्गाधर' में रस की बहुत सूक्ष्म और मौलिक विवेचना की है। पण्डिराज ने ध्वनि के असंल्लक्ष्यक्रमव्यङ्ग्य में ही रसादि का विवेचन किया है। इस प्रसङ्ग में रसस्वयप बताते हुए कहते हैं कि समुचित और ललित रचना से मनोहर काव्य द्वारा विभावादि जब समर्पित होते हैं तो सहृदय के हृदय में प्रवेश कर जाते हैं। उनकी सहायता से युक्त भावनारमणी इस तरह की विशेषता को छोड़ देते हैं और वे अलौकिक विभाव, अनुभाव तथा व्यभिचारी शब्दों से व्यवहृत होने लगते हैं। इस प्रकार के शकुन्तला आदि सहकारियों से मिलकर एक अपूर्व अलौकिक व्यापार उत्पन्न होता है, जिससे उस काल में आनन्दांश का आवरणरूप अज्ञान सर्वथा भूल जाते हैं। अर्थात् उस समय उनको यह ज्ञान रहता है कि वे विभावादि उनके ही हैं और वे ही केवल रस के आस्वाद करने वाले हैं। इस तरह प्रमाता अनादिकालीन वासनारूप रत्यादि स्थायीभाव का जब प्रकाशमय वास्तविक आनन्द के साथ प्रत्यक्ष करने लगते हैं तब वह रत्यादि 'रस' कहलाता है।

आचार्य लोल्लट के अनुसार मूल रूप में रस का सम्बन्ध नायक राम इत्यादि से होता है (जैसे राम सीता के प्रति प्रेम की अभिव्यक्ति करते हैं और नाटककार इसे उपयुक्त शब्दों में व्यक्त करता है)। नट के कुशल अभिनय के कारण प्रेक्षक उसमें राम में मनोभावों का आरोपण करता है। प्रेक्षक को नट द्वारा प्रस्तुत प्रेम के इस अभिनय से आनन्द मिलता है। 'विभावानुभाव व्यभिचारि संयोगाद्रसनिष्पत्तिः' आदि शब्दों का यही अर्थ है। इस मत के अनुसार प्रेक्षक अभिनीत विषय के मूल अर्थ का रसास्वाद नहीं करता। लोल्लट का तात्पर्य केवल इतना ही है कि नट प्रस्तुत राम के अभिनय को प्रेक्षक साक्षात् राम मानकर आनन्द का अनुभव करते हैं।

तेन स्थाय्येव विभावानुभावादिभिरुपाचितो रसः। स्थायी भवत्यनुपचितः। स चोभायोरपि मुख्यया वृत्त्या रामादावनुकार्येऽनुकर्तरि च नटे रामादिरूपतानुसन्धानबलादिति।[5] रसस्वरूप एव तावद्विप्रतिपत्तयः प्रतिवादिनाम्। तथा हि पूर्वावस्थायां यः स्थायी स एव व्यभिचारिसम्पातादिना प्राप्तपरिपोषोऽनुकार्यगत एवं।[6] नटे तु तुल्यरूपतानुसन्धानवशादारोप्यमाणः सामाजिकानां चमत्कारहेतुः।[7]

यहाँ राम में मूल रस (शृङ्गार) की उत्पत्ति होती है। अतः यह मत उत्पत्तिवाद् कहलाता है। शंकुक के विचार में रस अनुमान का विषय है।

अभिनय-कुशल नट बड़ी चतुराई से वास्तविक नायक के कार्यों का अभिनय है और प्रेक्षक को एक क्षण के लिए अभिनेता और वास्तविक नायक में साम्य प्रतीत होता है और नट द्वारा प्रस्तुत अनुभाव और व्यभिचारी भावों से राम आदि के प्रेम का अनुमान लगाता है इस प्रकार वह राम के प्रेम का मन से साक्षात्कार करके रसास्वाद लेता है। यहाँ रस का निरूपण प्रेक्षक से सम्बद्ध

है परन्तु अनुकरण की चतुराई से इसे अनुमान का विषय माना गया है (अनुकरणरूपो रसः)। यह ध्यान देने योग्य है कि शंकुक ने रस विवेचन प्रेक्षक की दृष्टि से किया है। इनके मत में रस प्रेक्षक द्वारा अनुमित होता है। मूल नायकगत स्थायी भावों की स्थिति नट में अनुमित होती है (यद्यपि वे मूलतः उसमें नहीं होते) क्योंकि नट द्वारा विभावों का चतुराई से अपने अभिनय में उपस्थापन किया जताा है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि नट के भाव मूल नायक के ही भाव हैं। उस क्षण में प्रेक्षक नट और मूल नायक के ही भाव हैं। उस क्षण में प्रेक्षक नट और मूल नायक के अन्तर को भूल जाते हैं। अनुमति स्थिति में विशेष सौन्दर्य होता है जो कि सामान्य अनुभूति और अनुमान से सर्वथा भिन्न होता है। अतः प्रेक्षक की रसानुभूति अनुमानाश्रित है।[8]

सबसे महत्त्वपूर्ण यह है कि प्रत्यक्ष ज्ञान से ही चमत्कार उत्पन्न होता है न कि अनुमान से। **एतदप्यहृदयग्राहि यतः प्रत्यक्षमेव ज्ञानं सचमत्कारं नानुमित्यादिरिति लोकप्रसिद्धिमवधूयान्यथा कल्पने मानाभावः।**[9] भट्टनायक ने इसको अनुमान का विषय नहीं माना और उन्होंने यह भी अस्वीकार किया है कि रस को जिस रूप में प्रस्तुत किया जाता है उसी रूप में प्रेक्षक उसका आस्वाद नहीं लेता। इन्होंने रसास्वाद को परब्रह्म साक्षात्कार की कोटि में रखा है। चूँकि परब्रह्म आनन्दमय है अतः रस आस्वाद भी आनन्दमय है। इन्होंने अभिधा के अतिरिक्त भावकत्व व्यापार अथवा भोग या गोगीकृति, ये दो और शब्द शक्तियाँ मानी हैं। प्रथम शक्ति से राम-सीता आदि विभाव प्रेक्षक या पाठकों के समक्ष उपस्थित होते हैं। वे विभाव साधारणीकृत होते हैं। प्रेक्षक के मन में रतिभाव जागृत होता है तब प्रेक्षक या पाठक आनन्द की अनुभूति करते हैं। पर आनन्द सामान्य अनुभव अथवा स्मृति से भिन्न होता है जिसकी समता परब्रह्मस्वाद से ही की सकती है।[10]

तस्मात् काव्ये दोषाभावगुणालङ्कारमयत्वलाणेन नाट्ये चतुर्विधाभिनयरूपेण, निबिडनिजमोहसङ्कटता निवारणकारिणा विभावादि-साधारणीकरणात्मना अभिधातो द्वितीयेनांशेन भावकत्वव्यापारेण भाव्यमानो रसोऽनुभवस्मसृत्यादिविलक्षणेन रजस्तमोऽनुवेधवैचित्र्यबलाद्हृदि विस्तारविकास-लक्षेन सत्त्वोद्रेकप्रकानन्दमयनिजसंविद्विश्रान्ति-विलक्षणेन परब्रह्मास्वादसविधेन भागेन परं भुज्यत इति। लोचन से विदित होता है कि नायक ने रस को काव्य आथवा नाटक की आत्मा स्वीकार किया है और इसे व्यङ्ग्य रूप में रस माना है। **स च काव्यव्यापारैक-गोचरो रसध्वनिरिति। स च ध्वनिरेवेति स एव मुख्यतयात्मेति।**[11] अग्निपुराण में वाग्वैदध्यप्रधानेऽपि रस एवात्र जीवितम्।[12] भरत की यह उक्ति है कि - **नानाभावाभिनयव्ययञ्जितान् वागङ्गसत्त्वोपेतान् स्थायिभावानास्वादयन्ति सुमनसः प्रेक्षकाः तस्मान्नाट्ययसा इति व्याख्याताः।** और फिर कहा है- **एर्वामिते काव्यरसाभिव्यक्तिहेतव एकोनपञ्चा-शद्भावाः प्रत्यवगन्तव्याः। एभ्यश्च सामान्यगुण-योगेन रसाः निष्पद्यन्ते।**

सन्दर्भ—

1. नाट्यशास्त्र 6,32
2. काव्यप्रकाशः 4/26-27
3. साहित्यदर्पणा 3/2-3
4. धर्मदत्त - सा. द. तृ. प.
5. अ. भाग-1, पृ. 274
6. लोचन, पृ. 83
7. काव्यप्रकाश 4/5/6 पर प्रदीपनाम टीका, पृ. 74
8. अभिनवभारती भाग-1, पृ.274-78
9. काव्यप्रकाश, पृ.4-54 पर प्रदीप नामक टीका, पृ. 77
10. अभिनवभारती (नाट्यशास्त्र) भाग-1, पृ. 278-79
11. लोचन, पृ. 18
12. अग्निपुराण अ. 336/33

SHODH CHETNA – YEAR-2 (JAN. TO MARCH, 2016) VOL. 1
ISSN : 2350-0441

महादेवी वर्मा के काव्य में दृढ़ संकल्पशक्ति, एक प्रेरणादायक स्त्रोत

❐ उमेश कुमार 'निराला'

शोध सारांश

दृढ़ संकल्पशक्ति एक ऐसा महत्वपूर्ण साधन है जिसके माध्यम से लक्ष्य कितना भी दुष्कर प्रतीत हो फिर भी वह सुगम और सुलभ हो जाता है। संकल्प के बिना सुलक्ष्य की प्राप्ति असम्भव होती है। छायावादी कवयित्री महादेवी वर्मा का काव्य दृढ़ संकल्प भावों से ओत-प्रोत है। लाक्षणिक शैली से युक्त इनका काव्य एक सच्ची साधिका के रूप में इन्हें प्रतिष्ठित करता है। महादेवी वर्मा के काव्य में दृढ़ संकल्पशक्ति, अदम्य उत्साह, साधना की दृढ़ता और अडिग आत्मविश्वास की सफल अभिव्यक्ति हुई है। कवयित्री के काव्यगत भावों के माध्यम से प्रत्येक प्राणी को अपने सुकर्मपथ पर अग्रसर और अडिग रहने की सतप्रेरणा मिलती है, जिसका प्रस्तुत शोध में प्रमुखता से अध्ययन किया गया है।

छायावादी कवयित्री महादेवी वर्मा का काव्य संकल्पयुक्त ओजस्वी विचारों से परिपूर्ण है। लक्ष्य की प्राप्ति हेतु दृढ़ संकल्प विचारों का मनोरम समावेश इनके काव्य की पहचान है। इनके काव्यगत विचारों के आधार पर हर प्राणी अपने लक्ष्य को सुचारू रूप से प्राप्त करने में समर्थ हो सकता है।

कवयित्री महादेवी वर्मा का विचार है कि जब हम एक बार सोच-समझकर अपना लक्ष्य बना लेते हैं तो निश्चित रूप से उस लक्ष्य तक पहुँचना हमारा परम कर्तव्य होता है। वैसे देखा जाये तो लक्ष्य की प्राप्ति के मार्ग पर चलते समय अनेक कठिनाइयाँ हमारे सामने प्रकट होती है। किन्तु हमें उन कठिनाइयों का डटकर सामना करते हुए लक्ष्य तक पहुँचना ही चाहिए। लक्ष्य प्राप्त किये बिना बीच मार्ग से हटना कायरता का प्रतीक होता है। कवयित्री का विचार है—

चिर सजग आँखें उनीदी, आज कैसा बाना
जाग तुझको दूर जाना, जाग तुझको दूर जाना।[1]

अर्थात् साधना के पथ पर चलने वाले ऐ मेरे मन तूने सोच-समझकर परमात्मा रूपी लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए साधना पथ पर चलने का विचार बनाया था तो उस समय तेरी आखों में एक सुदृढ़ भावों का प्रस्फुटन हुआ था। किन्तु जब साधना के पथ चलने लगा तो किन कारणों से तेरे उन्हीं आखों से अब निराशा के भाव प्रकट होने लगे हैं। अगर तू माया मोह के जाल में पड़कर बीच साधना-पथ पर विचलित होगा तो निश्चित रूप से तुझे परमात्मा रूपी लक्ष्य की प्राप्ति नहीं होगी। इसलिए सजग हो जा, निराशा को त्याग दे अर्थात् चैतन्य होकर दृढ़ संकल्प भावों से आगे बढ़ता चल। ऐसा करने से तुझे एक-न-एक दिन परमात्मा रूपी लक्ष्य की प्राप्ति हो ही जायेगी।

कवयित्री का उपर्युक्त विचार हरएक साधना पथिक के लिए प्रेरणादायक स्त्रोत है जिनके आधार पर लक्ष्य की प्राप्ति हो ही जाती है। महादेवी वर्मा का विचार है कि साधना मार्ग पर चलते समय चाहे जैसी भी कठिन

* अध्यापक, जनता इन्टर कॉलेज, जुनावाई, सम्भल (उ.प्र.), एम.ए. (हिन्दी), यू.जी.सी. नेट

परिस्थिति आये, फिर भी हमें निडरता के साथ आगे बढ़ते ही रहना चाहिए—

अचल हिमगिरि के हृदय में आज चाहे कम्प हो ले
या प्रलय के आसुओं में मौन अलसित व्योम रो ले
जाग, या विद्युत शिखाओं में निठुर तूफान बोले
पर तुझे है नाश पथ पर चिह्न अपने छोड़ आना
जाग तुझको दूर जाना।[2]

अर्थात् जिस साधना के मार्ग पर हम चलने लगते हैं तो उस समय हो सकता है कि हमारे विनाश की भी परिस्थिति आ सकती है किन्तु हमें नाश पथ पर दृढ़ संकल्प भावों से आगे बढ़ते ही रहना चाहिए। कवयित्री के उपयुक्त विचार अति सारगर्भित हैं, कहा भी गया है कि ''एक सिद्धान्तवादी व्यक्ति अपने सिद्धान्त मार्ग पर चलते समय अनेक कठिनाइयों का सामना करता है, उसे अनेक प्रताड़ना भी मिलती है किन्तु वह अपने सिद्धान्त मार्ग से कभी भी विचलित नहीं होता है।'' संस्कृत साहित्य में भी कहा गया है—

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु
लक्ष्मीः समाविशतु अच्छतु वा यथेष्ठम्
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा
न्यायात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः[3]

महादेवी वर्मा के काव्य में दृढ़ भावों का समावेश तो प्रखरता से भरा हुआ है—

आग हो उर में तभी दृग में सजेगा आज पानी
हार भी तेरी बनेगी मानिनी जय की पताका
है तुझे अंगार शैय्या पर मृदुल कलियाँ बिछाना।[4]

उपर्युक्त काव्य पंक्तियों से महादेवी वर्मा का तात्पर्य है कि जब तक हमारे हृदय में उत्साह की अग्नि प्रज्ज्वलित नहीं होगी तब तक सुलक्ष की प्राप्ति असम्भव रहेगी। वास्तव में हर एक प्राणी को सुकर्म पथ पर चलते समय भले ही मृत्यु का सामना करना पड़े फिर भी वह मृत्यु (हार) माननीयों (शहीदों) जैसी विजयपताका का कान्तिमय स्वरूप माना जाता है। इस विषय में चिन्ता नहीं होनी चाहिए। कवयित्री का भाव है कि साधना-पथ पर कितने भी कठोर कांटे क्यों न भरे हों किन्तु हमें अपने सुदृढ़ भावों, अदम्य उत्साह से उस अंगार शैया भी मृदुल कलियाँ जैसी सुगम सुलभ परिस्थिति बना देना, यही एक सच्चे साधक, सुकर्म पथिक की पहचान होती है।

दीपशिखा नामक काव्य-संग्रह में अपने उत्साहपूर्ण विचारों को स्पष्ट करते हुए कवयित्री कहती हैं कि—

पंथ होने दो अपरिचित
प्राण रहने दो अकेला।[5]

महादेवी वर्मा के काव्य में स्वाभिमान की भावना कूट-कूट कर भरी हुई है। वे कहती हैं कि मेरे साधना का मार्ग वैसे तो अपरिचित है अर्थात् मेरे द्वारा जाना पहचाना नहीं है, फिर भी ये दुनिया वालों इस साधना के पथ पर मैं सिर्फ अकेले ही चल कर लक्ष्य को प्राप्त करना चाहती हूँ। इसके लिए मुझे किसी दूसरे के सहयोग की आवश्यकता नहीं है और मुझे पूर्ण विश्वास भी है। कि मैं एक-न-एक दिन उस परमात्मा रूपी लक्ष्य को प्राप्त करके ही रहूँगी। अर्थात् कवयित्री का तात्पर्य है कि सच्चे अर्थों में तो अध्यात्म पथ पर प्राणी को अकेले चलने की भावना होनी चाहिए तभी परमात्मा की प्राप्ति सम्भव होती है।

अदम्य एवं स्पष्ट संकल्प भावों को स्पष्ट करती हुई कवयित्री कहती है कि हमने तो कभी हार स्वीकार करना सीखा ही नहीं है—

अन्य होगें चरण हारे
और हैं जो लौटते, दे शूल को संकल्प सारे
दुखव्रती निर्माण उनमद यह अमरता नापते पद
बांध देगें अंक संसृति ते तिमिर में सवर्ण वेला।[6]

अपने विचारों को व्यक्त करती हुई कवयित्री कहती है कि साधना पथ चलने हेतु जो व्यक्ति एक समय दृढ़

भावों से युक्त होकर संकल्प लेकर जब साधना-पथ पर चलने लगता है तो पथ पर संकट को देखकर घबरा जाता है और हार मानकर पीछे मुड़ जाता है, ऐसे कायर व्यक्तियों जैसा मैं नहीं हूँ। मेरे चरण कभी भी हार मानने वाले नहीं हैं क्योंकि दुःखों, संकटों से रहते हुए मेरे चरणों ने तो दुःख का व्रत ही धारण कर लिया है। मेरे चरण अपने आपको अमर मानकर दृढ़ विश्वास के साथ चलने को तत्पर हैं कि संसार के परिश्रम और उत्साह से परिपूर्ण स्वर्णिम अवसर भर देंगे।

कवयित्री को तो दुःखमय (संकटमय) जीवन ही अतिप्रिय है क्योंकि बिना दुःख के जीवन में उन्हें आनन्द ही नहीं मिलता है—

वे मुस्काते फूल नहीं आता जिनको मुरझाना वे तारों के दीप, नहीं जिनको भाता बुझ जाना ऐसा तेरा लोक, वेदना नहीं नहीं जिसमें अवसाद जलना जाना नहीं, नहीं जिसने जाना मिटने का स्वाद क्या अमरो का लोक मिलेगा, तेरी करूणा का उपहार? रहने दो हे देव, अरे यह मेरे मिटने का अधिकार।[7]

अर्थात् कवयित्री को हमेशा खिले रहने वाले फूलों में कोई विशेष महत्त्व नहीं दिखता उनका विचार है कि हे परमात्मा अगर मुझ पर आप करूणा दृष्टि रखते हुए स्वर्ग जैसी सारी सुखदायी परिस्थिति प्रदान करना चाहते हैं तो मुझे आपकी करुणा और दया की कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि दुःख और सुख दोनों स्वरूपों में जीवन का अपना विशेष महत्त्व होता है। जो नित प्रति नवीनता को प्राप्त करे वहीं कवयित्री को आनन्दमय प्रतीत होता है और वे विश्वास के साथ कहती है कि दुःख (संकट) के साथ जीवन जीना मेरा अपना अधिकार है। अर्थात् कवयित्री को संकटों से कभी हार मानना या दूर रहना पसंद ही नहीं है क्योंकि स्वर्ण की पहचान अग्नि में तपाये जाने पर ही होती है।

छायावादी कवयित्री महादेवी वर्मा तो यहाँ तक दृढ़ विश्वास के साथ साधना-पथ पर चलना चाहती है कि चाहे परमात्मा के माध्यम से कितनी भी संकट परिस्थिति के साथ परीक्षा की घड़ी से गुजरना पड़े तो भी मैं हृदय से इतना दृढ़ संकल्पवान हूँ कि हे मेरे परमात्मा रूपी प्रियतम आपसे एक-न-एक दिन मिलकर ही रहूँगी; यथा—

हास का मधुदुत भेजो
रोष की भ्रूभंगिमा पतझार को चाहे सहेजो
किन्तु ले मिलेगा उर अचंचल,
वेदना जल स्वप्न शतदल।[8]

महादेवी वर्मा को पूर्ण आशा और विश्वास है कि—

झंझा की पहली नीरवता, सी नीरव मेरी साधे, भर देगीं उन्माद प्रलय का मानस की लघु कम्पन्न में।[9]

स्वाभिमानी भावों को प्रकट करती हुई कवयित्री के विचार को देखा जा सकता है—

आलोक जहाँ लुटता है
बुझ जाते है तारगण
अविरल जला करता है
पर मेरा दीपक सा मन।[10]

वास्तव में कवयित्री महादेवी वर्मा के काव्य में साहस, निर्भीकता और अदम्य उत्साह से युक्त दृढ़ संकल्प भाव है जिसके माध्यम से वे जीवन जीना चाहती है। यथा—

जब ज्वाला से प्राण तपेगे
तभी मुक्ति के स्वप्न ढलेगे
उसको छूकर मृत सांसे भी
होगी चिनगारी की माला
मस्तक देकर आज खरीदेगें हम ज्वाला।[11]

निष्कर्ष—छायावादी कवयित्री महोदवी वर्मा का काव्य ओज, अदम्य साहस, आशान्वित एवं दृढ़ संकल्प भावों से युक्त प्रेरणादायक काव्य है, इन्हीं आधारों पर ही

महादेवी वर्मा को आधुनिक युग की मीरा कहा जाता है। क्योंकि जैसे अनेक प्रताड़ना और बन्धन लगाये जाने के बाद भी मीरा ने अपने प्रियतम कृष्ण प्रेम को किसी भी कीमत पर नहीं त्यागा, चाहे भले ही विष का प्याला ही क्यों न पीना पड़ा। ठीक वैसे ही महादेवी वर्मा के काव्य में संकल्प भाव भी है। इन्हें चाहे कैसी भी संकट भरी प्रताड़ना क्यों न सहन करना पड़े फिर भी बिना लक्ष्य को प्राप्त किये पीछे हटना पसंद नहीं है, इसके बदले भले ही सिद्धान्त मार्ग पर चलते समय मृत्यु ही क्यों न गले लगाना पड़े। कवयित्री का उपर्युक्त काव्यभाव सारगर्भित है, सम्यक् मार्ग प्रदायक है और किसी भी प्राणी के लिए कर्म पथ पर अग्रसर और तत्पर रखने के लिए प्रेरणादायक स्त्रोत हैं जो यर्थात् ही है।

सन्दर्भ—

1.	गीत	सांध्यगीत
2.	गीत	सांध्यगीत
3.	नीतिशतकम्	श्लोक 84 भर्तृहरि
4.	गीत	सांध्यगीत
5.	गीत	दीपशिखा
6.	गीत	दीपशिखा
7.	अधिकार	नीहार
8.	गीत	दीपशिखा
9.	आशा	रश्मि
10.	अभिमान	नीहार
11.	देशगीत	प्रथम सोपान

SHODH CHETNA – YEAR-2 (JAN. TO MARCH, 2016) VOL. 1
ISSN : 2350-0441

वैदिक वाङ्मय में 'मोक्ष धर्म'

❐ डा. संध्या कुमारी

शोध सारांश

मानव जीवन के चार पुरुषार्थों—धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष में 'मोक्ष' को 'परम पुरुषार्थ' कहा गया है। सब प्रकार के माया एवं अज्ञान जनित बन्धनों से मुक्त या छुटकारा पाना मानव जीवन का चरम लक्ष्य है। आत्मा, जिसे स्वरूपतः नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त एवं आनन्दस्वरूप माना गया है, के स्वरूप को जानना परमावश्यक है। दुःखों से निवृत्ति तथा शाश्वत् आनन्द की प्राप्ति को ही 'मोक्ष' कहते हैं। इसलिए सब प्रकार के बन्धनों को पार करके जन्म-मृत्यु एवं सुख-दुःखों के चक्र से छूटकर निरतिशथ आनन्द की नित्य स्थिति ही 'मोक्ष' के नाम से अभिहित है।

'मोक्ष' एवं 'मोक्ष धर्म' से अभिप्राय—व्युत्पत्ति की दृष्टि से मोक्ष शब्द 'मोक्ष' धातु से भाव और करण अर्थ में घञ् प्रत्यय लगाकर निष्पन्न होता है।[1] शब्द कल्पद्रुम के अनुसार 'मोक्ष' शब्द का निर्वचन है—मोक्ष्यते दुःखमनेन[2] अर्थात् जिसके द्वारा दुःख से छुटकारा पाया जाता है। मोनियर विलियम्स के अनुसार मोक्ष का अभिप्राय है—सांसारिक सत्ता (आवागमन) से मुक्त होना अथवा अन्तिम रूप से (नित्य रूप से) मुक्ति।[3]

'मोक्ष-धर्म' के अन्तर्गत आए धर्म शब्द का अर्थ है—कर्त्तव्य-कर्म का नियम। अतः 'मोक्ष-धर्म' शब्द का अर्थ हुआ—वे कर्त्तव्य कर्म या नियम जिनका पालन मनुष्यों को सांसारिक बन्धनों से मुक्ति पाने के लिए करना चाहिए। मोनियर विलियम्स ने भी इसकी पुष्टि करते हुए कहा है कि 'मोक्ष धर्म' उन नियमों या उपायों को कहते हैं जिनसे मोक्ष या अपवर्ग की प्राप्ति होती है।[4]

वैदिक वाङ्मय में 'मोक्ष-धर्म'—वैदिक संहिताओं में 'मोक्ष' सम्बन्धी धारणा उपलब्ध होती है। वेदों में 'अमृत'[5] एवं अमृतत्व[6] शब्द का बहुधा प्रयोग मिलता है जो मोक्ष के ही अर्थ में प्रयुक्त है। मोक्ष को 'परमपद' नाम भी दिया गया है। यही विष्णु का परमधाम है।[7] जिस विष्णु के परम पद में मधु अर्थात् अलौकिक आनन्द का स्रोत है। वेद में ऋषियों द्वारा मृत्यु-दुःख एवं बन्धनों से मुक्ति की प्रार्थना की गई है।[8] वहाँ पर पाशों से मुक्त होने की बात कही गयी है[9] ऋग्वेद में वरुण देवता से प्रार्थना है कि वह दुःख रूपी बन्धनों से छुटकारा दिलाये तथा दोष रूपी निकृष्ट बन्धनों का भी विनाश करे।[10] ऋग्वेद में मुमुक्ष्वा पद का भी प्रयोग मिलता है।

महर्षि दयानन्द के अनुसार 'मुमुक्ष्वा' वे है जो संसार से छूटने की इच्छा करते हैं।[11] उस परमात्मा को जानकर और प्राप्त होकर जन्म-मरण आदि क्लेशों के

* असि. प्रोफेसर (संस्कृत विभाग), पी.सी. बागला (पी.जी) कॉलेज, हाथरस

समुद्र समान दुःख से छूटकर वे मुमुक्षु-जन परमानन्दस्वरूप मोक्ष को प्राप्त होते हैं—

मनुष्यस्तमेव पुरूषं परमात्मानं विदित्वाऽतिमृत्युं मृत्युमतिक्रान्तं मृत्योः पृथग्भूतं मोक्षरव्यमानन्दमेति प्राप्नोति।[12]

सायण ने ऋग्वेद में 'विष्णु के प्रिय पाथः' को अविनश्वरब्रह्मलोकम्' कहा है और उस परमपद के विषय में बतलाया है कि वह केवल सुखात्मक है, जहाँ भूख-प्यास, जरामरण एवं पुनरावृत्ति आदि का भय नहीं है तथा जहाँ संकल्प मात्र से ही अमृत भोग प्राप्त हो जाते हैं।[13]

ऋग्वेद में अमृतत्व की प्राप्ति हेतु सोम देवता से प्रार्थना की गयी है कि हमें उस अमृतत्व की प्राप्ति हो जहाँ शाश्वत् प्रकाश और सुख है तथा जो लोक ज्योतिष्मान् है, जहाँ आनन्द-ही-आनन्द है। वह अमृत अवस्था वृद्धि तथा क्षय से रहित है—

यत्र ज्योतिजस्त्रं यस्मिँल्लोके स्वर्हितम्। तस्मिन्मांधेहि। पवमानामृते लोके अक्षित इन्द्रायेन्दो परिस्त्रव।।[14]

ब्राह्मण-ग्रन्थों में भी अमरत्व के अनेक विचारों का उल्लेख दिखायी देता है। शतपथ-ब्राह्मण में कहा गया है कि संसारग्रस्त है और यह मृत्यु ही दिन रात मनुष्यों की आयु को क्षीण करती है।[15] इसलिए इससे छूटने का उपाय मनुष्य को करना चाहिए। शतपथ-ब्राह्मण में मुक्त पुरुष के लिए अमरत्व की कल्पना भी की गयी है।[16] वहाँ यह भी कहा गया है कि आत्मयाजी व्यक्ति की अहि रूपी आत्मा मर्त्य शरीर के केंचुलीवत् त्यागकर मुक्त हो जाता है।[17] यहीं पर आत्मयाजी को देवयाजी से श्रेष्ठ कहा गया है।[18] अग्निहोत्र से यजन करने वाला जरा तथा मृत्यु से छुटकारा पा लेता है।[19]

इस प्रकार शतपथ-ब्राह्मण में आवागमन के चक्र से मुक्ति का वर्णन है तथा अमरत्व को ही सवोत्तम कहा गया है।[20] उपनिषदों में मोक्ष को परम पुरुषार्थ माना गया है। बन्धन का विनाश ही मोक्ष है जिसका साधन है ज्ञान। यहाँ वर्णित है कि आत्मा और परमात्मा में भेद दृष्टि ही बन्धन का कारण है तथा दोनों में अभेद दृष्टि ही मोक्ष है। श्वेताश्वतर उपनिषद् में कहा गया है कि जीव अपने को और सर्वनियन्ता परमात्मा को पृथक्-पृथक् मानकर ही इस महान चक्र में भ्रमण करता रहता है, परन्तु जब उसे जीव और परमात्मा के अभिन्न स्वरूप का ज्ञान हो जाता है तब वह अमृतत्व को प्राप्त हो जाता है।[21] मोक्ष के लिए ब्रह्मात्मतत्व का ज्ञान ही अपेक्षित है इसी से अमृतत्व प्राप्त होता है, कोई दूसरा मार्ग नहीं।[22]

उपनिषदों में आत्मज्ञान के महत्व का प्रतिपादन किया गया है कि आत्मज्ञानी शोक के पार हो जाता है।[23] आत्मा के स्वरूप के विषय में[24] कहा गया है कि यह अजन्मा, नित्य शाश्वत्, अनादि तथा अनन्त[25] है। उसे तर्क, वेदाध्ययन, मेधा एवं अत्यधिक श्रवण से नहीं जाना जा सकता। इसीलिए इसे 'निहितं गुहायाम' कहा गया है।[26]

मुण्डकोपनिषद् में बताया गया है कि उस परात्पर परमात्मा का साक्षात्कार कर लेने पर हृदय की ग्रन्थि टूट जाती है, सारे संशय नष्ट हो जाते हैं तथा समस्त कर्म क्षीण हो जाते हैं[27] जिस प्रकार नदियाँ बहती हुई अपने नाम और रूप को छोड़कर समुद्र में लीन हो जाती है, उसी प्रकार विद्वान् नाम और रूप से मुक्त होकर परात्पर, दिव्य पुरुष को प्राप्त हो जाता है।[28] प्रश्नोपनिषद् में कहा गया है—उस जानने योग्य पुरुष को जानो, जिससे तुम्हें मृत्यु व्यथित न करे।[29] अतः उपनिषदों में अज्ञान को बन्धन का कारण तथा ज्ञान को मोक्ष का साधन कहा गया है तथा आत्मा-परमात्मा के ऐक्यभाव को ही मोक्ष माना गया है।

सूत्र-ग्रन्थों में भी आत्मज्ञान के महत्व पर प्रकाश डाला गया है कि आपस्तम्ब धर्मसूत्र में कहा गया है कि आत्मज्ञान के लाभ से बढ़कर कोई अन्य लाभ नहीं है।[30] सभी जीवित

प्राणियों का शरीर उस आत्मा का निवास स्थान होता है, जो बुद्धि रूपी गुफा में शयन करता है, जो पाप रहित है, जरा, रोग इत्यादि सभी दोषों से मुक्त है, अमर है। चंचल प्राण शरीर में विद्यमान उस अचल आत्मा का जो जन साक्षात्कार कर लेते हैं वे अमर हो जाते हैं—

पू प्राणिनः सर्व एव गुहाशयस्याऽहन्यमानस्य विकल्मष-
स्थाऽचलं चलनिकेतं येऽनुतिष्ठन्ति तेऽमृताः।।[31]

आत्मा के स्वरूप के विषय में कहा गया है कि वह आत्मा सभी प्राणियों में नित्य, अमर, ध्रुव अर्थात् विकार रहित है, ज्ञान स्वरूप है, अंगहीन तथा शब्द और स्पर्श गुण से परे है तथा वह अत्यन्त शुद्ध है—

सर्वभूतेषु यो नित्यो विपश्चिदमृतो ध्रुवः।
अनंगोऽशब्दोऽशरीरोऽस्पर्शश्चमह्यंच्छुचिः ।।[32]

प्राणियों का नाश करने वाले सभी दोषों का भी उल्लेख किया गया है कि काम, क्रोध, हर्ष, रोष, लोभ, मोह, दम्भ, द्रोह, असत्यवचन, अतिभोजन इत्यादि दोष प्राणियों का विनाश करने वाले हैं जो योग के माध्यम से ही समाप्त होते हैं। इन दोषों को समाप्त करके उत्तम गुणों के विधान द्वारा आश्रमोचित नियम पालन द्वारा श्रेष्ठ जन विश्वात्मा को प्राप्त होते हैं।[33] गौतम धर्मसूत्र में भी आठ आत्मगुणों का उल्लेख मिलता है जो ब्रह्मलोक की प्राप्ति में सहायक है। वहाँ कहा गया है कि सभी प्राणियों पर दया, क्षमाशीलता, अनसूया, पवित्रता, अनायास (जिस कार्य को करने से अपने को पीड़ा हो, उसे न करना) मंगल (प्रशस्त कर्म का आचरण), अकार्यव्य (किसी से कुछ न माँगना) और अस्पृहा (दूसरे की वस्तु देखकर लालच न करना) ये आठ आत्मगुण हैं। जिसमें ये आठ गुण होते हैं वह ब्रह्मा का सायुज्य पाकर ब्रह्मलोक में निवास करता है—

दया सर्वभूतेषु क्षान्तिरनसूया शोचमनायासो मंगलमकार्यव्यमस्पृहेति। यस्य तु खलु संस्काराणामेक-देशोऽप्यष्टावात्मगुणा अथ स ब्रह्मणः सायुज्यं सालोक्यं च गच्छति।।[34]

इस प्रकार सूत्र ग्रन्थों में भी आत्मा के साक्षात्कार को ही मोक्ष माना गया है किन्तु साथ ही मानव के अपने दोषों के नाश तथा योग द्वारा चित्त-शुद्धि पूर्वक आत्मगुणों के विकास पर भी बल दिया गया है जो ब्रह्मलोक की प्राप्ति में सहायक होते हैं।

निष्कर्ष—निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि वैदिक साहित्य के प्रारम्भ से ही मृत्यु, दुःख एवं बन्धनों से मुक्ति के लिए ज्ञान, यज्ञ, उपासना आदि विभिन्न साधन उपलब्ध होते हैं। विष्णु के परम-पद, अमृतत्व की प्राप्ति जीवन का लक्ष्य दृष्टिगोचर होता है। उपनिषदों में ज्ञान द्वारा आत्मसाक्षात्कार पर बल दिया गया है जिसके फलस्वरूप सभी संशय नष्ट होते हैं तथा कर्मों के बन्धन क्षीण होते हैं। उपनिषदों के समान सूत्र ग्रन्थों में भी आत्मा को नित्य, अमर, ध्रुव, ज्ञानस्वरूप मानकर शरीर में स्थित उसी आत्मा के साक्षात्कार को ही आत्मज्ञान-लाभ कहा गया है जिसके बिना मुक्ति सम्भव नहीं। शान्तिपर्व में प्रतिपादित काम, क्रोध, लोभ आदि योगांगों में प्रतिपादित सत्य, अहिंसा, शौच, सन्तोष आदि के संकेत भी धर्मसूत्रों में मिलते हैं। वैदिक वाङ्मय में वर्णित यह मोक्षधर्म सभी वर्ण, सभी लिंग व सभी आश्रम के व्यक्तियों के लिए सार्वभौमिक व सार्वकालिक है।

सन्दर्भ—

1. आप्टे, संस्कृत हिन्दी कोश, पृ. 819
2. शब्द कल्पद्रुम, पृ. 786
3. Monier Williams–Sanskrit English Dictionary, p. 835.
4. मोनियर विलियम्स, संस्कृत-अंग्रेजी कोश, पृ. 835 राजबली पाण्डेय, हिन्दू धर्म कोश, पृ. 529
5. ऋग्वेद 1।164।21, 4।35।3, 9।113।7-11, यजुर्वेद 32।10, अथर्ववेद 10।8।44, 8।4।4

6. ऋग्वेद 5।4।10, अथर्ववेद 18।3।62
7. विष्णोः परमे मध्व उत्सः, ऋग्वेद 1।154।5
8. त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनात् मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्।।ऋग्वेद 7।59।12, ऋग्वेद 3।60
9. ऋग्वेद 1।24।12-13
10. ऋग्वेद 1।25।21
11. ऋग्वेद 1।140।4, दयानन्द भाष्य
12. ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, पृ. 131
13. ऋग्वेद ।154।5 पर सायण भाष्य
14. ऋग्वेद 9।113।7, 9।113।11
15. एस वै मृत्युर्यत्संवत्सरः। एष हि मर्त्यानामहोरात्राभ्यामायुः क्षिणोति अथ म्रियन्ते। तस्मादेष एव मृत्युः। शतपथ ब्राह्मण 10।4।3।1
16. शतपथ ब्राह्मण 10।4।3।10
17. स यथाऽहिस्त्वचो निर्मुच्येत् एवमस्यास्मान्मर्त्यांच्छरीरात्पाप्यमनोनिर्मृच्यते। शतपथ ब्राह्मण 11।2।6।13
18. आत्मयाजी स्रेयान्देवयाजी। शतपथ ब्राह्मण 11।2।6।13
19. शतपथ ब्राह्मण 12।4।1।1
20. शतपथ ब्राह्मण 8।7।4।18
21. श्वेताश्वर उपनिषद् 1।16
22. श्वेताश्वर उपनिषद् 6।15
23. आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्। तैत्तिरीय उपनिषद् 3।6
24. न जायते म्रियते वा विपश्चिन्नायं कुतश्चिन्न वभूव कश्चित्। अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे। कठोपनिषद् 1।2।18
25. कठोपनिषद् 1।2।23
26. कठोपनिषद्, 1।2।20, श्वेताश्वतर उपनिषद् 3।20
27. मुण्डकोपनिषद् 2।28
28. यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रेऽस्तं गच्छन्ति नामरूपे विहाय। तथा विद्वान् नामरूपाद् विमुक्तः, परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम्।। मुण्डकोपनिषद् 3।2।8
29. पृश्नोपनिषद् 6।6
30. आत्मलाभान्न परं विद्यते। आपस्तम्ब धर्मसूत्र 1।8।2
31. आपस्तम्ब धर्मसूत्र 1।8।4
32. आपस्तम्ब धर्मसूत्र 1।8।7
33. आपस्तम्ब धर्मसूत्र 1।8।12-14
34. गौतम धर्मसूत्र 1।8।24, 26

SHODH CHETNA – YEAR-2 (JAN. TO MARCH, 2016) VOL. 1
ISSN : 2350-0441

महिलाओं के उत्थान एवं विकास में गांधी जी के विचार

(भारतीय विधि के संदर्भ में)

❒ डॉ. विनोद तिवारी*
❒ बीरेन्द्र कुमार तिवारी**

शोध सारांश

विश्व में मातृ शक्ति से अधिक और कोई भी पूज्यनीय नहीं है। परिवार में प्रेम, वात्सल्य, ममता, अनुराग की प्रतिमूर्ति तथा गृहस्थ जीवन को सफलतापूर्वक संचालित करने वाली शक्ति का नाम ही महिला है। महिलाएँ विभिन्न कालों में अपमानित एवं तिरस्कृत हुई हैं, किन्तु अनेक विद्वानों, समाज–सुधारकों एवं राष्ट्रपिता महात्मा गांधी जैसे महान पुरूषों एवं समाज–सुधारकों ने महिला उत्थान एवं उन्हें दीन–हीन एवं असहाय स्थिति से उभारने के लिए समय–समय पर अनेक सुधार अन्दोलन चलाये हैं।

19वीं शताब्दी में भारत में पुनर्जागरण का आरम्भ बंगाल से हुआ। राजा राममोहन राय ने 1814 में कलकत्ता में ''आत्मीय सभा'' की स्थापना की। राजा राममोहन राय ने सती–प्रथा के खिलाफ गंभीर आन्दोलन चलाया। एक समय था जब अलाउद्दीन खिलजी व फिरोजशाह तुगलक के शासन काल में जौहर प्रथा के साथ–साथ सती प्रथा का प्रचलन था। सती प्रथा अनिवार्य तो नहीं थी परन्तु जो विधवा सती नहीं होती थीं, उसे अत्यन्त अपमानित जीवन व्यतीत करना पड़ता था। राजा राममोहन राय के प्रयासों और 1829 में अंग्रेजी शासन ने सती प्रथा को अवैध घोषित किया।

महात्मा गांधी के समक्ष भी महिलाओं की दीन–हीन दशा का उपर्युक्त परिदृश्य था। गांधी जी शोषित, अपमानित और जर्जरित मानवता के मसीहा थे। महिला को कमजोर, अबला और असहाय कहना गांधीजी की दृष्टि में न्याय संगत नहीं है। गांधी जी द्वारा किए गए प्रयास बीसवीं शताब्दी में बहुत प्रभावी हुए। उन्होंने ''अबला'' कहे जाने वाले समाज के इस वर्ग को ऊपर उठाने के सराहनीय आंदोलन किये। वे महिलाओं और पुरुषों को समान राजनैतिक आन्दोलन में भाग लेने के लिए उत्साहित करते थे। उन्हीं के प्रयासों से ''असहयोग आन्दोलन'' में भारतीय स्त्रियाँ दुर्गा बनकर स्वतंत्रता संग्राम में कूद पड़ीं। गांधी जी दहेज प्रथा, बाल विवाह तथा कुलीन विवाह के घोर विरोधी थे। उन्होंने अन्तर्जातीय विवाह पर बल दिया। गांधी जी ने समय–समय पर अंग्रेजी सरकार को महिलाओं की दशा सुधारने सम्बन्धी पत्र भेजते थे।

* प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष (विधि), राजीव गांधी महाविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)
** सहायक प्राध्यापक (विधि) – राजीव गांधी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)

कुंजी शब्द – महिला अवला नहीं है, महिला पुरुष से कम नहीं, स्त्री एवं पुरुष एक–दूसरे के पूरक है, राजनैतिक क्षेत्र में महिला की भागीदारी।

भूमिका :– गांधी जी द्वारा महिलाओं के उत्थान में किये गये प्रयासों को निम्नानुसार उल्लेख किया जा रहा है।

गांधी जी के अनुसार महिला अबला नहीं है नारी को अबला कहना उसकी निंदा है। यह पुरुष और नारी के प्रति अन्याय है। उनका मानना था कि स्त्री के बिना पुरूष का कोई महत्व नहीं है। यदि अहिंसा मानव जाति का एक मौलिक यंत्र है जो भविष्य नारी जाति के हाथ में है। ममता, प्यार, अपनत्व की भावनाओं से हृदय को आकर्षित करने के गुण स्त्री से ज्यादा किसमें हो सकता है?[1] जब स्त्री को पुरूष के बराबर अधिकार प्राप्त हो जायेंगे और वह परस्पर सहयोग और सम्बन्ध की शक्तियों का पूरा–पूरा विकास कर लेंगी तो संसार स्त्री शक्ति का सम्पूर्ण विलक्षणता और गौरव के साथ परिचय पा सकेगा।[2] महिला आत्म त्याग की मूर्ति है। टॉल्सटॉय ने कहा है वे पुरूष के सम्मोहक प्रभावों से आक्रान्त हैं। यदि वे अहिंसा की शान्ति पहचान ले तो अपने को अबला कहे जाने के लिए हरगिज राजी नहीं होगी।[3]

गांधी जी के उपरोक्त विचारों के आधार पर महिलाओं के विरूद्ध सभी प्रकार के भेदभाव समापन पर अभिसमय, संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा द्वारा 18 दिसम्बर, 1979 से अंगीकृत किया गया था। यह अभिसमय 3 सितम्बर, 1981 को लागू हुआ।

इसी प्रकार सिविल एवं राजनैतिक अधिकारों की अन्तरराष्ट्रीय प्रसंविदा 1960 के अनुच्छेद 2 भेदभाव के विरूद्ध अधिकार, अनुच्छेद 3 में पुरूष एवं महिला में समानता तथा अनुच्छेद 26 में प्रत्येक व्यक्ति को विधि के समक्ष समानता का अधिकार दिया गया। यहाँ गांधी जी के आन्दोलन को अन्तरराष्ट्रीय मान्यता मिली।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 15 में महिलाओं के लिए विशेष उपबन्ध किया गया।

अनुच्छेद 15 के अनुसार निम्नलिखित उपबन्ध हैं :–

1. राज्य किसी नागरिक के विरूद्ध केवल धर्म मूलवंश, जाति, लिंग, जन्म स्थान या इनमें से किसी के आधार पर कोई भेद नहीं करेगा।

2. कोई नागरिक केवल धर्म, मूलवंश, लिंग, जन्मस्थान या इनमें से किसी के आधार पर :–

(क) दुकानों, सार्वजनिक भोजनालयों, होटलों और सार्वजनिक मनोरंजन के स्थानों में प्रवेश,

(ख) पूर्णतः या भागतः राज्य निधि से पोषित या साधारण जनता के प्रयोग के लिए समर्पित कुओं, तलाबों, स्नानाघाटों, सड़कों और सार्वजनिक समागम के स्थानों के उपयोग के सम्बन्धों में किसी भी निर्योग्यता, दायित्व निर्बंधन या शर्त के अधीन नहीं होगा। कहने का तात्पर्य यह हुआ कि पुरूष और महिला होने के आधार पर उपरोक्त प्रकार का विरोध नहीं किया जायेगा।

महिला अब अबला नहीं है। श्रीमती क्रेकनेल बनाम सेंट ऑफ यू.पी.[4] के बाद में इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया है कि किसी महिला को मात्र महिला होने के कारण सम्पत्ति धारण करने अथवा उसका उपयोग करने से वंचित नहीं किया जा सकता। यदि कोर्ट विधि इस आधार पर सम्पत्ति से वंचित करती है तो वह असंवैधानिक मानी जायेगी।

महिला पुरुष से कम नहीं :–

गांधी जी महिलाओं को पुरूष से किसी भी स्थिति में हेय नहीं मानते थे, भेद नहीं करते थे। वीरता केवल पुरुषों की बपौती नहीं है।[5] महिलाओं

का स्वयं को पुरूषों को अधीन या उनसे हीन सामझने का कोई कारण नहीं है। वे स्त्री को पुरूष का एक ऐसा साथी मानने की कल्पना करते थे कि महिलाएँ समान बौद्धिक क्षमताओं को पूरा करते हुए मनुष्य के जीवन की प्रत्येक क्रिया–कलापों में समान रूप से भाग लेने का अधिकार रखती हैं।[6]

स्त्री पुरूष समानता :– गांधी जी की दृष्टि में प्रत्येक सामाजिक स्थिति में स्त्रियों का समान महत्व है। लड़के तथा लड़की में गांधी जी ने काई अंतर न मानते हुए कहा है कि ''मैं पुत्र एवं पुत्री में काई अंतर नहीं मानता''। पुत्र तथा पुत्री के जन्म का समान रूप से स्वागत किया जाना चाहिए।[7] गांधी जी स्त्री–पुरूष की समानता के सम्बन्ध में किसी प्रकार का समझौता करने को तैयार नहीं थे। गांधी जी के उपरोक्त विचार को आज कानूनी मान्यता विधान मंडल द्वारा विधि का सृजन कर पूर्ण करने का प्रयास जारी है।

स्त्री एव पुरूष एक सिक्के के दो पहलू हैं :–

गांधी जी के अनुसार स्त्री–पुरूष एक–दूसरे के पूरक हैं। स्त्री पुरूष की सहचरी है। उसकी मानसिक शक्तियां पुरूष से कम नहीं है। स्त्री पुरूष के छोटे–से–छोटे कार्य में सहभागी बनने का अधिकार रखती है। पुरूष ने स्त्री को अपनी कठपुतली समझ लिया है। स्त्री को अब इसका अहसास हो गया है। गांधी जी का दृढ़ विश्वास था कि यदि देश की सही शिक्षा यह होगी कि स्त्री को अपने पति से ''न'' कहने की कला सिखायी जाए और यह बताया जाए कि पति की कठपुतली या उसके हाथों की गुड़िया बनके रहना उसके कर्त्तव्य का हिस्सा नहीं है। स्त्री के अपने विशिष्ट अधिकार और कर्त्तव्य हैं। जिस दिन महिला यह सीख लेगी पुरूष उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकता है।[8]

बाल विवाह एवं अनमेल विवाहः–

गांधी जी समाज में बाल विवाह प्रथा के सन्दर्भ में काफी दुःखी थे। इस व्यवस्था से गांधी जी की भावनाओं को बहुत ठेस पहुंची थी। इस प्रथा में एक अवयस्क लड़की का विवाह किसी अधेड़ उम्र के पुरूष के साथ कर दिया जाता था। बाल विवाह में निहित बुराई को वे शारीरिक दोष के रूप में नहीं देखते थे, अपितु नैतिक एवं स्वास्थ्य की दृष्टि से वह उसे हेय (नीच) मानते थे। गांधी जी के अनुसार बाल विवाह एक अनैतिक एवं अमानवीय कृत्य है। जिससे सीधी–साधी (भोली–भाली) लड़कियाँ पुरूषों की विषय–वासना की पूर्ति का साधन बनती हैं, छोटी उम्र में ही माँ बन गई लड़कियों का स्वास्थ्य नष्ट होता है और इन सबसे आगे बढ़कर वे लड़कियाँ विधवाओं की दुर्गति को प्राप्त होती हैं।[9]

गांधी जी के उपरोक्त विचारों के कारण बाल विवाह निरोधक अधिनियम पारित किया गया। इस अधिनियम के अनुसार लड़के के विवाह की न्यूनतम आयु 21 वर्ष और लड़की के लिए 18 वर्ष तय की गई है। विधवा विवाह व अन्तर्जातीय विवाह के लिए कानून बनाये गये। यही नहीं अब शिक्षित होने के बाद लड़के–लड़की का विवाह से पूर्व एक दूसरे को देखना एवं मिलना आवश्यक मानते हैं। अब विवाह में माता–पिता की पसंद या नापसंद का ख्याल आज के युवक एवं युवती पर कोई प्रभाव नहीं करता। वे अपना जीवन साथी चुनने के लिए स्वतंत्र हैं। कानून उनके साथ है इसलिए हिन्दु विधवा पुनर्विवाह 1956 एवं बाल विवाह निरोध 1929 पारित किया गया।

दहेज प्रथा :–

गांधी जी विवाह जैसे पवित्र सामाजिक बंधन को दूषित करने वाली दहेज प्रथा के हमेशा विरोध

में थे। इन्होंने इस कुप्रथा की निंदा करते हुए कहा कि ''यह लड़कियों को बेचने के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है''। गांधी जी तो यह चाहते थे कि ''दहेज मांगने वाला हर व्यक्ति विवाह के अयोग्य घोषित किया जाए। विवाह के लिए दहेज चाहने वालों को किसी प्रकार से प्रताड़ित नहीं किया जाता। उसको नित्य मान–सम्मान दिया जाता है'' यह हमारा दुर्भाग्य है कि किसी लड़की से शादी करने की कीमत ऐंठने की नीचता को निश्चित अयोग्यता नहीं समझा जाता है।[10]

गांधी जी के विचारों की प्रासांगिकता आज 21वीं शताब्दी में कानून के रूप में परिलक्षित हो गया है।

वेश्यावृत्ति :–

गांधी जी पद दलित महिलाओं को कभी नहीं भूलते थे। वे इस देश का दुर्भाग्य मानते थे कि स्त्री कुछ धनराशि लेकर अपने तथा अपने शरीर का विक्रय करती है। गांधी जी के विचार से वेश्यावृत्ति समाज पर अभिशापित कलंक है। गांधी जी इस कुप्रथा से अत्यन्त दुःखी थे उन्होंने कहा कि ''मेरी आत्मा चीख उठती है जब मैं छोटी उम्र की लड़कियों को अनैतिक कार्यों के लिए बेचने की बात सुनता हूँ। वेश्यावृति उन्मूलन के लिए कानून बनाने के साथ–साथ लोकमत एवं लोकमानस को जागृत करने वाले गांधी जी ने बल दिया। वेश्यावृत्ति उन्मूलन एवं महिला अभद्र चित्रण (निषेध) अधिनियम 1986 गांधी जी के विचारों की प्रासांगिकता के कारण अधिनियमित किए गये। वेश्यावृत्ति उन्मूलन हेतु 1956 में अनैतिक व्यापार कानून पारित किया गया। इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने नवम्बर, 2002 में दिये गये निर्णय में कहा कि वेश्याओं को सम्मान के साथ जीवन–यापन का मौलिक अधिकार है। आम लोग सहित पुलिस को भी इनके प्रति सहानुभूति रखनी चाहिए एवं इनका उत्पीड़न नहीं करना चाहिए। इसके साथ ही न्यायालय ने उत्तर प्रदेश सरकार को निर्देश दिया कि वह प्रदेश के हर शहर में वेश्याओं को तकनीकी प्रशिक्षण देने के लिए योजना तैयार करें जिससे वे अपनी जीविका चला सके यहाँ वेश्यावृत्ति के सम्बन्ध में गांधी जी के विचारों को कानून एवं न्यायालयों द्वारा आज मान्यता दी गई है इस प्रकार गांधी जी के विचारों की प्रासंगिकता आज है।

गौरव जैन बनाम भारत संघ[11] के बाद में उच्चतम न्यायालयों ने राज्य और गैर सरकारी स्वैच्छिक संस्थाओं को वेश्यावृत्ति रोकने तथा उनकी सन्तानों को पुनर्वास के लिए समुचित कल्याणकारी उपायों को क्रियान्वित करने के लिए उनको निर्देश दिया। इसके बाद में एक अधिवक्ता की गौरव जैन इण्डिया टुडे पत्रिका में प्रकाशित भारत में वेश्याओं के सन्तानों को समाज कुछ नहीं देता है लेख को पढ़कर अनुच्छेद 32 के अधीन उच्चतम न्यायालय में एक लोकहित याचिका दायर करके ऐसे महिलाओं तथा उनकी सन्तानों की दशा में सुधार करने के लिए सकार को समुचित निर्देश या आदेश देने के लिए अनुरोध किया। न्यायालय ने आगे कहा कि आवास की सुविधा, विधिक सहायता, निःशुल्क परामर्श और इस प्रकार की सभी सेवाओं को उपलब्ध कराये जाये जिससे वे रेड लाइट क्षेत्र में न जाएं।[12]

परदा प्रथा :–

महिलाओं के उद्धार के लिए गांधी जी द्वारा चलाए गए अभियान का सबसे बड़ा अंग था परदा प्रथा की समाप्ति। गांधी जी स्त्रियों के परदा प्रथा के घोर विरोधी थे। उनके अनुसार, यह प्रथा मानसिक दासता की प्रतीक है, यह व्यवस्था हर तरह से अकल्याणकारी है। यह स्त्री के शरीर एवं मन को हानि पहुँचाता है।[13]

भारत के शहरों में पढ़ी लिखी लड़कियों ने परदा करना कम कर दिया है। आज तो परदा प्रथा पूर्णतः समाप्त सी हो गई है। इस प्रकार गांधी जी के विचारों के प्रासांगिकता का प्रभाव स्वतंत्रता के बाद समाज में पड़ा यह कुप्रथा समाप्त हुई।

आर्थिक अधिकार :–

गांधी जी महिलाओं को आर्थिक अधिकार दिये जाने की वकालत की। स्त्री को आर्थिक स्वतंत्रता दिये जाने का विरोध इस आधार पर किया जाता रहा कि इससे स्त्रियों में दुराचार फैल जायेगा और घरेलू जीवन बिखर जायेगा, किन्तु गांधी जी को ऐसे विरोध में कोई तार्किकता नजर नहीं आई। लिंग के आधार पर विभेद करना संविधान के अन्तर्गत विशिष्ट रूप से मना कर दिया गया ताकि महिलाओं को पुरूषों के बराबर दर्जा मिल सके। अनुच्छेद 16 (2) के अन्तर्गत महिलाओं के हित में किये गये विभेद को न्यायोचित ठहराने के लिए अनुच्छेद 15(3) का सहारा लिया जा सकता है।

गांधी जी के विचारों की प्रासांगिकता एवं नारी उत्थान के प्रयासों को न्यायालय ने अपने निर्णयों में सही माना है। विजय लक्ष्मी बनाम पंजब विश्वविद्यालय[14] के बाद में उच्चतम न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित किया गया कि महिलाओं को विद्यालय में नियुक्ति के लिए महिलाओं हेतु पद आरक्षित कर देना उचित नहीं है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 16 से अनुच्छेद 15 (3) पर प्रतिबन्ध नही लगाया जा सकता है।

सी.वी. मुथम्म बनाम यूनियन ऑफ इण्डिया के बाद में इण्डियन फॉरेन सर्विस (कन्डक्ट एन्ड डिसिप्लीन) नियम 1961 के अनुसार महिला कर्मचारी को विवाह करने से पहले अनुमति प्राप्त करनी चाहिए तथा यदि अपनी पारिवारिक परिस्थितियों से सेवा में बाधा पहुँचती है तो उसे सेवा से त्याग पत्र देना पड़ सकता है। उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि उक्त सेवा नियम भारतीय संविधान के अनुच्छेद 16 का उल्लंघन है।

आज गांधी जी की सोच के अनुसार महिलायें आर्थिक रूप से स्वतंत्र हैं। वे प्रशासनिक पदों एवं राजनैतिक उच्च पदों पर आसीन हैं। वे अब माता पिता एवं अपने पति पर आश्रित नहीं है। गांधी जी के विचार के अनुसार शासकीय सेवा में महिलाओं को आरक्षण देकर सरकार ने उनकी आर्थिक स्वतंत्रता एवं आत्मनिर्भरता को बढ़ाया है।[15]

राजनैतिक क्षेत्र में महिलाओं की भूमिका

सार्वजनिक कार्यों में स्त्रियों की उपयोगिता स्वीकार करने के साथ–साथ गांधी जी ने स्त्रियों को राजनीति में पुरूषों के समान क्रियाशील देखना और बनाना चाहते थे। गांधीजी का मानना था कि आज मनुष्य के जीवन पर राजनीति का प्रभाव इतना पड़ गया है कि वह उससे यदि बचने की भी आकांक्षा करने पर भी बच सकता है। वर्तमान राजनीति में आई गिरावट को यदि समाप्त करना है तो स्त्रियों के राजनीति में प्रवेश करने की स्थिति को स्वीकार करना होगा।

गांधी जी ने उपरोक्त विचारों से प्रभावित होकर बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में महिलाओं की सत्ता में भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए संविधान का 73वाँ व 74वाँ संशोधन अपना अनूठा महत्व रखता है जिसके तहत सन् 1992 में संविधान में संशोधन कर पंचायती राज्य संस्थाओं एवं नगर पालिकाओं में महिलाओं के लिए एक तिहाई स्थान आरक्षित किये गये हैं।

अनुच्छेद 243(2) के अन्तर्गत पंचायतों में महिलाओं के लिए आरक्षण की व्यवस्था की है।

अनुच्छेद 243(6) नगर पालिकाओं में महिलाओं के आरक्षण के प्रावधान हैं।

संविधान के अनुच्छेद 42 में संशोधन द्वारा जोड़े गये 51 (क) में नागरिक के मूल कर्त्तव्यों का उल्लेख किया गया है। इसमें स्त्रियों के सम्मान को भी स्थान दिया गया है।

संविधान के भाग 4 में राज्य की नीति निर्देश तत्वों में महिलाओं के लिए कई विशेष उपबन्ध किये गये है।

अनुच्छेद 39 (क) राज्य अपनी नीति इस प्रकार संचालन करेगा कि पुरूष और स्त्री सभी नागरिकों को समान रूप से जीविका के पर्याप्त साधन प्राप्त करने का अधिकार हो अनुच्छेद 39 (घ) स्त्री एवं पुरूष दोनो को समान कार्य के लिए समान वेतन हो बाद में समान पारिश्रमिक अधिनियम 1976 पारित किया गया।

अनुच्छेद 39(ड) पुरूष और स्त्री कार्यकारों के स्वास्थ्य और शक्ति तथा बालकों की सुकुमार अवस्था का दुरूपयोग न हो और आर्थिक आवश्यकता से विवश होकर नागरिको को ऐसे रोजगार में न जाना पड़े जो उनकी आयु या शक्ति के अनुकूल न हो।

अनुच्छेद 42 राज्य काम की न्याय संगत और मानवांचित दशाओं को सुनिश्चित करने के लिए और प्रसूति सहायता के लिए उपलब्ध करेगा।

संविधान में राज्य के नीति निर्देशक तत्वों का समावेश कराने में गांधी जी का सर्वाधिक योगदान था। महिलाओं की सुरक्षा एवं कल्याण हेतु राज्य के नीति निर्देशक तत्व एवं अन्य काई संवैधानिक संशोधन हुए जो गांधी जी के विचारों के कारण आज महिला आत्म–निर्भर हो गई है उसे अब अबला नही कहा जा सकता।

पंचायतों के गठन का विचार स्वतंत्रता से पूर्व गांधी जी के ग्राम स्वाराज्य के विचार से प्रेरित रहा है। भारत सरकार ने त्वरित ग्रामीण विकास के लिए एक सुनियोजित कार्यक्रम व्यवस्था पर विचार विमर्श करने के लिए 1956 में बलवन्त राय मेहता की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया। इस समिति में 1967 में अपनी सिफारिशें सरकार को दी। जनवरी 1958 में राष्ट्रीय विकास परिषद में बलवन्त राय मेहता समिति की प्रजातांत्रिक विकेन्द्रीकरण की सिफारिशों को मान्य करते हुए, राज्यों से इसे क्रियान्वित करने का कहा।

पंचायतों की तरह नगरपालिकाओं की स्थापना की सत्ता विकेन्द्रीकरण की दिशा में उठाया गया एक महत्वपूर्ण कदम हैं उसमें केवल यह अंतर है कि जहाँ पंचायतों का गठन ग्रामीण क्षेत्रों के लिए किया जाता है, वहाँ नगरपालिकाओं की स्थापना नगरीय क्षेत्रों में की जाती है। समय के साथ जब पंचायतों की तरह नगर पालिकाओं की क्रियाशीलता में भी शिथिलिता आने लगी तो उन्हें पुनः सक्रिय बनाने के लिए संवैधानिक दर्जा दिया गया और 74वाँ संविधान संशोधित अधिनियम 1992 द्वारा इसे समाहित किया गया। इसे 20 अप्रेल 1993 से प्रवर्तित कर दिया गया। नगरपालिकाओं के लिए संविधान में एक नया अध्याय 1(क) जोड़ गया जिसमें अनुच्छेद 243(त) से 243(ह) तक समाहित किया गया साथ ही संविधान में एक दूसरी अनुसूची 12वीं अनुसूची को स्थान दिया गया। यह कार्य यह दर्शाता है कि गांधी के विचारों की 21वीं सदी में प्रांसागिकता ग्राम पंचायतों एवं नगरपालिकाओं की स्थापना एवं सत्ता विकेन्द्रीकरण में प्रभाव पड़ा है।

अस्पृश्यता निवारण में गांधी जी का योगदान :–

अस्पृश्यता की समस्या निराकरण की इच्छा गांधीजी को उद्विग्न किये थी। अस्पृश्यता को गांधी जी हिन्दू सामज पर लगा एक कलंक मानते थे। ईश्वर में आस्था रखने के कारण वह इस अन्याय

को सदन नहीं कर सकते थे, इसलिए उन्होंने नारी समाज को इस दिशा में काम करने के लिए प्रेरित किया। अगर स्त्रियों अब भी अछूतों को अपनाने में आना कानी करेगी तो हमको इनसे भी ज्यादा मुसीबते उठानी पड़ेगी। गांधी जी अछूतों के उद्धार के लिए एक हरिजन कोष की स्थापना की थी।

हरिजन 26 जनवरी 1947 :–

भारतीय समाज जाति व्यवस्था के कारण जो ऊँच नीच भेदभाव, अस्पृश्यता, अपमान अवसरों की असमानता तथा शैक्षणिक व आर्थिक पिछड़ापन जो व्याप्त है उसे कोई भी कल्याणकारी राज्य सहन नहीं कर सकता। अस्पृश्यता की समाप्ति, जाति के आधार पर भेदभाव का प्रतिषेध अनुसूचित जातियों, जनजातियों एवं पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षण व्यवस्था आदि अनेक विधियों को गांधी जी के विचारों के अनुसार अपनाया गया है जो भारतीय संविधान में उपबंधित है।

अनूसूचित जाति शब्द साइमन कमीशन द्वारा 1935 में प्रयोग में लाया गया। अम्बेडकर के अनुसार आदिकाल से भारत में इन्हें ''भग्न पुरूष'' या वाह्य–जाति माना जाता था। अंग्रेज उन्हें दलित वर्ग कहते थे। 1931 की जनगणना में उन्हें बाहरी जाति के रूप में वर्गीकृत किया गया था। महात्मा गांधी ने उन्हें हरिजन (ईश्वर के बालक) की संज्ञा से पुकारा। अस्पृश्य जाति में शिक्षित लोगों ने इसे नामकरण को स्वीकार नहीं किया, वे सोचते थे कि हरिजन कहकर असमानता को जन्म देने वाली व्यवस्था को समाप्त करने की अपेक्षा उनकी दशा में सुधार लाने के प्रयत्न किए जा रहे थे। भारतीय संविधान के निर्माताओं ने भी साइमन कमीशन द्वारा उच्चारित किये गये शब्द का प्रयोग किया।

दलिता (शूद्रों) पर ब्राम्हण काल या उत्तर वैदिक काल से ही अनेक प्रकार के प्रतिबन्ध थे। उन्हें यज्ञशाला में जाने की अनुमति नहीं थी। खाती, लोहार और धोबी के बर्तनों को साफ करके दूसरे लोग प्रयोग करते थे, लेकिन शूद्र (चांडाल) द्वारा प्रयोग किए वर्तन कोई अन्य प्रयोग नहीं कर सकता था। ब्रिटिश काल की अवधि 20वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में मंदिरों में शूद्रों का प्रवेश निषेध था। गांवों में उनके लिए पृथक कुएं थे। उनके प्रवेश के संदर्भ में महात्मा गांधी ने 1933 में लिखा था कि मन्दिर प्रवेश ही एक ऐसा आध्यात्मिक कार्य जो अस्पृश्यों की स्वतंत्रता का संदेश होगा और उन्हें आश्वस्त करेगा कि ईश्वर के सामने जाति से बाहर नहीं हैं लेकिन एक वर्ष बाद उन्होंने लिखा कि उनकी कोई इच्छा नहीं है कि शूद्रों के लिए मंदिरों को खोला जाए जब तक हिन्दू जाति का मत इसके लिए एक पक कर तैयार न हो जाए। उन्होंने कहा कि यह हरिजनों को मंदिर प्रवेश के स्वीकार करने का प्रश्न नहीं है बल्कि यह हिन्दू जाति के प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है कि वे शूद्रों के मंदिर प्रवेश को सुनिश्चित करें।

मैला सफाई व्यवसाय के कारण हरिजनों के बहिष्कार के सन्दर्भ में गांधी जी ने कहा कि पैतृक व्यवसाय स्वभाविक व्यवस्था हो सकता है। लेकिन आदर्श प्रचलन नहीं। उन्होंने कहा कि आदर्श आधुनिक समाज के प्रजातांत्रिक आदर्शों के अनुकूल भी नहीं है। उन्होंने व्यवसायिक गतिशीलता की सीमाओं का भी सन्दर्भ दिया। इस कथन की प्रतिक्रिया स्वरूप अम्बेडकर ने व्यंग्यात्मक रूप से कहा एक मेहतर को यह बताने का क्या लाभ है कि ''एक ब्राम्हण भी मेहतर का काम करने को तैयार है जबकि यह स्पष्ट है कि भले ही ब्राम्हण सफाई का काम करे, वह उन निर्योग्यताओं का शिकार कभी नहीं हो सकता जो जन्मजात मेहतर (भंगी) को भोगनी पड़ती है''। यह सत्य है कि भारत में व्यक्ति उच्च या निम्न प्रास्थिति अपने

जन्म से प्राप्त करता है, न कि कार्य से। अतः मेहतरो के झूठे अभियान के समझ निवेदन करना या उन्हें प्रेरित करना और बताना कि सफाई करने का कार्य आदर्श कार्य है और उन्हें शर्मिंदा होना चाहिए, वास्तव में इन असहायों वर्गों की ही हँसी उड़ाना है।[16]

गांधी के विचारों की 21वीं सदी में प्रासंगिता के कारण महिलाओं के उत्थान एवं सामाजिक सुरक्षा हेतु भारत में निम्न अधिनियम पारित किये गये।

1. दहेज निरोध अधिनियम 1961
2. कामकाजी महिलाओं के यौन शोषण हेतु विशाखा राजस्थान के दिशा–निर्देश
3. विशेष विवाह अधिनियम 1954
4. विदेशी विवाह अधिनियम 1989
5. विवाह विधि संशोधन 1976
6. प्रसूति प्रसुविधा अधिनियम 1961
7. महिलाओं का अशिष्ट रूपण निषेध अधिनियम 1986
8. सती निवारण अधिनियम 1987
9. घरेलू हिंसा अधिनियम 2005
10. राष्ट्रीय महिला आयोग 1990
11. बाल विवाह अवरोध 1929
12. गर्भवती पूर्व प्रसव पूर्व निदान तकनीक लिंग चयन रोकथाम अधिनियम 2002

इस प्रकार महिलाओं की स्थिति को सुधारने हेतु उपरोक्त के अलावा बहुत से अधिनियम पारित किये गये है गांधीजी के विचारों की 21वीं शब्ताब्दी में प्रासांगिकता है गांधी जी के विचार एवं सपनों को भारत सरकार कानूनी जामा पहनाकर पूर्ण करने का प्रयत्न कर रही है।

उपसंहारः–

20वीं शताब्दी का तीसरा दशक भारतीय राजनीति में महात्मा गांधी के उदय का काल था। 13 अप्रैल 1919 को जलियावाला बाग ने नृशंस हत्याकांड के बाद देश भर में अंग्रेजों के विरूद्ध आक्रोश फूट पड़ा था। इस जन आक्रोश को प्रभावी शक्ति के रूप में प्रयोग करते हुए महात्मा गांधी ने 14 सितम्बर 1920 को सविनय अवज्ञा आन्दोलन का सत्याग्रह का प्रारम्भ किया। गांधी जी ने जनता से अनुरोध किया कि वह विदेशी सरकार का कतई साथ न दे और विदेश वस्त्रों और शराब का बहिष्कार करें। गांधी जी ने अहिंसा का मार्ग पकड़ा परन्तु 04 फरवरी 1922 को उग्र आन्दोलनकारियों ने गोरखपुर के चौरा–चौरा थाने में 22 पुलिस कर्मचारियों को जीवित जलाकर मार डाला। अहिंसा का रूप हिंसा ने ले लिया फलस्वरूप गांधी जी को 06 वर्षो के कारावास की सजा सुनाई गई।

जेल से छूटने के बाद गांधी जी ने सक्रिय राजनीति से सम्पर्क तोड़कर खादी ग्रामोद्योग मिशन संचालित किया उनकी स्वदेशी वस्तुओं और स्वदेशी वस्त्रों की माँग ने चरखे, खादी और हैण्डलूम वस्त्रों को लोकप्रिय बनाया। घरों में महिलाऐं चक्की पर गेहूँ पीसते हुए घर में तैयार आटे से भोजन बनाती व घर में चरख से काते सूत से वस्त्र बनाती। गांधी जी ने 1930 में डांडी यात्रा पर नमक का कानून तोड़ा और स्वयं नमक बनाया।

अद्भुत आध्यात्मिक शक्ति के धनी गांधी जी ने, समाज में ''आबला कहे जाने वाली स्त्रियों के वर्ग को ऊपर उठाने के लिए अनेक प्रयास किये। वह स्त्रियों को पुरूषों के समान स्वतंत्रता आन्दोलन में हिस्सा लेने के लिए प्रेरित करते थे। उन्ही के प्रेरणा से सविनय अवज्ञा अन्दोलन व ''असहयोग आन्दोलन'' में स्त्रियों ने भाग लिया। गांधी जी दहेज प्रथा, बाल विवाह व छुआछूत प्रथा के घोर विरोधी थे। उन्होंने अन्तर्जातीय विवाह पर बल दिया। गांधी जी विचारों के प्रासांगिकता के कारण बाल विवाह विरोध अधिनियम 1929 अन्तर्जातीय

विवाह अधिनियम एवं संविधान के अनुच्छेद 17 में छुआछूत अस्पृश्यता उन्मूलन हेतु प्रावधान रखे गये।

महात्मा गांधी स्त्री को पूर्णतया भारतीय नारी की छवि में ढालना चाहते थे जो अबला न होकर आत्मनिर्भर व दुर्गा की तरह शक्ति और आत्मबल की प्रतिभूति हो। उन्होंने अस्पृश्यता को हिन्दू धर्म का सबसे बड़ा कलंक माना है। उन्होंने हरिजनों को मन्दिरों में प्रवेश दिलाया उनके साथ बैठकर प्रार्थना की परिपाटी आरंभ की। हरिजन सेवक संघ सर्वेन्ट्स ऑफ इन्डिया सोसयटी'' गठन किया, जो हरिजनों के उत्थान के लिए अब कार्य करती है।

उपरोक्त वर्णित तथ्यों के बाद यह कितनी दुःखद स्थिति है कि महिलाओं के संरक्षण हेतु पर्याप्त कानून होने के बावजूद भी उनका शोषण तथा उनके विरूद्ध अपराधों में निरंतर वृद्धि होती जा रही है। महिलाओं के प्रति अत्याचार निवारण हेतु प्रभावी विधि व्यवस्था को सृजन करने के समय समय पर विधान सभा या संसद में प्रश्नों के माध्यम से विधायिकी के कानों में जब महिलाओं की करूण गूँज सुनाई दी तो इस गूँज को सादर स्वरूप देने की परिस्थिति में भारत में राष्ट्रीय एवं राज्य स्तर पर विविध विधानों का सृजन किया गया।

घर में शान्ति का वातावरण हो तभी महिला का विकास सम्भव है महिला के सामाजिक आर्थिक विकास के लिए जरूरी है कि एक ऐसा वातावरण घर समाज में हो जो हिंसक न हो। महिला जब अपने नागरिक होने का अहसास करेगी तभी आगे उसके विकास के रास्ते खुलेंगे। सरकार प्रयत्नशील है सिर्फ महिलाओं को और जागृत करने की आवश्यकता है।

संदर्भ सूची :–

1. यंग इन्डिया 10 अप्रैल 1930 पेज 121।
2. यंग इन्डिया 07 मई 1930 पेज 96।
3. यंग इन्डिया 14 जनवरी 1932 पेज 19।
4. ए.आई.आर. 1952 इला. 746
5. हरिजन दिनांक 03 जनवरी 1947 पेज 478।
6. यूनियन टी. के. एम. गांधी एन्ड फ्री इन्डिया वोरा एन्ड कम्पनी बम्बई 1956 पेज 64।
7. हरिजन दिनांक 05 जून 1937 पेज 10।
8. यंग इन्डिया 08 दिसम्बर 1927 पेज 229।
9. यंग इन्डिया 27 अगस्त 1925।
10. हरिजन 05 सितम्बर 1936।
11. हिन्दी नवजीवन 06 सितम्बर 1928 पेज 24।
12. वर्मा, ताराचन्द्र गांधी जी और शिक्षा पेज 71।
13. ए.आई.आर. 1990 एस.सी. 292।
14. हिन्दी नवजीवन 12 सितम्बर 1929 पेज 28।
15. ए.आई.आर. 1979
16. हरिजन 26 जनवरी 1947।

SHODH CHETNA – YEAR-2 (JAN. TO MARCH, 2016) VOL. 1
ISSN : 2350-0441

संस्कार एवं जलोपयोग

(सन्दर्भ-पारस्कर गृह्यसूत्रम्)

❐ डॉ. द्वारिका नाथ त्रिपाठी

शोध सारांश

जल तत्व को सृष्टि का जीवन कहा गया है। यह संसार के सभी प्राणियों को अनेकों रूपों में आकर पालन तथा पोषण करता है। सृष्टि निर्माण का मौलिक तत्व जल ही है। जब कोई भी शिशु माँ के गर्भ में निवास करता है उस समय माता के गर्भ में ही माँ के शरीर के द्वारा बने हुए रस से उसका पालन-पोषण होता है उसी प्रकार सृष्टि रूपी माता के गर्भ में ही समस्त जीवों की स्थिति है। हम इस सृष्टि रूपी माता के जल रूपी मधुर रस का पान करके ही जीवित रह सकते हैं। अतः ऋग्वेद में कहा गया है—''किमावरीवः कुहकस्य शर्मन्नम्भः किसासीत् गहनं गभीरम्''[1] कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय संहिता में भी कहा गया है—''आपो वा इदमग्रे सलिलमासीत्''[2] न केवल मानव जीवन में बल्कि सम्पूर्ण जीव जगत के लिए जल अत्यन्त लाभदायक है। जल की समुचित उपयोगिता के लिए विविध उपाय बताये गये हैं।

जल का मातृत्त्व—जल में उत्कृष्ट मातृत्व गुण विद्यमान है। इसके द्वारा न केवल पर्यावरण का निर्माण होता बल्कि हमारा पालन-पोषण भी होता है। वैदिक साहित्य में जल को ''आप मातृतमम्'' कहकर जल की वन्दना की गई है। ऋग्वेद में जल को 'अम्बा' शब्द से सम्बोधित किया गया है—

''अम्बयो यन्त्यध्वमिर्जामयो अध्वरीयताम्।
पृन्वतीर्मधुना पयः।।[3]

यज्ञकर्ता यजमान शिशु के ही समान होता है तथा उसकी सहायता करने वाला माता के समान होता है। जल यजमान की सहायता करता है। जल यज्ञकर्म में यजमान की सहायता करता है। यजमान की सहायता करने के लिए विविध प्रकार के प्रवाहों के रूप में प्रवाहित होता है। ये जल प्रवाह स्वयं के मधुर रस से भरे हुए होते हैं। मानव जीवन सभी अन्य जीवनों से उत्कृष्ट है क्योंकि मानव का ही संस्कार होता है। मानव उन संस्कारों को पूर्ण कर अपने जीवन को पूर्ण बनाता है। संस्कार विहीन मानव व पशु में कोई भी अन्तर नहीं रह जाता है कहा भी गया है—आहार निद्रा भय मैथुनं च.....इत्यादि।[4]

इन सभी संस्कारों में जिन वस्तुओं का एक बार प्रयोग कर दिया जाता है, उनका दुबारा प्रयोग प्रायः नहीं होता है। किन्तु जल एक ऐसा तत्व है जो मानव के जन्म से लेकर उसके जीवन के अन्तिम समय तक के संस्कारों के मध्य आवश्यक वस्तु के रूप में प्रयुक्त होता है। आचार्य पारस्कर ने जब कहा—''अथातो गृह्यास्थाली पाकानां कर्म''[5] अर्थात् कर्मों का प्रारम्भ पाककर्म से प्रारम्भ होता है। 'पाक' का अर्थ है 'पकाना'। यज्ञ की हवनीय सामग्री को पकाने के पूर्व जल का ही प्रयोग किया जाता है। अथर्ववेद का ऋषि अर्थात् यज्ञ का ब्रह्मा अध्वर्यु से कहता है पंचभू संस्कार की विधि को पूर्ण

* एसोसिएट प्रोफेसर (संस्कृत) धर्म समाज स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अलीगढ़ (उ.प्र.)

करो। अध्वर्यु पंचभू संस्कार करता है जिसमें धरती को बटोरना, जल से लीपना, जल में गोबर मिलाकर अभ्युक्षण करना आदि जल के ही कर्म बताये गये हैं।[6]

यज्ञ की सम्पूर्ण तैयारी हो चुकने के बाद यज्ञ कर्म के प्रारम्भ में ही तपाये हुए स्रुव को जल से ही संमार्जन करने का विधान किया गया है। ''स्रुवं प्रतप्य सम्मृज्याभुक्ष्य पुनः प्रतप्य निदध्यात्''[7] यज्ञ क्रिया के सम्पादनार्थ अर्घ्य प्रदान करने का विधान किया गया है, वह अर्घ्य भी जल के द्वारा ही निर्मित किया जाता है— ''षडर्घा भवन्ति-आचार्य ऋत्विग्वैवाह्यो राजा प्रियः स्नातकः इति''[8] आचार्य अथवा विवाह के अवसर में वर के पाद प्रक्षालन का विधान किया गया है— ''सव्यं पादं प्रक्षाल्य दक्षिणं प्रक्षालयति''[9] अर्थात् बायें पैर को धोकर दाहिने पैर को धोते हैं। यहाँ भी जल के प्रयोग की विधि का वर्णन किया गया है।

यज्ञ की समाप्ति के अवसर पर अभिषेक किया जाता है वह अभिषेक की क्रिया भी जल के द्वारा ही सम्पन्न होती है।[10] आचार्य पारस्कर ने कहा है कि, विवाह के अवसर पर कन्यादान से लेकर जब वर वधू को लेकर मण्डप से बाहर निकलता है उस समय कोई व्यक्ति जल से भरे घड़े को कन्धे पर रखकर, वेदी की दाहिनी ओर चुपचाप खड़ा हो जाये। यहाँ पर भी जल की महत्ता को प्रकट किया गया है। उसी जल से पहले वर एवं वधू का मूर्धाभिषेक किया जाता है। अनन्तर अथर्ववेद के ''आपोहिष्ठामयोभुवः'' आदि तीन मन्त्रों से अभिषेक किया जाता है।[11] आचार्य पारस्कर ने चतुर्थी कर्म में भी जल की उपयोगिता को बताते हुए कहा है—

''चतुर्थ्यामपररात्रेभ्यन्तरताग्निमुपसमाधाय
दक्षिणतो ब्रह्मामुपवेश्योत्तरत
उदपात्रंप्रतिष्ठायप्यस्थालीपाकंश्रपयित्वा-
ज्यभागाविष्ट्वाज्याहुतीर्जुहोति''[12]

विवाह के चौथे दिन रात के पिछले पहर घर के भीतर वैवाहिक अग्नि की स्थापना करें। आग की दाहिनी ओर ब्रह्मा को बैठायें तथा आग की उत्तर की ओर जलपूर्ण कलश को रखें फिर चरू पकाकर अग्नि और सोम की दो आहुतियाँ डालें। पुनः अग्ने प्रायश्चित्ते इत्यादि पाँच मंत्र पढ़कर घी की पांच आहुतियाँ दें। उस मन्त्र में अग्नि के उत्तर भाग में जल से पूर्ण कलश की स्थापना का विधान किया गया है जो जल की महत्ता को प्रदर्शित करने के लिए पर्याप्त है। केशान्त संस्कार के अवसर पर आचार्य कहते हैं—

''तत आदाय दक्षिणं गोदानमनुदिशति—सविता प्रसूता दैव्या आप उन्दन्तु ते तनू दीर्घायुत्वाय वर्चस इति''[13]

हे कुमार! सूर्य के द्वारा उत्पन्न यह दिव्य जल दीर्घायु और तेजस्विता के लिए तुम्हारे चूड़ा को अर्थात् केशों को गीला करे।[14] आचार्य पारस्कर ने कहा कि, जब बालक का यज्ञोपवीत संस्कार किया जाता है उस समय बालक से यह प्रश्न किया जाता है कि तुम किसके ब्रह्मचारी हो? बालक उत्तर देता है कि माँ आपका ब्रह्मचारी हूँ। इसके बाद यह आचार्य बालक के सिर पर जल छोड़ता है और यह कहता है कि मैंने तुम्हें स्वीकार कर लिया है तथा मैं अब तुम्हें तुम्हारी रक्षा के लिए प्रजापति, सूर्य, जल[15], औषधि, द्यावापृथिवी तथा अन्य सभी देवताओं पर सौंपता हूँ। जल के महत्व को आगे बताते हुए कहा गया है, वेदों का सांगोपांग अध्ययन करने के पश्चात् स्नान करना चाहिए—''वेदं समाप्य स्नायात्''[16] वेदों की शिक्षा पूर्व करने के बाद स्नान करें। पुनः आचार्य ने कहा कि 48 वर्षों तक ब्रह्मचर्य का पालन करें। उसके बाद स्नान करें—''ब्रह्माचर्य वाष्टाचत्वारि ग्वं शकम्''[17] एक अन्य सूत्र में कहा गया है कि, कुछ आचार्यों का मत है कि, छः अंगों सहित वेदों का अध्ययन कर लेने के उपरान्त ही स्नान करना चाहिए—''षडंगमेके''[18] इसी बात को और भी अधिक सरल करते हुए आचार्य कहते हैं—''कामं तु याज्ञिकस्य''[19] प्रस्तुत सूत्रस में उपदेश किया कि, केवल यज्ञविद्या का अध्ययन कर लेने के बाद अपनी इच्छा से स्नान किया जा सकता है। इसके आगे वाले सूत्र में कहा गया है कि—''उपसंगृह्य गुरूं समिधोभ्याधाय परिश्रितस्योत्तरतः कुशेषु प्रागग्रेषु पुरस्तात् स्थित्वाष्टानामुदकुम्भानाम''[20]

गुरू के चरणों का उपसंग्रहण कर अर्थात् उन्हें प्रमाण कर यज्ञाग्नि में समिधा डालकर चारों ओर घिरी अग्नि के उत्तर में रखें। जल से भरे आठ कलशों के पूरब में बिछे कुशों पर खड़े होकर ब्रह्मचारी से ''अप्स्वन्तरमग्नय .....इत्यादि'' मन्त्र पढ़ते हुए पहले कलश से जल लेकर, ''तेन मामभिषिंचामिः.....।'' इत्यादि मन्त्र को पढ़ते हुए अपने आपको अभिषिक्त करे।

मन्त्रार्थ—इस कलश जल में छिपी रहने वाली गोह्य, अंग-प्रत्यंगों को नष्ट करने वाली उपगोह्य तथा जन्तु हिंसक मयूख प्रभृति मानसिक उत्साह भंग करने वाली, जिसका प्रतिकार न किया जाय तथा बहुविध रोगों से सताने वाली, इन्द्रियों की शक्ति को विनष्ट करने वाली, आठ प्रकार की अग्नि को दूर हटाकर मैं मेध्य, मंगलमयी, प्रीतिकारिणी रोचनशील अग्नि को ग्रहण करता हूँ।

उक्त मन्त्र में ध्यातव्य विषय यह है कि इस मन्त्र का ऋषि प्रजापति, छन्द अग्निगायत्री तथा देवता जल है। मन्त्र का विषय ही जल देवता है। अतः निष्कर्ष रूप से हम यह कह सकते हैं कि उक्त मन्त्र में जल को ही अग्नि कहा गया है। यहाँ पर आचार्य ने अनेकों प्रकार के नियमों के पालन में सरलता प्रदर्शित की है कि किसी प्रकार से भी नियम का पालन किया जा सके। किन्तु उन्होंने यह कहीं भी उल्लेख नहीं किया कि नियमों का पालन किया जाय।

अतः उक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि मानव के जीवन में जल की उपयोगिता किस प्रकार की है। किसी भी प्राणी के जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त जल ही उसके जीवन के रूप में परिलक्षित होता है। मानव जीवन संस्कारमय है। अतः वेदों के अध्ययन से यह स्पष्ट हुआ कि मानव का प्रत्येक संस्कार जल के बिना अधूरा ही नहीं असम्भव भी है। जल ही मानव को पूर्णता प्रदान करता है। जल मानव के लिए आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक रूप से कल्याण करता है। अतः मानव का परम कर्त्तव्य है कि वह प्रत्यक्ष रूप से हमारे सम्मुख उपस्थित जीवनदाता जल की आराधना करे। श्रद्धा और भक्ति से तथा विश्व कल्याण की भावना से ओतप्रोत होकर उसकी पूजा करे। उसे किसी प्रकार से असंतुष्ट न करे क्योंकि यथार्थ में जल ही तो जीवन है।

सन्दर्भ—

1. ऋग्वेद संहिता
2. कृष्ण यजु.तै.संहिता
3. ऋग्वेद संहिता
4. नीति श्लोक
5. पारस्कर गृह्यसूत्रम् (1.1.1)
6. परिसमुह्योपलिप्यप्योलिख्य.....(पा.गृ.सू.. 1.1.2)
7. पारस्कर गृह्यसूत्रम् (1.1.3)
8. पारस्कर गृह्यसूत्रम् (1.3.1)
9. पारस्कर गृह्यसूत्रम् (1.3.10)
10. पारस्कर गृह्यसूत्रम् (1.8.3)
11. पारस्कर गृह्यसूत्रम् (1.8.6)
12. पारस्कर गृह्यसूत्रम् (1.11.1)
13. पारस्कर गृह्यसूत्रम् (2.1.8)
14. पारस्कर गृह्यसूत्रम् (20.43.3)
15. पारस्कर गृह्यसूत्रम् (पृ.254)
16. पारस्कर गृह्यसूत्रम् (पृ.285)
17. पारस्कर गृह्यसूत्रम् (2.6.2)
18. पारस्कर गृह्यसूत्रम् (2.6.6)
19. पारस्कर गृह्यसूत्रम् (2.6.8)
20. पारस्कर गृह्यसूत्रम् (2.6.9)

SHODH CHETNA – YEAR-2 (JAN. TO MARCH, 2016) VOL. 1
ISSN : 2350-0441

संस्कृत क्रियावाची शब्दों के मौलिक अर्थ एवं प्रयोग

(रामचरितमानस के विशेष सन्दर्भ में)

❐ डा. सूर्य नारायण गौतम

शोध सारांश

रामचरितमानस खड़ी बोली का उद्भावक ग्रन्थ है। यह अवधी, बघेली, बुंदेली, भोजपुरी तथा ब्रजभाषा का समन्वित रूप है। इस ग्रन्थ में संस्कृतनिष्ठ क्रियावाची शब्दों का प्रयोग किया गया है। प्रस्तुत लेख में उन्हीं शब्दों के मौलिक अर्थ तथा भाषा एवं व्यवहार को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है।

किसी भी क्रियावाची शब्द के मूल स्वरूप को धातु कहा जाता है। जैसे – संस्कृत में भवति शब्द का मूल रूप भू है। अतः भू धातु से तिप् प्रत्यय आदि के संयोग से तीनों कालों मे उस शब्द के प्रत्ययों को संयोजित कर शब्द निर्मिति की जाती हैं। धातु का सीधा अर्थ है जिससे किसी को स्वरूप दिया जा सके। जैसे– सुवर्ण धातु है, उससे अलंकरण बनाये जाते हैं। मूल में तो वह सुवर्ण धातु है तथा उससे बने हुए अलंकरण का स्वरूप चाहे जो भी बदलता रहे तथा वह उन स्वरूपों को धारण कर लेने पर विभिन्न नामों से जाना जाता रहे।

संस्कृत में धातुओं को भ्वादि, जुहोत्यादि दस वर्गों मे विभक्त किया गया है। जो धातु जिस विशिष्ट अर्थ प्रतीति के लिए निर्मित की गई है वह प्रत्येक अवस्था मे उसी अर्थ को प्रतिपादित करती हुई दसों लकारों मे भ्रमण करती है।

संस्कृत आर्यावर्त की ही नहीं विश्व की प्राचीनतम भाषा होने के कारण अन्य भाषाओं पर प्रतिविम्बित होना उसका मौलिक धर्म है। कालप्रवाह से समय–समय पर तकनीक में परिवर्तन होना स्वाभाविक होता है। उन्हीं तकनीकी ज्ञान के कारण नये शब्दों का आविर्भाव और उसका समाज मे चलन स्वाभाविक होता है तथा उसी के आधार पर क्षेत्रीय भाषाओं/बोलियों का अभ्युदय होता है। कालान्तर मे वह भाषा अपनी किसी–न–किसी विशिष्टता के कारण विस्तारित स्वरूप को प्राप्त करती है। वह तात्त्कलिक रचित साहित्य मे भी अपना प्रभाव दिखाती है। किन्तु कोई भी भाषा या बोली जिस भाषा के निकटस्थ होती है उस भाषा तथा बोली में स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ती है।

यहाँ पर हम रामचरितमानस मे होनेवाले संस्कृत के क्रियावाची अर्थात् धातुज् शब्दों के मौलिक एवं लाक्षणिक अर्थ की प्रतीति के साथ उनके प्रयोग को प्रस्तुत करेंगे। जैसे–

पंडित[1]– पडि दाने अस्तुतौ च, सूत्र से पण्डित शब्द सिद्ध होता है। विद्वानों ने सदासद् विवेकिनी बुद्धिः यस्य स पण्डितः ऐसा माना है। यहाँ पर

* वेदाचार्य, शासकीय वेंकट संस्कृत महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

सन्त तुलसी ने राम के अद्भुत चरित्र का बखान करने वाले के लिए पण्डित शब्द का प्रयोग किया है। जिसका विशेष भाव यह है कि, वही व्यक्ति श्रीराम के गुणों का बखान कर सकता है जिसमे सत्य और असत्य को भलीभाँति जान लिया हो–

"उमा राम गुन गूढ़, **पंडित** मुनि **पावहिं** बिरति।

पावहिं, पावा[2] – प्रा प्रापणे धातु से प्राप्नोति शब्द की सिद्धि होती है। जो अदादिगण मे पठित है। प्रा धातु से ही अवधी मे उससे सम्पृक्त भाषा मे प्राप्त करना ही उसका मुख्य अभिप्रेत अर्थ है।

चुनि[3] – चिञ् चयने धातु से चिनोति शब्द की निष्पत्ति होती है। रामचरितमानस मे चिञ् चयने धातु से चुनि शब्द का प्रयोग किया गया है। जिसका शाब्दिक अर्थ है चुनना। जैसे –

एक बार चुनि कुसुम सुहाए।

गाई[4] – गय् गाने धातु से गायति शब्द सिद्ध होता है जिसका अर्थ है गाना। गाई शब्द भी गाने के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है। जैसे–

पुर नर भरत प्रीति मैं गाई।

धरि[5] – धृ धारणे धातु से वर्तमान कालिक क्रिया को द्योतित करने वाले धारयति शब्द की निष्पत्ति होती है। प्रस्तुत चौपाई मे इन्द्रपुत्र जयन्त द्वारा काकरूप को धारण करने की बात कहते हुए हिन्दी मे धरि शब्द का प्रयोग किया गया है। जैसे–

सुरपति सुत धरि बायस वेषा।

हति[6]– हन् हनने धातु से हनति शब्द की निष्पत्ति होती है। जिसका शाब्दिक अर्थ है मारना। जयन्त ने सीता के चरणों मे अपने चोंच का प्रहार कर चोट पहुँचाई। उसी अर्थ प्रतीति के लिए तुलसीदास जी ने भी हिन्दी या खड़ी बोली मे हति शब्द का प्रयोग किया है।

सीता चारन चोंच हति भागा।

धावा[7]– धाव् धावने धातु से धावति रूप की निष्पत्ति होती है। जिसका अर्थ है दौड़ना। तुलसीदास जी ने मन्त्र से प्रेरित होकर बाण के दौड़ने की बात कही है।

प्रेरित मन्त्र ब्रह्मसर धावा।

गयउ[8]– गम् लृ गतौ धातु से गच्छति गच्छतः आदि रूपों का निर्माण होता है। जिसका अर्थ है जाना। प्रस्तुत चौपाई मे जाने के अर्थ मे तुलसी ने गयउ शब्द का प्रयोग किया है।

धरि निज रूप गयउ पितुपाहीं।

बैठन[9]– विष् उपवेशने धातु स्थापित या स्थित होने के अर्थ मे प्रयुक्त होती है। जिसका अर्थ होता है अवस्थित होना या बैठना।

काहू बैठन कहा न ओही।

मृत्यु[10]– मृ मरणे धातु से मृत्यु शब्द की निष्पत्ति होती है। रामचरित मानस में भी इसी अर्थ की प्रतीति में मृत्यु शब्द का प्रयोग किया गया है।

मातु मृत्यु पितुसमन समाना।

गहेसि[11]– गृहू ग्रहणे धातु से वर्तमान कालिक क्रिया गृह्णाति रूप बनता है। जिसका अर्थ है ग्रहण करता है। रामचरित मानस पर प्रयुक्त गहेसि पद गृहू धातु से निर्मित है। यथा–

आतुर सभय गहेसि पद जाई।

पायउँ[12]– प्रा प्रापणे धातु से प्राप्नोति शब्द ही पायउँ रूप मे हिन्दी मे प्रयुक्त हुआ है। जिसका अर्थ प्राप्त करना ही है।

निज कृत कर्म जनित फल पायउँ।

तजा[13] **तजै**[14]–त्यज् त्यागे धातु से हिन्दी मे तजा शब्द निर्मित हुआ। राम ने सीता के अपराधी जयन्त को सीता के लिए सौंप दिया।

एकनयन कर तजा भवानी।

आयउँ[15]–

अब प्रभु पाहि सरन तकि आयहुँ।।

कीन्ह, करि[16] करत[17] कराई करहि– डु कृञ् करणे धातु से करोति शब्द सिद्ध होता है। जिसका अर्थ है करना। इसी अर्थ की प्रतीति में कीन्ह, करि, करत आदि शब्द हिन्दी में प्रयुक्त होते हैं। यथा–

कीन्ह मोहबस द्रोह जद्यपि तेहिंकर बध उचित।
प्रभु छाड़ेउ करि छोह को कृपालु रघुवीर सम।।

अन्य–

सकल मुनिन्ह सन बिदा कराई।

बसि[18]– बस् निवासे धातु से बसना अर्थात् निवास करना शब्द सिद्ध होता है। संस्कृत में इसके रूप वसति वसतः इस प्रकार चलते हैं। हिन्दी में वस् से बसना आदि शब्द बनते हैं। जिसका प्रयोग सन्त तुलसी ने इस प्रकार किया है।

रघुपति चित्रकूट बसि नाना।

अनुमाना[19]– माङ्ग माने धातु से अनुमान शब्द की सिद्धि होती है। अनुमीयते इति अनुमानम्

बहुरि राम अस मन अनुमाना।

चले, चलि[20]– चल् संचलने धातु से चलति आदि संस्कृत के धातु रूप चलते हैं। वही शब्द हिन्दी मे उन्हीं धातुओं से उत्पन्न होकर उसी अर्थ की प्रतीति में प्रयुक्त होते हुए किंञ्चित परिवर्तन के साथ हिन्दी में भी प्रयुक्त होते हैं।

सीता सहित चले द्वौ भाई।।

गयऊ[21] भयऊ – गम् धातु से गच्छति तथा भू धातु से भवति का हिन्दी में गयऊ तथा भयऊ शब्द की निष्पत्ति होती है। जियका अर्थ है जाना और होना।

अत्रि के आश्रम जब प्रभु गयऊ।
सुनत महामुनि हरषित भयऊ।।

देखि[22]– दृश् विलोकने धातु वा दृशिर् प्रेक्षणे धातु से देखि शब्द बना। जिसका अर्थ है देखना।

देखि राम छवि नयन जुडाने।

आने[23]– नय् प्रापणे अतिशयेन आनयनम् से आने शब्द बना। जिसका प्रयोग रामचरितमानस मे निम्न प्रकार से किया गया है–

सादर निज आश्रम तब आने।

आसीन[24]– आसने उपविशनं इति आसीनम्। आसन पर विराजमाम होने को आसीन कहा जाता है। रामचरितमानस में भी इसी प्रकार उच्चासन पर बैठने के अर्थ मे इस शब्द का प्रयोग किया गया है। इसी प्रकार प्रस्तुत सोरठे में निरखि शब्द का भी प्रयोग किया गया है–

निरखि[25]– निरीक्ष् निरीक्षणे धातु से निरीक्षण शब्द सिद्ध होता है। जिसका अर्थ है निरखना या देखना।

प्रभु आसन आसीन भरि लोचन सोभा निरखि।
मुनिवर परम प्रवीन जोरि पानि अस्तुति करत।।

जोरि[26]– युज् धातु का प्रयोग जोड़ने मिलाने के अर्थ मे किया जाता है। जिससे योजयति आदि पदों की निष्पत्ति होती है।

मुदा[27]– मुद् हर्षे धातु से मुदा शब्द की निष्पत्ति होती है। तुलसीदास जी ने रामचरित मानस में कुछ स्थलों पर पूरे संस्कृत के रूपों को रख दिया। अरण्यकाण्ड में इसकी छटा विशेष रूप से दृष्टव्य है। किन्तु वे संस्कृत के शब्द रामचरित मानस में हिन्दी की भाँति प्रयुक्त हुए हैं तथा अर्थप्रतीति मे कठिनाई से बाहर भी है। उन्हें हिन्दी भाषा के पाठक सरलता से पाठ करते हैं तथा अर्थ भी समझते हैं।

भजन्ति मुक्तये मुदा।

नाइ[28]– नम् धातु से नाइ शब्द बना। जिसका अर्थ है नमन करना अर्थात् झुकना। जो हिन्दी में इस प्रकार प्रयुक्त है–विनती करि मुनि नाइ सिरु कह कर जोरि बहोरि।

चरन सरोरुह नाथ जनि कबहुँ तजै मति मोरि।।

गहि[29]– गृहू ग्रहणे धातु से ग्रहण करना या किसी वस्तु को पकड़ने के अर्थ में गहि क्रियावाचक शब्द का प्रयोग किया जाता है। जैसा कि रामचरितमानस मे प्रयुक्त है–

अनुसुइया के पद गहि सीता।

देइ[30]**–** दा दाने धातु से ददाति अर्थवाची देइ शब्द है।

आसिष देइ निकट बैठाई।

सुहाए[31]– सुष्ठु शोभने धातु से सुष्ठु शब्द बनाता है।

जे नित नूतन अमल सुहाए।

बखानी[32]– बस् परिभाषणे धातु से वक्ष्यति रूप बनता है। जिसका अर्थ है किसी रहस्य की व्याख्या करना–

नारि धर्म कछु ब्याज बखानी।

पाव्[33]– प्रा प्रापणे धातु से पाव शब्द की निष्पत्ति हुई। जिसका अर्थ संस्कृत एवं हिन्दी दोनों मे ही समान रूप से किया जाता है–

नारि पाव जमपुी दुख नाना।

कहेसि[34] **कहहीं**[35] – कथ् प्रकथने प्राख्याने धातु से कथयति रूप बनता है। जिसका अर्थ है कहना या व्याख्यान करना।

(क) कहेसि पुकारि प्रनत हितपाही।

(ख) वेद पुरान सन्त सब कहहीं।

जानेहु[36]– ज्ञ अववोधने धातु से जानना शब्द सिद्ध होता है। यहाँ जानेहुँ शब्द के द्वारा बोध कराया जा रहा है कि, ऐसी नारि को जानिए जो उपरोक्त अबगुणों से युक्त है।

जानेहु अधम नारि जग सोई।

लहई[37]**–लहइ**[38]–लभ् प्रापणे धातु से लभते लभेते आदि रूप सिद्ध होते हैं। जिनका अर्थ प्राप्त करने के अर्थ में प्रयुक्त होता है। प्रस्तुत लहई शब्द लभ् धातु से बना है। जिसका अर्थ है प्राप्त करना।

बिनु श्रम नारि परम गति लहई।

और भी–

सहज अपावनि नारि,पतिसेवत सुभगति लहइ।

रहिउँ[39]–(स्त्री) रहने के अर्थ में अवस्थावाची शब्द है–

ताते अब लगि रहिउँ कुमारी।

दीन्ह– दा दाने धातु से ददाति के अर्थ मे दीन्ह शब्द का प्रयोग किया जाता है–

ताके कर रावन कहँ मनौ चुनौती दीन्ह।।

चलि[40]– चल् संचलने धातु से चलति ऐसा रूप सिद्ध होता है। जिसका प्रयोग हिन्दी मे इस प्रकार किया जाता है–

देखि राम रिपु दल चलि आबा।

क्रुद्ध[41]–क्रुध् कोपे धातु से क्रुद्ध शब्द जो मूलरूप से संस्कृत का शब्द है किन्तु वह हिन्दी मे भी ज्यों का त्यों ही प्रयुक्त होते हुए उसी अर्थ की प्रतीति कराता है जिस अर्थ में वह संस्कृत में प्रयुक्त है–

भए क्रुद्ध तीनिउ भाइ।

कहिउ, कहौं– कृ धातु से **नावा–** नम् धातु से **बोले–** बच् प्रकथने वद् परिभाषणे धातु से **उचार–** उच्चर धातु से, **भजी–** भज् सेवायां धातु से, **बिलोकि–** लो कृञ् अवलोकने, **बह–** वह प्रापणे से प्रवहति, **पूछी–** पृच्छ धातु से, **जयति–** जय्, दा दाने धातु से, **सुनेहु–** श्रणु धातु से, **जारा–** ज्वल् धातु से, **सिधारा**– धृ धारणे

धातु से स्थापित होने के अर्थ में प्रयुक्त होता है। **खाए**– खाद् लृ भक्षणे धातु से, **छाए**– छाद् लृ आच्छादने **नौमि–** नम् धातु से नमन के अर्थ में प्रयुक्त है। **त्रातु–** त्रातु रक्षणे धातु से, गुंजत– कुञज् कूजने धातु से कुंजन शब्द की निष्पत्ति होती है। **जाई–लागी– द्रवहुँ– गावत–निरखत– रचा** आदि शब्दों की निष्पत्ति हुई है।

यह संजोग विधि रचा विचारी। इसी तरह, **चिक्करत**– शब्दकरणे। चिञ् पूर्वक कृञ् धातु से चिक्करत शब्द बना जिसका प्रयोग हाथी के चिघ्घाड़ने के लिए किया जाता है। कटत– कृति कर्तने धातु से कटत शब्द हिन्दी में प्रयुक्त होता है।

निष्कर्ष– इस प्रकार हम निष्कर्ष रूप से यह अवश्य कह सकते हैं कि, संस्कृत सर्वव्यापक भाषा है तथा उसके विना किसी भी भारतीय अथवा अभारतीय भाषाओं का स्वतन्त्र अस्तित्व स्थापित नहीं हो सकता। जिन भाषाओं मे खासकर हिन्दी तथा बोलियों मे भी जब संस्कृत के शब्द समाहित होते हैं तब उनका जो स्वरूप उभरकर आता है वह वक्ता एवं श्रोता दोनों वर्ग के लिए आह्लादक होता है। आवश्यकता केवल इस बात की है कि, उसके प्रयोग के लिए संस्कृतनिष्ठ हिन्दी बोलने और लिखने में संलग्न हुआ जाय। जिससे हम अपनी अमूल्य धरोहर रूप संस्कृत ग्रन्थों का अध्ययन करने तथा उसे समझने में दक्ष हो सकेंगे। जिनमें अनुपम ज्ञान के अनन्त मोती भरे पड़े हैं।

सन्दर्भः–

1. (सोरठा– रामचरितमानस अरण्यकाण्ड पृ0 269)
2. वही
3. (अ0 का0 चौपाई संख्या 3)
4. चौपाई संख्या 1
5. वही
6. (अ0 का0 चौपाई 7)
7. (दोहा 1 के आगे चौपाई 1)
8. (दोहा 1 के आगे चौपाई 2)
9. (दोहा 1 के आगे चौपाई 5)
10. (दोहा 1 के आगे चौपाई 6)
11. (दोहा 1 के आगे चौपाई 11)
12. (दोहा 1 के आगे चौपाई 13)
13. (दोहा 1 के आगे चौपाई 13)
14. वही
15. (दोहा 1 के आगे चौपाई 14)
16. (अ0 कर0 सोरठा 2)
17. वही
18. (सोरठा 2 के आगे चौपाई 1)
19. (सोरठा 2 के आगे चौपाई 2)
20. (सोरठा 2 के आगे चौपाई 3)
21. (सोरठा 2 के आगे चौपाई 4)
22. (सोरठा 2 के आगे चौपाई 7)
23. वही
24. (अ0 का0 सोरठा 3)
25. वही
26. वही (अ0 का0, सोरठा 3 के आगे का छन्द पंक्ति 15)
27. (अ0 का0 दोहा 4)
28. (अ0 कर0 दोहा 4 चौपाई 1)
29. (अ0 कर0 दोहा 4 चौपाई 2)
30. (अ0 कर0 दोहा 4 चौपाई 3)
31. (अ0 कर0 दोहा 4 चौपाई 4)
32. (अ0 कर0 दोहा 4 चौपाई 9)
33. (अ0 का0 दोहा 1 के आगे चौपाई 10)
34. (अ0 कर0 दोहा 4 चौपाई 11)
35. (अ0 कर0 दोहा 4 चौपाई 15)
36. (अ0 कर0 दोहा 4 चौपाई 18)
37. (अ0 का0 सोरठा 5 (क)
38. (अ0 का0 दोहा 16 चौपाई 10)
39. (अ0 का0 दोहा 17 चौपाई 13)
40. (अ0 का0 सोरठा 18 छन्द 2 पंक्ति 4)

SHODH CHETNA – YEAR-2 (JAN. TO MARCH, 2016) VOL. 1
ISSN : 2350-0441

बघेलखण्ड की धार्मिक स्थिति एवं समाज

(शैव एवं वैष्णव धर्म के विशेष संदर्भ में)

❒ डा. प्रो. विभा श्रीवास्तव

शोध सारांश

धर्म और समाज एक दूसरे के आधार हैं, यह निश्चित है कि धार्मिक स्वरूप का समाज पर पूर्णतया प्रभाव होगा, एवं समाज के नियम धर्म को प्रभावित करते हैं। विवेच्य युग में भी समाज एवं धर्म ने एक दूसरे को प्रभावित किया है। यह युग अनेक परिवर्तनों का युग रहा है, बौद्ध धर्म का पतन एवं ब्राह्मण धर्म का पुनरुत्थान इसकी विशेषता रही। वैदिक एवं पौराणिक धर्म का सामंजस्य फलस्वरूप अनेक देवी-देवताओं का मूर्तस्वरूप एवं ब्रह्मा, विष्णु, शिव की उपासना तथा मदिरों, मठों की स्थापना एवं सहजता, सुन्दरता को स्थान, प्रत्येक धार्मिक मतों को मान्यता, समन्वय एवं तात्रिक जादुई प्रभाव का चमत्कार, स्वर्ग नर्क की कल्पना एवं तीर्थ यात्राओं का महत्त्व, वर्णाश्रम धर्म का महत्त्व तथा जातिवाद की जटिलता, धार्मिक स्वतंन्त्रता एवं संकीर्ण भावना का जन्म इत्यादि देखने को मिलता है।

धर्म का स्वरूप–धर्म, समाज का एक हिस्सा है, जिसमें मनुष्य प्रमुख आधार स्रोत है। सपरिवार समाज में रहने के लिए कुछ नैतिक एवं लाभप्रद नियमों का पालन आवश्यक होता है, प्राकृतिक प्रकोप के डर ने भी धर्म के निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान दिया। अतः इन नियमों के बिना शायद मनुष्य एक सामाजिक प्राणी न माना जाये, धर्म और समाज एक दूसरे के आधार हैं। यह निश्चित है कि धार्मिक स्वरूप का समाज पर पूर्णतया प्रभाव होगा एवं समाज के नियम धर्म को प्रभावित करेंगे।

विवेच्य युग में भी समाज एवं धर्म ने एक दूसरे को प्रभावित किया। यह युग अनेक परिवर्तनों का युग रहा, बौद्ध धर्म का पतन एवं ब्राह्मण धर्म का पुनरुत्थान इसकी विशेषता रही। वैदिक एवं पौराणिक धर्म का सामंजस्य फलस्वरूप अनेक देवी–देवताओं का मूर्त स्वरूप एवं ब्रह्मा, विष्णु, शिव की उपासना1 तथा मंदिरों, मठों की स्थापना एवं सहजता, सुंदरता को स्थान, प्रत्येक धार्मिक मतों को मान्यता, समंवय एवं तांत्रिक–जादुई प्रभाव का चमत्कार, स्वर्ग नर्क की कल्पना एवं तीर्थ यात्राओं का महत्व, वर्णाश्रम धर्म को महत्व तथा जातिवाद की जटिलता, धार्मिक स्वतंत्रता एवं संकीर्ण भावना का जन्म, इन सभी जटिल समन्वय का युग विवेच्य युग है। अतः धार्मिक स्वरूप एवं स्थिति का वर्णन करते हुये उसकी मान्यताओं द्वारा समाज में क्या परिवर्तन हुये दोनों का वर्णन करने से ही समाज में धार्मिक मान्यताओं के प्रभाव का महत्व पता चलेगा।

(क) शैव सम्प्रदाय– यहाँ के हिंदुओं का सनातन धर्म बहुत समय से शैव रहा है। प्राचीन

* प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष (इतिहास), शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

शासकों, नागों, भारशिवों और वाकाटकों एवं गुप्तों के सामंत उच्चकल्प, परिव्राजक, पांडु के आराध्य देवता शंकर रहे हैं। मौखरी भी शैवमतावलंबी[2] हर्षवर्धन संभवतः प्रारंभिक दिनों में शिव का पुजारी था।[3] बाण कहता है कि पुष्यभूति परमशैव भक्त थे। घर–घर भगवान शंकर की पूजा होती थी, राजा और प्रजा दोनों ही शिव के पूजक थे।[4] बाण ने अपने हर्षचरित को उमा शंभू का स्मरण करते हुये प्रारंभ किया।[5] युवान च्यांग ने भी कई जगह शिव पूजा का वर्णन किया है।[6] बाँस खेड़ा एवं मधुवन ताम्रपत्र में हर्ष को परम माहेश्वर या शिव की पूजा करने वाला कहा है।[7] कलचुरि काल में भी शैव मत की प्रधानता थी, कलचुरि शैव थे, वामराज जो कलचुरिवंश का जनक था शैव था क्योंकि उसके बाद के अभिलेखों में उसे परम महेश्वर की उपाधि दी गई है।[8] आठवीं से बारहवीं सदी तक शैव मत चेदि देश के अधिकतर भागों में माना जाता था। पूर्व मध्ययुगीन समाज में साधारणतया शैव धर्म के चार संप्रदाय थे। शैव, कालानन, पाशुपत और कापालिक।[9] कलचुरि काल में शैव एवं पाशुपत संप्रदाय को मानने वाले अधिक थे। बिलहरी अभिलेख में कहा गया है कि 'त्रिपुरी विजयी' का तांडव नृत्य रक्षा करे।[10] गुर्गी लेख में शिव का निवास स्थान कैलाश पर्वत बताया गया है, शिव ने कई दिशाओं वाले विश्व की रचना की।[11] बिलहरी लेख में शिव के शंभू चंद्रचूड़, सर्वकुरमिद, त्रिपुर विजयी, स्मरारि, वैद्यनाथ, ईशान आदि नाम आये हैं।[12] शिव की अनिर्वचनीयता का उल्लेख कर्ण के रीवा लेख में मिलता है।[13] कलचुरि शिव भक्त होने के कारण अनेक शिव मंदिर का निर्माण करते रहे। चेदि राजा गांगेयदेव के प्रयाग तीर्थ पर गंगा लाभ का उल्लेख मिलता है। प्रबोध शिव के चंद्रेह अभिलेख में चंडीपति के तांडव नृत्य का वर्णन एवं नटराज शिव का वर्णन है।[14] कलचुरि राजा शैव मत के प्रवर्तक थे, युवराज प्रथम ने शैव मत को बढ़ावा दिया, अपनी रानी नोहला के प्रभाव में मतमयूर मत के कई आचार्यों को बुलाया। मतमयूर आचार्य शैव के मतावलंबी थे।[15] कलचुरि लेख इस बात के प्रमाण हैं कि राजा पाशुपत उप शाखा के मानने वाले थे।[16] साम्राज्य में पाशुपत आचार्य भी रहते थे इनमें से एक रूद्र राशि जो लाट से आया था बैजनाथ के शिव मंदिर और मठ का प्रभारी था, जिसका वर्णन अल्हणदेवी के भेड़ाघाट प्रशस्ति में मिलता है।[17]

कलचुरि राजा शिव के अनन्य भक्त थे, कुछ राजा तीर्थयात्रा पर भी जाया करते थे, बिलहरी अभिलेख से पता चलता है, कि लक्ष्मण राजा द्वितीय अपने सामंती राजकुमारों एवं हाथी, घोड़े, पैदल सैनिकों के साथ त्रिपुरी से सोमनाथ पट्टन गया एवं सोन के कमल चढ़ाये तथा उड़ीसा के राजा से प्राप्त कालिया सर्प की मूर्ति चढ़ाई और एक भजन लिखा।[18] कलचुरि काल में अनेक शिव मंदिरों का निर्माण हुआ।[19] हर गौरी की मूर्ति जो गुर्गी में थी (वर्तमान पद्मधर पार्क), से कनिंघम ने यह अनुमान लगाया कि जिस मंदिर में स्थापित रही होगी वह सौ फुट ऊँचा रहा होगा। गुर्गी अभिलेख से पता चलता है कि इस मंदिर का निर्माण प्रशांत शिव नामक ऋषि द्वारा कराया गया था।[20] राजा के साथ–साथ विवेच्य क्षेत्र की जनता भी शिव की उपासक थी क्योंकि अनेक मंत्रियों, सेनापतियों एवं जनता द्वारा शैव मंदिरों का निर्माण कराया गया। युवराज देव प्रथम के कायस्थ अमात्य के वंशज ने अपना धर्म परिवर्तित कर शैव हो जाने पर संभवतः गुर्गी में शिव मंदिर का निर्माण करवाया।[21] विवेच्य क्षेत्र शैव संप्रदाय से प्रारंभ से ही पूर्णतया प्रभावित रहा, जिसके तहत अनेक शिव मंदिरों का निर्माण क्षेत्र की विशेषता रही। बगर (रीवा) से प्राचीन शैव प्रतिमायें प्राप्त हुई।[22] नचना,

शिव पार्वती मंदिर[23] एवं भुमरा का एक मुख शिवलिंग[24] की प्रतिमा एवं कलचुरि काल में अनेक शिव मंदिरों का निर्माण हुआ। अमरकंटक (शहडोल) के शिव मंदिर के अवशेष एवं करन मंदिर उल्लेखनीय है। खजुहा (रीवा) शिव मंदिर, गुर्गी, चंद्रेह, शिव, जसो, देवतालाब, देवदह, बैजनाथ, महसाँव, भाड़ा, सोहागपुर (शहडोल) में कलचुरिकालीन शिव मंदिरों का निर्माण उल्लेखनीय है। विवेच्य क्षेत्र में 12वीं सदी तक शैव संप्रदाय का विशेष महत्व रहा। गोलकी मठ (मैहर) कलचुरिकाल का संरक्षित शिव मंदिर है।

(ख) वैष्णव सम्प्रदाय– वैष्णव संप्रदाय का का भी विवेच्य क्षेत्र में विशेष प्रभाव प्राचीन काल से ही रहा है। पांडु वैष्णव मतावलंबी थे।[25] जिनका साम्राज्य विवेच्य क्षेत्र के दक्षिणी भाग पर था। गुप्तों के समय में भी वैष्णव धर्म का अत्यधिक प्रचार हुआ था।[26] गुप्त राजकुमारी प्रभावती गुप्त का विवाह वाकाटक नरेश रूद्रसेन द्वितीय से हुआ एवं वाकाटक भी वैष्णव हो गये, अतः यह क्षेत्र वैष्णव संप्रदाय से प्रभावित हुआ।

स्कन्द गुप्त के सुपिया ग्राम शिलालेख (सन् 460 ई.) में इस शिला को 'बल–यष्टि' अर्थात् बलराम के पूजा की 'शिलायष्टि'' माना है।[27] सतना जिले के उचेहरा (उच्चकल्प) से कुछ दूर पिपरिया नामक स्थान पर गुप्तकालीन मंदिर मिला है, मंदिर द्वार पर वराह अवतार, नवग्रह आदि मिले हैं, यह मंदिर भगवान विष्णु का था, विष्णु की प्रतिमा मंदिर के समीप से ही प्राप्त हुई है।[28]

हर्षचरित बौद्ध आचार्य दिवाकर मित्र के आश्रम वासियों में पाँच रात्रिक तथा भागवत संप्रदायों का भी उल्लेख हुआ है, पाँच रात्रिक एवं भागवत धर्मानुयायी वैष्णव संप्रदाय ही है। अतः विंध्याटवी भी वैष्णव संप्रदाय से प्रभावित था। बाण ने कादंबरी में अनेक स्थलों पर कृष्ण के पुराण वर्णित वीरतापूर्वक कार्यों का उल्लेख किया है।[29] वैष्णव संप्रदाय की अवतारवादी अवधारणा के फलस्वरूप इसमें कई छोटी–छोटी शाखायें हो गयी। कृष्ण, राम आदि की अलग–अलग उपासना होने लगी तथा उनकी विशिष्ट उपासना पद्धतियाँ विकसित हुई। कृष्ण भक्ति शाखा का सृजन करके भागवत धर्म को खंडित कर दिया।[30] अर्थात् सातवीं सदी के अंत में वैष्णव धर्म, अवनति की ओर अग्रसर हुआ।[31] लेकिन अलबेरूनी के समय के भारतीय समाज में वैष्णव धर्म उन्नति के शिखर पर था, साधारण जनता से सम्राट तक वैष्णव धर्मानुयायी थे।[32] राजपूतकाल के प्रतिहार नरेशों ने भी वैष्णव धर्म को प्रोत्साहन दिया होगा। उनमें कम से कम एक नरेश देवशक्ति को परम वैष्णव कहा गया है।

विष्णु की आराधना निराकार और साकार दोनों रूप में होती थी। धीरे–धीरे अनेक अवतारों की उपासना भी विष्णु भक्ति का अंग बन गई। गांगेयदेव कालीन मुकुंदपुर प्रस्तर लेख में विष्णु का जलशायी नाम मिलता है।[33] जलशयन विष्णु भगवान का एक मठ गहोई बनियाओं के कुल के सेठ दमोदर ने बनवाया जिसकी तिथि कलचुरि संवत् 772 में थी। इस शिलालेख में लिखा है, कि यह अनन्त शयन या शेषशायी भगवत का मंदिर था, और उसी के साथ एक मठ भी संलग्न था।[34] युवराज देव प्रथम के बांधोगढ़ शिलालेख में उसके अमात्य गोल्लक द्वारा विष्णु के मत्स्य, वहरा तथा कुर्म अवतारों के शिला पर उत्कीर्ण करवाने का उल्लेख है।[35] युवराज देव के दूसरे और तीसरे अभिलेख में भी गोल्लक द्वारा विष्णु के अवतारों एवं वराह की मूर्ति निर्माण का उल्लेख है।[36] विष्णु के रामावतार की आराधना भी इस काल में प्रारंभ हुई, विजय सिंह के रीवा प्रस्तर लेख में कहा गया है कि, राम के पूजा करने वाले भक्तों को बैकुण्ठलोक प्राप्त होता है।[37] विष्णु द्वारा मोहिनी रूप धारण

करके समुद्र मंथन से निकले अमृत का बँटवारा करते समय राहु को खंडित करने का विवरण विजय सिंह के गोपालपुर लेख में मिलता है। इससे प्रकट होता है कि वैष्णव धर्म ने निराकार ब्रह्म की उपासना की सुविधा होते हुये भी विष्णु के विभिन्न साकार रूपों की उपासना और उनकी कथाओं का रसास्वादन इस संप्रदाय के भक्तों में व्यापक रूप से प्रचलित हो गया था।[38]

पिपरिया (सतना) में सागर विश्वविद्यालय द्वारा गुप्तकालीन मंदिर के निकट किये गये उत्खनन में वैष्णव प्रतिमायें प्राप्त हुई हैं।[39] अनेक विष्णु मंदिरों का निर्माण विवेच्य क्षेत्र में हुआ। अमरकंटक शहडोल का कलचुरिकालीन विष्णु मंदिर जो केशव नारायण का मंदिर कहलाता है।[40] परैनी (रीवा) में कलचुरिकालीन एक वैष्णव मंदिर के भग्नावशेष तथा वराह प्रतिमा का वर्णन मिलता है।[41] बान्धोगढ़ रीवा के स्थानीय दुर्ग में प्राचीन वैष्णव मंदिर का उल्लेख है।[42] मंदिरों के साथ–साथ अनेक वैष्णव प्रतिमाएँ भी इस क्षेत्र में प्राप्त हुई हैं। अमरकंटक में कलचुरि कालीन वासुदेव विष्णु की प्रतिमा[43], गुरह, गोपालपुर, रीवा से प्राप्त वैष्णव प्रतिमायें, दुधिया, परैनी, मरई, मुकुंदपुर, मैहर में पाई गई। विष्णु के रौद्र रूप की प्रतिमा विराट नगर शहडोल से प्राप्त हुई है।[44]

रीवा किले में कलचुरिकालीन विष्णु की प्रतिमायें हैं।[45] सिंहपुर (शहडोल) में कलचुरिकालीन विष्णु मंदिर का तोरण[46] तथा कलचुरि कालीन वासुदेव विष्णु की प्रतिमा और गरूण की प्रतिमा भी प्राप्त हुई है। सोहोगपुर (शहडोल) में दो वैष्णव मंदिरों के भग्नावशेष प्राप्त हुये हैं।[47] श्री ठाकुर के महल में संरक्षित कलचुरिकालीन विष्णु, शेष पर लेटे नारायण तथा गरूण की प्रतिमायें देखी जा सकती हैं।

संदर्भ–

1. मिराशी, वा0वि0 1955 का0इ0इ0 खंड–4, उटकमंड पृ0 181 पंक्ति 1.
2. सिंह, रामवृक्ष 1982 गुप्तोत्तरकालीन राजवंश, लखनऊ पृ0 362.
3. उपाध्याय, वासुदेव 1961 प्राचीन भारतीय अभिलेख, वाराणसी पृ0 129.
4. सिंह, रामवृक्ष 1982 गुप्तोत्तरकालीन राजवंश लखनऊ पृ. 199.
5. शर्मा, बैजनाथ 1970 हर्ष एण्ड हिज टाइम, वाराणसी पृ0 401.
6. वही, पृ0 402.
7. त्रिपाठी, आर0एस0 हिस्ट्री आफ कन्नौज पृ. 163.
8. मिराशी, वा0वि0 1955 का0इ0इ0 खंड–4 उटकमंड पृ. 294 श्लोक 22.
9. मिश्र, जयशंकर 1968 11वीं सदी का भारत पृ. 183.
10. मिराशी, वा0वि0 1955 का0इ0इ0 खंड–4, उटकमंड पृ. 200 श्लोक 3.
11. वही, पृ0 227.
12. वही, पृ0 209–214.
13. मिराशी, वा0वि0 1955 का0इ0इ0 खंड–4 उटकमंड 281 श्लोक 1
14. एपिग्राफिया इण्डिका खंड–2 पृ. 4.
15. मिराशी, वा0वि0 1955 का0इ0इ0 खंड–4 उटकमंड पृ. 200 श्लोक 3.
16. वही, पृ0 151.
17. वही, पृ0 317 श्लोक 23–24.
18. वही, पृ. 313–14 श्लोक 23–24.
19. उपाध्याय, वासुदेव 1961 प्राचीन भारतीय अभिलेखों का अध्ययन वाराणसी पृ. 143 व 193.

20. मिराशी, वा0वि0, 1955 का0इ0इ0 खंड–4, उटकमंड पृ. 228 श्लोक 14.
21. मिराशी, वा0वि0 1955 का0इ0इ0 खंड–4 उटकमंड पृ0 272 श्लोक 28
22. कनिंघम आर्कियोलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया रिपोर्ट खंड–13 पृ0 5.
23. कनिंघम आर्कियोलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया रिपोर्ट खंड–21 पृ0 98–99.
24. बनर्जी, राखालदास एज आफ दि इम्पीरियल गुप्ताज पु0 142–145.
25. शास्त्री अजयमिश्र एवं नारायण 1981–82 प्राच्य प्रतिम खंड 9–10 भोपाल पृ0 48.
26. श्रीवास्तव अम्बा प्रसाद 1956 विंध्य भूमि, इलाहाबाद पृ0 29.
27. उपाध्याय, वासुदेव 1974 गुप्त अभिलेख, पटना पृ0 75.
28. धुबैला म्यूजियम (छतरपुर) प्लेट नं0 265.
29. बाजपेयी, कृष्ण दत्त भारतीय वास्तुकला का इतिहास पृ0 113.
30. सिंह, रामवृक्ष 1982 गुप्तोत्तर कालीन भारत, लखनऊ, पृ0 199–200.
31. सिंह, देवी प्रसाद 1984 हिंदू समाज में परिवर्तन की प्रक्रिया, गोरखपुर पृ0 165.
32. मिश्र, जयशंकर 1968 11वीं सदी का भारत वाराणसी पृ0 185.
33. शर्मा, बैजनाथ 1970 हर्ष एण्ड हिज टाइम, वाराणसी पृ. 402.
34. मिराशी, वा0वि0 1955 का0इ0इ0 खंड–4 उटकमंड पृ0 235.
35. धुबैला संग्रहालय छतरपुर, प्लेट नं0– 242.
36. मिराशी, वा0वि0 1955 का0इ0इ0 खंड–4 उटकमंड पृ0 182–183.
37. वही, पृ0 183–185.
38. मिराशी, वा0वि0 1955 का0इ0इ0 खंड–4 उटकमंड पृ0 352 श्लोक 27.
39. वही, पृ0 654 श्लोक 2.
40. इण्डियन आर्कियोलाजी ए रिव्यू, 1968–69.
41. कनिंघम आर्कियोलाजिकल सर्वे इण्डिया रिपोर्ट खंड–7 पृ0 230.
42. कनिंघम आर्कियोलाजिकल सर्वे इण्डिया रिपोर्ट खंड–21 पृ0 158.
43. खरे, एम0डी0 1973–74 मध्य प्रदेश इतिहास परिषद् जर्नरल भोपाल पृ0 20–21.
44. अनंत, आर0एस0 1966 आ0 एण्ड दि क0आ0 त्रिपुरी, शोध पृ0 215.
45. वही, पृ0 242.
46. कनिंघम आर्कियोलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया रिपोर्ट खंड–7, पृ0 244.
47. गुप्ता, सुमन गुप्त कालीन अभिलेखों का धामिक अध्ययन, पृ0 95–96.

SHODH CHETNA – YEAR-2 (JAN. TO MARCH, 2016) VOL. 1
ISSN : 2350-0441

विश्व ज्ञान के विकास में उपनिषदों का योगदान

❒ डा. अनिरुद्ध कुमार पाण्डेय

शोध सारांश

भारतीय साहित्य तथा दर्शन में जब-जब वैचारिक भ्रान्तियाँ उपस्थापित हुई हैं तब-तब दार्शनिकों ने उपनिषदों से ही मार्ग दर्शन प्राप्त किया है। वेदों के पश्चात् उपनिषदों का काल भारतीय दर्शन के इतिहास में अत्यन्त क्रान्तिकारी माना गया है। ये उपनिषद् वैदिक वाङ्मय के अभिन्न भाग हैं। हमारे प्राचीन ऋषियों ने वर्णनातीत परम शक्ति को शब्दों में बाँधने की कोशिश की है और उस निराकार निर्विकार असीम अपार को अन्तर्दृष्टि से समझने और परिभाषित करने की अगम्य आकांक्षा के लेखबद्ध विवरण किये हैं।

भारतीय साहित्य तथा दर्शन में जब-जब वैचारिक भ्रान्तियाँ उपस्थापित हुई हैं तब-तब दार्शनिकों ने उपनिषदों से ही मार्गदर्शन प्राप्त किया है। वेदों के पश्चात् उपनिषदों का काल भारतीय दर्शन के इतिहास में अत्यन्त क्रांतिकारी माना गया है। ये उपनिषद् वैदिक वाङ्मय के अभिन्न भाग है। इस वैदिक वाङ्मय में परमेश्वर, परमात्मा, ब्रह्मं और आत्मा के स्वभाव और संबंध का बहुत ही दार्शनिक और ज्ञानपूर्वक वर्णन किया गया है। उपनिषद् ही समस्त भारतीय दर्शनों के मूलस्रोत है। चाहे वेदान्त हो या सांख्य, जैन हो या बौद्ध सभी ने उपनिषदों की सरणि का ही अनुसरण किया है। कहा भी गया है—

भिद्यते हृदयग्रन्थिः छिद्यते सर्वसंशयः।
क्रीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे।[1]

इन्हीं विशिष्टताओं को ध्यान में रखकर सत्रहवीं सदी में दाराशिकोह ने उपनिषदों का फारसी में अनुवाद कराया। वैसे इसके अर्थ की विशिष्टता में जाये तो उपनिषद् उपसर्ग सत् धातु से निष्पन्न हुआ यह समीप उपवेशन या समीप बैठन (ब्रह्म विद्या की प्राप्ति के लिए शिष्य का गुरु के समीप बैठना) इसमें विवरण-नाश होना, गति पाना या जानना तथा अवसादन-शिथिल होना। इस तरह हमारे उपनिषदों में ऋषि और शिष्य के बीच बहुत सुन्दर और गूढ़ संवाद है। जो पाठक को वेद के मर्म तक पहुँचाता है तथा अनेक जिज्ञासाओं का समाधान तथा ऋषियों द्वारा खोजे हुये उत्तर इसमें दिये गये हैं। हमारे प्राचीन ऋषियों ने वर्णनातीत परमशक्ति को शब्दों में बाँधने की कोशिश की है और उस निराकार निर्विकार असीम अपार को अन्तर्दृष्टि से समझने और परिभाषित करने की अगम्य अकांक्षा के लेखबद्ध विवरण किये हैं। उपनिषदों में सूक्ष्म विषयों की जहाँ विवेचना की गई है। वहीं उदाहरण के रूप में कथायें भी कहीं गई हैं। जिससे मानव मस्तिष्क में उपनिषदीय वाक्य-विन्यास का संयोजन ही यद्यपि आज पुराण, रामायण महाभारत आदि ग्रन्थों को पढ़कर कथा

* विभागाध्यक्ष-व्याकरण, शा. वेंकट संस्कृत महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.), ई-मेल : aniruddha.pandey56@gmail.com, मो. 09425184656

तक अनायास ही लोग पहुँच जाते हैं। परन्तु हमारे उपनिषदों ने धर्म और दर्शन के गूढ़ तत्वों का समायोजन होगा, यह विचारकर पढ़ने का साहस कम ही लोग कर पाते हैं। उपनिषद् को रहस्य विद्या से भी व्यवहृत किया जाता है। क्योंकि उसमें शब्दब्रह्मं रूपी वाक्य अप्रत्यक्ष रूप से भारतीय संस्कृति के सभी विचारधाराओं को जीवन्तता प्रदान करते हैं। इसमें तत्कालीन संस्कृति के अध्यात्म तत्व ही नहीं संजोये गये हैं बल्कि भारतीय जीवन-दर्शन के सभी पहलुओं का गम्भीर विवेचन भी प्रस्तुत किया गया है। हमारे उपनिषदों में मानव जीवन में ही नहीं बल्कि निखिल विश्व में व्याप्त सत्य की जिज्ञासा एवं उसके अन्वेषण के लिए उपयोगी साधना की ऐसी उत्कृष्ट उत्कष्ठ उसमें व्याप्त है जो विश्व के विस्तृत वाङ्मय में उपलब्ध नहीं होता तथा मानव की उत्कृष्ट कल्पना का ऐसा शाश्वत कल्याणकारी रूप विश्व साहित्य में अभी तक दूसरा नहीं दिखाई पड़ता। यही कारण है कि आधुनिक एवं पाश्चात्य विचारक भी अनायास ही औपनिषदीय वाक्यों की ओर खिंचे चले आते हैं। ये उपनिषद् शाश्वत ज्ञान के अक्षय भण्डार है। वेद के तुल्य उपनिषद् भी जगत के रहस्य को जानने का उपदेश देते हैं। उपनिषदों का लक्ष्य जानना ही नहीं बल्कि उस सत्य को जानकर उसका साक्षात्कार कर उसको जीवन में उतार लेना है। 'असतो मा सद् गमय मृत्योर्मा ऽमृतं गमय' इत्यादि से स्पष्ट प्रतीत होता है कि वहाँ उस लक्ष्य को प्राप्त करने की अभिलाषा सन्निविष्ट थी, अस्तु उपनिषद् भारतीय दर्शन के मूल स्रोत हैं। बौद्ध तथा जैन आदि नास्तिक भी जीवन का वास्तविक कल्प निर्वाण प्राप्त करना तथा मोक्ष खोजना ही मानते हैं। उपनिषदों में तो यहाँ तक कहा गया है कि—

इहचेनवेदीथसत्यमस्ति। न चेहिदावेदींमहतीविनिष्टः।
भूतेषु भूतेषु विचिन्तयधीराः प्रेत्यास्मान्लोकाद्मृता भवन्ति।।[2]

इसका भाव यह है कि प्रत्येक प्राणी परब्रंह्म को समझकर इस लोक से प्रयाण करके अवश्य ही अमरत्व को प्राप्त कर लेता है तथा जब मनुष्य के हृदयस्थ समस्त कामनायें नष्ट हो जाती है तो वह अमर हो जाता है और यही अमरत्व ब्रह्मं का अनुभव करता है। इससे प्रतीत होता है कि इस भारतवर्ष के पास कुछ रहे न रहे उसके पास भारतीय संस्कृति के सभी अंगों का प्रकाश डालने वाली औपनीषदीय अमरवाणी अवश्य है; यथा—

सत्यं वद। धर्मं चर। स्वाध्यायान्मा प्रमदः। सत्यान्न प्रमदितव्यम्। धर्मान्न प्रगदितव्यम्। कुशलान्न प्रमादितव्यम्। भूत्यै न प्रमदितव्यम् स्वाध्याय प्रवचनाभ्यां न प्रमदिव्यम्। देवपितृकार्याभ्याम् न प्रगदित्यम्। मातृ देवो भव। पितृ देवो भव। आचार्यदेवो भव। यान्यनवद्यानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि। नो इतराणि। यान्यस्मांक सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि। नो इतराणि।

इत्यादि वाक्यों से मानव चेतना को जीवन्तता प्राप्त होता है जो मानवीय संवेदना आज भौतिक अन्धानुकरण से दासत्व को प्राप्त हो रहा है। आवश्यकता है उपनिषदों की पुनीत कथानकों एवं अमर पात्रों के शान्तिदायक चरित्रानुकरण तथा गूढ़तत्वान्वेषण की, उपनिषदें हमारी गौरवशालिनी संस्कृति एवं सभ्यता की समुज्जवल प्रतीक हैं जिसके खोज में विश्व दौड़ रहा है। आज उपनिषदीय चिन्तन की अतीव आवश्यकता है तथा उपनिषदों की सूक्तियों एवं कहानियाँ पात्रों के चरित्र-चित्रण मानव जीवन के लिए कहे गये ऋषियों के वाक्य निश्चित ही आधुनिक पीढ़ी के लिए उन तत्त्वों की संवाहिका है जिसकी आज आवश्यकता है।

सन्दर्भ—

(1) मुन्डकोपनिषद् 2/2/8
(2) केन उपनिषद् 2/5
(3) तैत्तिरीयोपनिषद्

SHODH CHETNA – YEAR-2 (JAN. TO MARCH, 2016) VOL. 1
ISSN : 2350-0441

लोकतंत्रात्मक व्यवस्था में सूचना का अधिकार अधिनियम

❒ डा. अनुपम सिंह*
❒ डा. संदीप कपूर**

शोध सारांश

''भारत सरकार द्वारा यह निरन्तर प्रयास रहा है कि यहाँ के नागरिकों को सभी क्षेत्र में अधिक से अधिक सुविधाएं प्रदान की जायें व सभी समस्याओं का निदान भी किया जाए चाहे वो धनिक वर्ग हो या गरीब असहाय। सबको एक बेहतर समान जीवन का अधिकार है। इसी प्रयास में सूचना का अधिकार अधिनियम 2005 बना इस अधिनियम के द्वारा सभी क्षेत्र में पारदर्शिता रहेगी। नागरिकों को अब अधिकार प्राप्त है वे जिस क्षेत्र की जानकारी को चाहते हैं उन्हें मिलेगी। यही लोकतंत्रात्मक राष्ट्र की पहचान है।''

भारत सदैव अपने नागरिकों के जीवन को सुरक्षित व बेहतर बनाने के लिए प्रयत्नशील रहता है। अतः संविधान की धारा 19 (1) के तहत मूलभूत अधिकार दिया व प्रत्येक नागरिक कों स्वतंत्रता दी गई उसे जानने का अधिकार दिया गया। लोकतंत्र सही मायने में तभी कहा जा सकता है जब सरकार द्वारा सभी कार्य इमानदारी से हो। ब्रिटिश शासन काल से शासकीय गुप्त बात अधिनियम 1923 का प्रचलन रहा है। इसमें पारदर्शिता लाने के लिए साथ ही यदि कार्य के प्रति किसी नागरिक को संदेह है तो सूचना का अधिकार आवश्यक है। जिससे नागरिकों के प्रति अनुचित पर नियंत्रण हो।

सूचना का अधिकार अधिनियम (आर.टी. आई.) की स्वीकृति राष्ट्रपति की स्वीकृति से 15 जून 2005 को दी गई तथा जून 21, 2005 को भारत के राजपत्र में प्रकाशित हुआ।

इसका विस्तार जम्मू–काश्मीर राज्य को छोड़कर सम्पूर्ण भारत में है। सूचना का अधिकार लोकतंत्र एवं प्रशासनिक व्यवस्था में संतुलन बनाने के लिए अत्यंत आवश्यक है। देश में भ्रष्टाचार को रोकने के लिए केन्द्रीय सूचना आयोग एवं राज्य सूचना आयोग के माध्यम से सूचना के अधिकार को स्थापित किया गया। इसमें विभिन्न पदाधिकारी महत्वपूर्ण पदों पर नियुक्त किये गये।

'केन्द्रीय लोक सूचना अधिकारी–केन्द्रीय सूचना आयोग धारा 12 की उपधारा (1), सूचना अधिकार अधिनियम के धारा 2 (ग) अनुसार उपधारा (1) के अधीन नियुक्त किय गये है।

- केन्द्रीय सहायक लोक सूचना अधिकारी सूचना का अधिकार अधिनियम 5 की उपधारा (2) के अधीन होते है।[1]

* राजनीति विज्ञान (एम.फिल.), शास. शहीद केदारनाथ स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मऊगंज, रीवा (म.प्र.)
** राजनीति विज्ञान, शास. शहीद केदारनाथ स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मऊगंज, रीवा (म.प्र.)

- मुख्य सूचना आयुक्त और सूचना आयुक्त सूचना का अधिकार अधिनियम की धारा 2 (घ) के अनुसार धारा 12 की उपधारा (3) के अधीन नियुक्त है।[2]
- सक्षम अधिकारी सूचना का अधिकार अधिनियम की धारा 2 (ड.) के अनुसार सक्षम अधिकारी है।[3]

1. जब किसी राज्य क्षेत्र या विधानसभा से सम्बधित होता है तब 'अध्यक्ष' और राज्यसभा या विधान परिषद की बात हो तो सभापति सक्षम अधिकारी होते है।
2. उच्चतम न्यायालय की दशा में भारत के मुख्य न्यायमूर्ति होंगे।
3. उच्च न्यायालय की दशा में उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति होंगे।
4. संविधान द्वारा या उसके अधीन स्थापित या गठित अन्य प्राधिकरणों की दशा में राष्ट्रपति या राज्यपाल होंगे।
5. संविधान के अनुच्छेद 289 के अधीन नियुक्त प्रशासक होते हैं।[4]

केन्द्रीय सूचना आयोग एक निकाय है जिसका कार्यकलाप निर्देशन प्रबंधन मुख्य सूचना आयुक्त के द्वारा होता है। मुख्य सूचना आयुक्तों को निम्न कमेटी की सिफारिश से राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किया जाता है।

1. प्रधानमंत्री (कमेटी का अध्यक्ष)
2. लोकसभा विपक्ष के नेता
3. प्रधानमंत्री द्वारा निर्देशित केन्द्रीय मंत्रिपरिषद का एक मंत्री।

राज्य सूचना आयोग सूचना का अधिकार अधिनियम की धारा 2 (ट) के अनुसार से धारा 15 की उपधारा (1) के अधीन राज्य सूचना आयोग में।

- राज्य मुख्य सूचना आयुक्त – एवं राज्य सूचना आयुक्त सूचना का अधिकार अधिनियम की धारा 2 (ठ) के अनुसार एवं धारा 15 की उपधारा (3) के अधीन नियुक्त राज्य मुख्य सूचना आयुक्त और राज्य सूचना आयुक्त है।
- राज्यलोक सूचना अधिकारी – सूचना का अधिकार अधिनियम की धारा 2 (ड) के अनुसार उपधारा (1) के अधीन है।
- राज्य सहायक लोक सूचना अधिकारी – सूचना का अधिकार अधिनियम धारा 5 की उपधारा (2) के अधीन है।[5]

प्रत्येक राज्य सरकार ने राज्य सूचना आयोग का गठन किया है। राज्य सूचना आयोग का निर्देशन प्रबंधन राज्य मुख्य सूचना आयुक्त के द्वारा होता है। राज्य मुख्य सूचना आयुक्त एवं राज्य सूचना आयुक्त जिनकी अधिकतम संख्या दस हो सकती है, कि नियुक्ति निम्न कमेटी की अनुशंसा पर राज्यपाल द्वारा की जाती है।

1. मुख्यमंत्री (कमेटी का अध्यक्ष)
2. विधानसभा में विपक्ष का नेता
3. मुख्यमंत्री द्वारा निर्देशित किये जाने वाले मंत्री परिषद के एक मंत्री।

सूचना के अधिकार के क्षेत्र :–

सूचना का अधिकार के लोक प्राधिकारी सूचना अधिकार अधिनियम की धारा 2 (ज) के अनुसार संविधान द्वारा या उसके आधीन जो क्षेत्र है, संसद के द्वारा निर्मित अनेको विधि, राज्यमंडल द्वारा बनाई गई विधि तथा समुचित सरकार द्वारा जारी किये अधिसूचनाओं एवं आदेश द्वारा स्थापित या गठित निकाय या स्वायत्त सरकारी संस्था, समुचित सरकार के अधीन प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से निधियों द्वारा पूर्णतया वित्त पोषित गैर–शासकीय संगठन तथा अन्य निकाय होते हैं।

सूचना का अधिकार :–

सूचना का अधिकार अधिनियम के अन्तर्गत संस्था के दस्तावेज, इलेक्ट्रानिक दस्तावेज का निरीक्षण किया जा सकता है। उपर्युक्त दस्तावेजों के प्रमाणित प्रतिलिपि प्राप्त कर सकते है। सामग्री का प्रमाणित नमूना लिया जा सकता है। फ्लापी टेप, वीडियो कैसेट या अन्य प्रकार से सूचना प्राप्त की जा सकती है।

इसके अन्तर्गत प्रत्येक नागरिक सूचना प्राप्त करने का अधिकार रखता है। इसके लिए आवेदन–पत्र उपलब्ध होते है जो लिखित में इलेक्ट्रानिक माध्यम से फीस के साथ सूचना प्राप्त का आवेदन कर सकता है। अधिनियम में अपील किसी नागरिक द्वारा की जा सकती है। निगम, संघ, कम्पनी आदि इस परिभाषा में नहीं आते।

सूचना का अधिकार की समय पर पूर्ति :–

अधिनियम के अनुसार कुछ विशेष परिस्थितियों को छोड़कर आवेदन प्राप्त होने के 30 दिनों के भीतर सूचना दे दिया जाय। यदि सम्बध व्यक्ति के जीवन या स्वतंत्रता से हो तो सूचना 48 घंटे के अन्दर सूचना उपलब्ध करानी चाहिए। अन्यथा यह समझा जायेगा कि अनुरोध स्वीकार नहीं किया गया। अतः प्रथम अपील 30 दिनों या आपवादिक मामलों में 45 दिनों के भीतर लोक प्राधिकारी को अपील का निदान किया जाता है। लेकिन यदि अपीलीय अधिकारी निर्धारित समय में अपील पर आदेश जारी करने में असफल रहे थे या अपीलकर्ता की असंतोष की स्थिति में अपीलकर्ता निर्णय की तारीख से 90 दिनों के अवधि में केन्द्रीय सूचना आयोग के पास दूसरी अपील कर सकता है।6

किसी अपील पर निर्णत लेते हुए केन्द्रीय सूचना आयोग के सम्बंधित लोक प्राधिकारी कुछ ऐसे निर्णय ले सकते हैं, जो अधिनियम के प्रावधानों के पालन के लिए आवश्यक है अधिनियम की धारा 4 की उपधारा (1) के खण्ड (ख) के अनुसार वार्षिक रिपोर्ट तैयार करा सकते हैं। आयोग सम्बंधित व्यक्ति की क्षतिपूर्ति का आदेश पारित कर सकता है।

अतः भारत सरकार ने अपने नागरिकों को सूचना के अधिकार अधिनियम के माध्यम से एक न्यायपूर्ण जीवन प्रदान किया है। यही एक लोकतांत्रिक राज्य की पहचान है। सरकार के इन्हीं प्रयासों में सभी की सहभागिता व जागरूकता की आवश्यकता है।

संदर्भ–

1. सूचना का अधिकार अधिनियम, डॉ. राधेश्याम द्विवेदी, पृ. क्र. –5
2. सूचना का अधिकार अधिनियम, डॉ. राधेश्याम द्विवेदी, पृ. क्र. –6
3. व्यवहार न्यायधीश प्रारंम्भिक परीक्षा गाइड, डॉ. डी. टाडा, पृ. क्र. 2
4. सूचना का अधिकार अधिनियम डॉ. राधेश्याम द्विवेदी पृ. क्र. – 6
5. व्यवहार न्यायधीश प्रारंम्भिक परीक्षा गाइड डॉ. डी. टाडा पृ. क्र. 5
6. सूचना का अधिकार अधिनियम 2005, भारत सरकार, पृ. क्र. – 7

समान्य अध्ययन, आनन्द कुमार पाण्डेय श्रीमती अर्चना पाण्डेय 2014

मध्यप्रदेश समान्य अध्ययन संग्रह, डॉ. सर्वेश सिंह – 2014

SHODH CHETNA – YEAR-2 (JAN. TO MARCH, 2016) VOL. 1
ISSN : 2350-0441

महाराजा गुलाब सिंह की न्याय व्यवस्था

❐ प्रस्तुतकर्ता : डॉ. महेन्द्र मणि द्विवेदी

शोध सारांश

प्राचीनकाल में रीवा रिसायत में यहाँ के निवासी या तो अपने न्यायिक मामले मुकदमें आपस में ही पंचायत द्वारा तय कर लिया करते थे या किसी सरकारी अफसर के पास उपस्थित होकर उसी से न्याय करा लिया करते थे। महाराजा विश्वनाथ सिंह जी के समय में नियमानुकूल न्यायालय स्थापित होकर उसमें पण्डित लोग न्यायाधीश नियुक्त किये गये थे। रीवा में तीन बड़े न्यायालय थे—(1) सिविल जज, (2) जुडीसियल कमिश्नर तथा (3) डिस्ट्रिक्ट सेसन जज के न्यायालय थे। निचले न्यायालय की सभी अपीलें इन न्यायालयों में की जाती थी। अन्तिम अपील उच्च न्यायालय में की जाती थी। जिसकी अध्यक्षता स्वयं शासक द्वारा की जाती थी।

मुकदमों, गवाहों के बयानात मुख्त किया या मुजबजब होते या कोई फरीक गोला कड़ाही की कसम पर हसर करता तो फरीकेन में किसी की इस किस्म की कसम ली जाती थी और कर्म फरीकैज ही बाखुदहा ऐसी कार्यवाही कर लेते थे कसम लेने वाला गुस्ल करके मकान मुअय्यन पर बवक्त माहूद हाजिर होता और एक गोला लोहे का आग में सूखे कराते और कसम देने वाले के दोनों हाथ पर सात पत्ते पीपल के घी से चिकने करके रखे जाते और तह पत्ते व घी सूत से बांधे जाते गोला की कसम देने वाले के हाथ पर रखते अगर उसका हाथ जलने से बच जाता तो वह बरी हो जाता मुजरिम करार नहीं। कड़ाही में तेल गर्म करके उसमें पैसा डालते। कसम देने वाला उन पैसों को कड़ाही से हाथ डालकर निकाले अगर जल गया तो मुजरिम समझा जाता। अगर चोरी बगैरह में पकड़े जाते तो उसका मुँह काला करते गदहे पर सवार करते और आबादी से बाहर निकाल देते। मुजरिम के पेशानी पर गर्म पैसा दाग करके निकाल दिया जाता था।[5] यद्यपि महाराजा वेंकट रमण सिंह द्वारा स्थापित न्याय व्यवस्था यथावत चलती रही। जिले में विद्यमान न्यायालय ऑनरेरी मजिस्ट्रेटों के थे। ऑनरेरी मजिस्ट्रेट दाण्डिक मामलों में तृतीय श्रेणी के मजिस्ट्रेट की शक्तियों का प्रयोग करते थे। तहसीलदारों को सिविल तथा दाण्डिक मामलों में विभिन्न प्रकार की शक्तियाँ प्राप्त थीं। रीवा में तीन बड़े न्यायालय थे—(1) सिविल जज, (2) ज्युडिशियल कमिश्नर तथा डिस्ट्रिक्ट तथा सेशन जज के न्यायालय थे। निचले न्यायालय की सभी अपीलें इन न्यायालयों में की जाती थी। अन्तिम अपील उच्च न्यायालय में की जाती थी जिसकी अध्यक्षता स्वयं शासक द्वारा की जाती थी।[6]

(अ) महाराजा गुलाब सिंह के कार्य काल में दीवानी व्यवस्था—

महाराजा वेंकट रमण सिंह द्वारा स्थापित व्यवस्था दीवानी एवं फौजदारी की 1933 तक चलती रही इसमें

* प्राध्यापक, इतिहास विभाग, शा. कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

तहसीलों के तहसीलदारों को दीवानी के मुकदमों के पटाने का अधिकार दिया गया। तहसीलदार ही मुन्सिफ हुआ करते थे। सन् 1915 में तहसीलदारों से यह अधिकार ले लिया गया और डिप्टी मजिस्ट्रेट ही मुन्सिफ नियुक्त कर दिए गये। मुन्सफी की अपील डिस्ट्रिक्ट जज के यहाँ होती थी। दीवानी के छोटे मुकदमों को तय करने के लिए चौरे भी स्थापित थे।

(1) **चौरा**—राज्य में 3 प्रकार के चौरे कायम थे। यह प्रणाली वि.सं. 1954 से प्रचलित की गई। धीरे-धीरे इसके कार्यों में परिवर्तन होता गया। वर्तमान समय में चौरों की सुगठित प्रणाली थी—(1) पहिले दर्ज के चौरों में 100 रुपये तक के दीवानी के मुकदमें दायर होते थे। (2) दूसरे दर्जे के चौरों में 75/- रुपये तक के मामले पटाये जाते थे। तीसरे दर्जे के चौरों में 50/-रुपये तक के दीवानी के मामले तय किये जाते थे। चौरों में 5 आदमियों की एक समिति होती थी। जिन्हें पंच कहते थे। इनमें एक जो मुखिया होता था उस सरपंच कहते थे। चौरों की बैठकें हफ्ते में किसी खास दिन को होती थी चोरों के फैसले उतने ही महत्व के होते थे जितने की अदालतों के। चौरों की अपील डिस्ट्रिक्ट जज की अदालत में होती थी। रीवा राज्य में तीन जिले थे और जिनमें कुल मिलाकर 12 तहसीलें थी। हर तहसील में कई एक चोरे थे।

(2) **मुन्सफी**—यहाँ पर दीवानी के 1000/- रुपये तक के मामले तय किए जाते थे। जहाँ पर डिप्टी मजिस्ट्रेटी थी वहीं पर मुन्सफी भी थी। 5 पैसा रुपया रसूम और 6 आने का टिकिट एक आना कोस के हिसाब से तलबाना लिया जाता था। मालियत के लिए (2) डिग्री दी जाती थी। जिसके साथ अदालत खर्च भी शामिल रहता था। डिग्री के रुपये के लिए जायदाद की कुर्की बगैरह होती रहती थी। रीवा खास में मुन्सिफ अलग से होते थे। जबकि अन्य जगहों में मुन्सिफ का काम डि. मजिस्ट्रेट ही किया करते थे।

(3) **डिस्ट्रिक्ट जज**—राज्य में तीन जिले उत्तरी, दक्षिणी और पूर्वी थे। उत्तरी का सदर स्थान रीवा, दक्षिणी का शहडोल और पूर्वी का सीधी था। पहले पूर्वी का सदर स्थान रीवा, दक्षिणी का शहडोल और पूर्वी का सीधी था। पहले पूर्वी का सदर स्थान बघऊँ में था और यहीं पर सब अदालतें थीं। किन्तु सन् 1915 से इसका सदर स्थान सीधी में हो गया। जिलों में सेशन जज होते थे। जो कि डिस्ट्रिक्ट जज का भी काम करते थे। इनके यहाँ 1000/-रुपये से ऊपर की डिग्री होती थी। चौरों और मुन्सफी की अपील इन्हीं के यहाँ होती थी। रीवा राज्य में दीवानी और फौजदारी का मुन्सफी की अपील इन्हीं के यहाँ होती थी। रीवा राज्य में दीवानी और फौजदारी का काम करने के लिए एक ही व्यक्ति होता था। इसके यहाँ भी अपील हाईकोर्ट में होती थी। 5000/- रुपये तक के मामले यहाँ पर दायर होते थे। किन्तु इससे ऊपर के मामले सीधे हाईकोर्ट में दायर कर दिये जाते थे।

(ब) **फौजदारी**—सुपरिण्टेण्डेन्टी काल में इसकी अदालत बनी। सबसे पहले इसकी अदालत रीवा शहर में स्थापित हुई और फिर उसके बाद भिन्न-भिन्न जगहों में उसकी स्थापना हुई। डिप्टी मजिस्ट्रेटों की नियुक्ति की गई। महाराजा वेंकट रमण सिंह ने इसकी विशेष उन्नति की जिलों के सदर स्थानों में यह अदालतें कायम की गई और उसके बाद अन्य तहसीली स्थानों में वह अदालतें कायम की गईं और उसके बाद अन्य तहसीली स्थानों में इसकी शुरुआत मजिस्ट्रेट से होती थी। पहले मजिस्ट्रेट को तीसरे दर्जे का अधिकार प्राप्त था और उसके बाद जज फैसला दिया करते थे। किन्तु सन् 1915 से मजिस्ट्रेटों के दर्जे कायम किये गये।

(1) **तीसरे दर्जे के मजिस्ट्रेट**—इस मजिस्ट्रेट की अदालत को मुलजिम को 50/-रुपये तक जुर्माना और एक माह तक की सजा देने का अधिकार था। तीसरे दर्ज के मजिस्ट्रेट डिप्टी मजिस्ट्रेट कहलाते थे। रीवा में कुछ उत्तम श्रेणी के इलाकेदारों को भी तीसरे दर्ज के मजिस्ट्रेट के अधिकार प्राप्त थे।

(2) **दूसरे दर्जे के मजिस्ट्रेट**—इस मजिट्रेट की अदातल में 6 माह तक की सजा और 200/- रुपये तक जुर्माना करने के अधिकार थे। पहले राज्य के तहसीलदारों

को इस श्रेणी के अधिकार प्राप्त थे। किन्तु बाद में यह अधिकार राज्य के कुछ डिप्टी मजिस्ट्रेटों को दिये गये।

(3) **पहिले दर्जे के मजिस्ट्रेट**—इस दर्जे के मजिस्ट्रेट राज्य के कई स्थानों में थे। विशेषकर त्योंथर, सतना, रीवा, मऊगंज, सीधी, बैढ़न, ब्योहारी और बुढ़ार में इसी श्रेणी की मजिस्ट्रेटी थी। इनको 2 वर्ष की सजा और 1000/- रुपये तक जुर्माना का अधिकार प्राप्त था। इस विभाग की शील सेशन जज के जहाँ होती थी।

(4) **सेशन जज**—राज्य में रीवा, शहडोल, सीधी में इनकी अदालतें थी। यह डिस्ट्रिक्ट जज का भी काम करते थे। इस अदालत को फांसी और आजन्म तक की सजा देने के अधिकार थे। डिप्टी मजिस्ट्रेट की अपील इन्हीं के यहाँ होती थी। सेशन की अदालत की अपील हाईकोर्ट में होती थी।

(5) **हाईकोर्ट**—वि.सं. 1990 सन् (1935) तक स्वयं महाराजा गुलाब सिंह ही हाईकोर्ट के जज का फैसला किया करते थे।[7] अर्थात सेशन जज की अपील यह स्वयं सुना करते थे।[8] किन्तु सन् 1935 में महाराजा गुलाब सिंह ने सेशन जज की अपील सुनने के लिए चीफ कोर्ट की स्थापना की। शंकर सिंह इस कोर्ट के चीफ जज नियुक्त हुए। एक लम्बे समय तक यह अदालत चलती रही वि.सं. 2002 सन् 1945 ई. में यही चीफ कोर्ट की अदालत हाईकोर्ट में परिवर्तित कर दी गई। इस कोर्ट के प्रमुख जज फूलचन्द्र मोधा बाहर से बुलाए गये। इन्हें चीफ जस्टिस का पद दिया गया। इनकी सहायता के लिए दो और जज बाबू गुरू प्रसाद और बाबू राममनोहर लाल नियुक्त हुए। सन् 1946 में बाबू गुरू प्रसाद जी के निधन होने पर पंचोली छतर सिंह नियुक्ति हुए।[9]

सन्दर्भ—

(1) जीतन सिंह ''रीवा राज्य दर्पण'' 1919, पृ.225
(2) ''रीवा जिला गजेटियर'' 1992, पृ. 194
(3) जीतन सिंह, ''रीवा राज्य दर्पण'', पृ. 225
(4) मौलवी रहमान अली, तबारीख-ए-बघेलखण्ड, पृ. 81
(5) मौलवी रहमान अली, तबारीख-ए-बघेलखण्ड, पृ. 135, 36
(6) रीवा जिला गजेटियर, पृ. 194
(7) गुरू रामप्यारे अग्निहोत्री, रीवा राज्य का इतिहास, पृ. 153, 54
(8) रीवा जिला गजेटियर, पृ. 194
(9) गुरू रामप्यारे अग्निहोत्री, रीवा राज्य का इतिहास, 1972, पृ. 155

नोट—महाराजा विश्वनाथ सिंह एवं महाराजा रघुराज सिंह एवं मौलवी अली खाँ हाकिम अदालत के फैसलों की पार्ट श्री असद खान बिछिया के पास मूल प्रति में मौजूद है, कुछ अंश निम्नानुसार हैं—

- वि.सं. 1904 सन् 1847 ई. अनन्त श्री महाराजाधिराज श्री रघुनाथ जू के अधिकारी सिद्धी श्री महाराजाधिराज श्री महाराज श्री राजा बहादुर के धर्म सभा से फैसला भी श्री पाण्डेय राज्य पूज्य देवान सेनाधिपति वंसीधर और श्री महाराज कुमार लल्लू इन्द्रपाल सिंह.....
- वि.सं. 1911 सन् 1854 ई. अनंत श्री महराजाधिराज श्री रघुनाथ जू देव के धर्म सभा के देमानी कचेहरी से फसला भा श्री चनपुनियासिऊ शंकर राम और सिउदीन राम उपाध्याय रामपुर.....
- श्री पाण्डे राज्य पूज्य लक्षिमन प्रसाद येतो श्री मोलवीय रहिमान अली साहब हाकिम अदालत फौजदारी कै सलाम उहा के समाचार भले चाही इहां के समाचार भले है। आगे हाल जाना सोतकारी बांध कैलासापुर मा ओ बधवार मा हे सो आपके जाइ का केलासपर मा कछु नहीं आप जो कुद दावा होई सो देमानी या पेसकरी ओ उमा दत्त का भी चिट्ठी लिखी गई है। ता. 18 सितम्बर 1877 ई.।
- 1935 में महाराजा गुलाब सिंह ने जमीन सम्बन्धी मामलात निपटाने के लिए रीवा का कानून मालगुजारी व काश्ताकरी प्रकाशित कराई। फिर इसी के तहत मामलात निपटाया जाने लगा।

SHODH CHETNA – YEAR-2 (JAN. TO MARCH, 2016) VOL. 1
ISSN : 2350-0441

बालश्रम एक गंभीर समस्या

❒ डा. प्रतिभा श्रीवास्तव

शोध सारांश

बालश्रम का मतलब ऐसे कार्य से है जिससे कार्य करने वाला व्यक्ति कानून द्वारा निर्धारित आयु सीमा से छोटा होता है। इस प्रथा को कई देशों और अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों ने शोषित करने वाला माना है। अतीत में बालश्रम का कई प्रकार से उपयोग किया जाता था लेकिन सार्वभौमिक स्कूली शिक्षा के साथ औद्योगीकरण, काम करने की स्थिति में परिवर्तन तथा कामगारों श्रमअधिकार और बच्चों, अधिकार की अवधारणाओं के चलते नमें जनविवाद प्रवेश कर गया।

बालश्रम का मतलब ऐसे कार्य से है जिसमें कार्य करने वाला व्यक्ति कानून द्वारा निर्धारित आयु सीमा से छोटा होता है इस प्रथा को कई देशों और अंतर्राष्ट्रीय संगठनों ने शोषित करने वाली माना है। अतीत में बालश्रम का कई प्रकार से उपयोग किया जाता था लेकिन सार्वभौमिक स्कूली शिक्षा के साथ औद्योगीकरण, काम करने की स्थिति में परिवर्तन तथा कामगारों श्रम अधिकार और बच्चों अधिकार की अवधारणाओं के चलते इसमें जनविवाद प्रवेश कर गया। बालश्रम अभी भी कुछ देशों में आया है।

वर्तमान में विश्वपटल पर ज्वलन्त समस्या चुनौतियों के रुप में दिखाई दे रही है बालश्रम उनमें से एक है। आधुनिक समय में बालश्रम शब्द सामाजिक बुराईयों को ही बतलाता है। वह इस रुप में जब बाल श्रमिक अपनी आवश्यकता के लिये परिवार को सहारा देने के लिये करता है तो वह प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रुप से उसके व्यक्तित्व को प्रभावित करता है जो सामाजिक समस्या को जन्म देता है। बालश्रम समस्या को निम्नांकित आधारों पर एक सामाजिक समस्या के रुप में सिद्ध किया गया है–

1. बालकों का शैक्षणिक, नैतिक, स्वर्णिम विकास संभव नहीं है और वे समाज के जिम्मेदार नागरिक नहीं बन सकते हैं।
2. कम मजदूरी में काम करने को तैयार हैं।
3. व्यक्तित्व का विघटन।
4. बचपन की सहजता एवं मनोरंजन के अभाव में कार्य की कठोरता के कारण विकृतियों का उत्पन्न होना।

बाल श्रमिकों का शोषण होता है। वे रोजगार की खतरनाक परिस्थितियों के जोखिम उठाते हैं

* प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष (समाजशास्त्र), शास.ई.गा.गृह विज्ञान महाविद्यालय, शहडोल (म.प्र.)

और कई घंटे काम करने के बदले अल्प वेतन दिया जाता है। ये बच्चे कभी नहीं जान पाते कि बचपन क्या होता है।

संविधान में यह प्रतिष्ठापित है कि:–

- चौदह वर्ष के कम आयु के किसी बालक को किसी फैक्ट्री में काम करने के लिये या किसी जोखिम वाले रोजगार में नियुक्त नहीं किया जायेगा। (धारा–24)
- बाल्यावस्था और किशोरावस्था की शोषण और नैतिक एवं भौतिक परित्यक्ता से बचाया जायेगा। (धारा– 39(एक)
- संविधान के प्रारंभ होने से 10 वर्षों की अवधि में सब बालकों की जब तक 14 वर्ष की आयु की समाप्त नहीं कर लेते, राज्य निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का प्रावधान करने का प्रयत्न करना। (धारा–45)

अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (आई.एल.ओ.) के अनुसार दुनिया भर में 21 करोड़ से अधिक बच्चों से मजदूरी करवायी जाती है, भारत में सबसे ज्यादा होता है बाल श्रम।

दुनिया में ऐसे 71 देश है जहाँ बच्चों से मजदूरी करवायी जाती है। अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की नई रिपोर्ट में 140 देशों का आंकलन किया गया है।[11] ''फाइंडिग्स आन द बर्स्ट फार्म्स आफ चाइल्ड लेबर'' नाम की इस रिपोर्ट में ऐसी 130 चीजों की सूची बनाई गई है जिन्हें बनाने के लिये बच्चों से काम करवाया जाता है। इस रिपोर्ट में बताया गया है कि ईंट तैयार करने से लेकर मोबाइल फोन के पुर्जे बनाने तक कई काम बच्चों से करवाये जाते हैं। आइ.एल.ओ. (International labour organization) का कहना है दुनिया में एक तिहाई देशों ने अभी तक यह सूची बनाई ही नहीं जिससे वे तय कर सकें कि कौन से काम बच्चों के लिये हानिकारक हो सकते हैं, कई देशों में काम करने की कोई न्यूनतम उम्र तय नहीं की गई है, और उन देशों में जहाँ बालश्रम के खिलाफ कानून है वहाँ उनका ठीक तरह से पालन नहीं किया जाता, विकासशील देशों में बालश्रमिकों की संख्या सबसे ज्यादा है अफ्रीका और एशिया के कई देशों में यह एक बढ़ी समस्या है।

सूची में बताए गए उत्पादों में से बीस ऐसे हैं जो भारत में बनाये जाते हैं यह सबसे ज्यादा इनमें बीड़ी, पटाखे, माचिस, ईंटें, कांच की चूड़ियां, ताले इत्र, फुटबाल शामिल हैं। साथ ही बच्चों से कालीन बनवाये जाते हैं, कढ़ाई करवायी जाती है और रेशम के कपड़े भी उन्हीं से बनवाये जाते हैं, ये काम बारीक होते हैं, इसलिये बच्चों के नन्हें हाथों की जरुरत पड़ती है। रेशम के तार खराब न हो जाएं इसलिये बच्चों से कपड़े बनवाये जाते हैं।

भारत के बाद बांग्लादेश और फिलीपीन्स के नाम, इस सूची में दिए गये हैं। बंग्लादेश में 14 उत्पादों का जिक्र किया गया है जो भारत में बनने वाले उत्पादों जैसे ही है, स्टील का फर्नीचर बनाना, चमड़े का काम शामिल है वहीं फिलीफीन्स में बच्चों से खेती का काम कराया जाता है, केला भुट्टा चावल, गन्ना और तम्बाखू इस सबकी खेती में बच्चो से मजदूरी करवायी जाती है साथ ही गहने और अश्लील फिल्मों के लिये इस्तेमाल होने वाले समान भी उनसे बनवाया जाता है।

उद्योग जहाँ बहुतायत में बाल श्रमिक कार्यरत है भारत में ऐसे उद्योग की सूची काफी लंबी है जहाँ बाल श्रमिक कार्यरत हैं। इनमें से प्रमुख उद्योग में लगे बाल श्रमिकों की संख्या निम्न सारिणी से स्पष्ट होगा–

निर्धन परिवारों के लाखों बच्चों को आर्थिक कारणों से बाध्य होकर बालश्रम में सम्मिलित होना पड़ता है। योजना आयोग का हाल मूल्यांकन 1991 मं कार्यरत बच्चों की जनसंख्या 1.7 करोड़ है। श्रम मंत्रालय भारत सरकार के प्रावधान में एक अनुसंधान समूह द्वारा किये गये सर्वेक्षण से ज्ञात हुआ है कि देश के 10.23 करोड़ अनुमानित परिवारों से 30:7 प्रतिशत परिवार कार्यरत थे।

इस प्रकार चाहे घरेलू नौकर, होटल, दर्जी, बूट पॉलिस, सफाई समान उठाई आदि में भी सहायक के रुप में कार्य करते हैं।

बचपन से काम करना यद्यपि समाजिक दृष्टि से अच्छा है लेकिन जिन परिस्थितियों में बालश्रम का प्रचलन है वह सामाजिक बुराई के साथ–साथ राष्ट्रीय हानि भी है क्योंकि परिवार के निर्वाह के लिये मजदूरी करने की आर्थिक आवश्यकता बच्चों को शिक्षा, खेलकूद व मनोरंजन के अवसर प्राप्त नहीं करने देती है, उनके शारीरिक विकास व उनके व्यक्तित्व के सामान्य विकास में बाधा उत्पन्न करती है तथा वयस्क जिम्मेदारी के लिये उसके तैयार होने में रुकावट पैदा करती है।

भारत की स्थिति को देखते हुये अमेरिका की श्रम मंत्री हिल्डा सोलिस ने इस बात पर ट्यूविट करते हुये कहा ''मेरा मानना है कि भगवान ने हम सबको कोई ना कोई खूवी दी है फर्ज बनता है कि हम हर बच्चे को उनके ''सपने'' पूरे करने दें।

बालश्रम के कारण के भी दो पक्ष होते हैं– आपूर्ति पक्ष या नियोजित या बालश्रम करने वाले पक्ष तथा मांग पक्ष या नियोजक या बालश्रम लेने बावले।

नियोजित पक्ष– निर्धनता, अशिक्षा आज्ञान्तर विशाल परिवार, परिवार में आय साधन का न होना, दबंगों द्वारा उत्पीड़न, परिवार का नकारात्मक रवैया, प्रशिक्षण, जीवन शैली, बालक के विचार एवं प्रवृत्ति, शैक्षणिक विफलता।

नियोजक पक्ष– उत्पादकों द्वारा ऋण, अग्रिम आदि सरलता से देना, ठेकेदारों द्वारा झूठे प्रलोभन देना, उत्पादन खर्च में कमी लाने हेतु, वयस्कों की उपेक्षा, बालकों का अधिक फुर्तीला होना, बालकों का असंगठित होना, बालकों से ज्यादा काम लेना आसान होता है। बाल मजदूरों को हटाना आसान होता है। श्रम विभाग की असक्षमता बालकों का शोषण करना आसान होता है।

बाल श्रमिकों की समस्याओं के निराकरण हेतु निम्न उपाय किये जाने चाहिए–

1. बालश्रम कानूनों का कड़ाई से पालन किया जाना चाहिए किसी भी संस्थानों में बाल–श्रमिक मिलता है तो अत्यधिक अर्थदण्ड के साथ–साथ रजिस्ट्रेशन रद्द करना चाहिए।

2. समाज के लोगों में जागरुकता लाने की आवश्यकता है जैसे बालश्रम के विरोध, बाल श्रमिक के विरोध में समाज को हानिया आदि की जानकारी देना। किसी नन्हे बच्चे का वचपन न छीना जाए।

3. बेरोजगारी की समस्या को कम करने के लिये स्वरोजगार के निःशुल्क प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए ताकि आर्थिक बदहाली से छुटकारा मिल जाने से बाल श्रमिकों की संख्या में कमी आयेगी ही।

4. बालश्रम पर रोक के लिये परिवार के एक सदस्य को रोजगार देना चाहिए ताकि बच्चे मजदूरी करने को विवश न हो। यूं तो शासन द्वारा विभिन्न प्रकार की योजनाओं के माध्यम से सहयोग दिया ही जा रहा है। बस आवश्यकता है इन योजनाओं का लाभ प्राप्त करने के लिये जागरुक रहना।

5. बाल श्रम उन्मूलन के लिये राष्ट्रीय बाल श्रम परियोजना कार्यक्रम के तहत 1.50 लाख बच्चों को शामिल करने हेतु 76 बाल श्रम परियोजनायें स्वीकृत की गई है करीब 1.05 लाख बच्चों को विशेष स्कूलों में नामांकित किया जा चुका है। श्रम मंत्रालय ने योजना आयोग से वर्तमान में 250 जिलों की बजाय देश की सभी 600 जिलों को राष्ट्रीय बाल श्रम परियोजनाओं में शामिल करने के

लिये 1500 करोड़ रुपये देने को कहा है, 57 खतरनाक उद्योगों, ढाबा, घरों में काम करने वाले बच्चों (9–14 साल उम्र के) को इस परियोजना की तहत लाया जायेगा। सर्वशिक्षा अभियान जैसी सरकारी योजनाएं भी लागू की जा रही हैं। ताकि बच्चे श्रमिक होने से बच सकें।

संदर्भ–

- बालश्रम–विकिपिडिया– 27.17.295
- बालश्रम एक गंभीर समस्या– ए.के. जैन निशा जैन– पेज नं– 619, Research Journal of arts Management of & Social Science
- बालश्रम दुर्व्यव्यहार और बालश्रम –पेज नं– 229
- राम आहूजा, सामाजिक समस्यायें द्वितीय संस्करण
- बाल श्रम सबसे ज्यादा भारत में नेट से–
- योजना जून 1995 : 45
- पंत डॉ0 जे.सी. व्यष्टि अर्थशास्त्र साहित्य पब्लिकेशन 2010।
- यूनीसेफ, अम्सफोर्ड, यूनिर्वसिटी प्रेस– 1989
- बल श्रम– विकासपीडिया– 02/17/2015 नेट से
- उपाध्याय रमेश, वर्तमान सामाजिक समस्यायें, रितु पब्लिकेशन

SHODH CHETNA – YEAR-2 (JAN. TO MARCH, 2016) VOL. 1
ISSN : 2350-0441

बदलते मानव मूल्य एवं पर्यावरण

❐ डा. रमाकान्त त्रिपाठी

शोध सारांश

वर्तमान युग औद्योगिक विकास का युग है। विकास की अंधी दौड़ में संसार का प्रत्येक व्यक्ति सरपट भागा चला जा रहा है। उसे न तो मानवीय मूल्यों के ह्रास का कोई भान हो रहा है और न ही प्रकृति के बिगड़ते सन्तुलन से उत्पन्न पर्यावरण प्रदूषण का। यद्यपि पर्यावरण प्रदूषण को परिभाषित करना एवं उसका वर्गीकरण करना एक कठिन कार्य है, फिर भी विचारकों, चिंतकों, विद्वानों द्वारा बताये गये सिद्धांत के अनुसार हम यह मानते हैं कि पृथ्वी, जल, वायु, आकाशादि सभी तत्वों के दूषित होने से पर्यावरण भी दूषित हो जाता है। आज विश्व में पर्यावरण के बदलते स्वरूप के लिये केवल और केवल मानव समुदाय ही जिम्मेवार है। आज का मानव सुविधाभोगी होने के साथ–साथ परम्पराओं की अवहेलना का आदी बन चुका है। अधाधुंध खनिज दोहन एवं बढ़ते रसायनिक प्रयोगों से जहाँ एक ओर भूमि प्रदूषण बढ़ रहा है वहीं दूसरी ओर बढ़ते औद्योगिक एवं मानव अपशिष्ट से नदियों एवं जलाशयों का अमृत सदृश जल धीरे–धीरे विष बनता जा रहा है। वनों की अधाधुंध कटाई से जहाँ एक ओर पर्यावरण के महत्वपूर्ण अंग जंगली जानवरों की जातियां ही विलुप्त होती जा रही है वहीं दूसरी ओर मानव जीवन के सबसे महत्वपूर्ण शुद्ध हवा भी दिनों–दिन कम होती जा रही है। कुल मिलाकर यह माना जा सकता है कि आज पर्यावरण का बिगड़ता स्वरूप मनुष्य की कुप्रवृत्तियों का ही परिणाम है। यदि हम समय रहते न चेते तो प्रकृति की विकृति के प्रभाव से मानव जीवन का अस्तित्व ही दांव पर लग जायेगा।

वर्तमान युग औद्योगिक विकास का युग है। विकास की अंधी दौड़ में संसार का प्रत्येक व्यक्ति सरपट भागा चला जा रहा है। उसे न तो मानवीय मूल्यों के ह्रास का कोई भान है और न ही प्रकृति के बिगड़ते सन्तुलन से उत्पन्न पर्यावरण प्रदूषण का। पर्यावरण शब्द जितना व्यापक है उतने ही व्यापक परिवेश में पर्यावरण प्रदूषण आज की ज्वलंत वैश्विक समस्या बन चुका है। पर्यावरण का आशय है। "परितः आवरणमिति पर्यावरणम्" अर्थात् सभी वस्तुओं का आवृत होना ही पर्यावरण है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि "परितः आव्रियते ब्रह्माण्ड येन तत्पर्यावरणम्"। जिससे समस्त ब्रह्माण्ड प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से प्रभावित होता है, वहीं पर्यावरण है। स्थावरजंगात्मक–जगत के सभी प्राणियों का जीवन जिससे सर्वत्र सार्वकालिक रूप से प्रभावित होता है वही पर्यावरण है। पर्यावरण शब्द दो शब्दों के सम्मेलन से बनता है। "परि+आवरण" परि शब्द का अर्थ चारों तरफ एवं आवरण शब्द का अर्थ आच्छादन

* अतिथि विद्वान (संस्कृत-साहित्य), शास. वेंकट संस्कृत महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)-486001, मो. 9926823459, ई-मेल : tramakant1974@gmail.com

है। अर्थात् जो चारों तरफ से ब्रह्माण्ड को आच्छादित करता है,वही पर्यावरण है। ब्रह्माण्ड पृथ्वी अन्तरिक्ष की सभी प्राकृतिक प्रकृतियों जड एवं चेतनात्मक सभी सम्पदाओं का वाचक है। इसके अन्तर्गत जीव, मानव, पशु–पक्षी, कीट–पंतगादि प्रकृति में पाये जाने वाले समस्त जीव समाविष्ट हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि ईश्वरीय सृष्टि ही पर्यावरण है। नित्य शाश्वत, अपौरूषेय प्रकृति ही पर्यावरण है। ज्ञानेन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, अहंकार एवं प्रकृति सभी पर्यावरण में समाहित है। प्रकृति में जो कुछ भी परिलक्षित होता है भूमि, जल, वायु, अग्नि, पादप तथा प्राणी सभी समवेत रूप से पर्यावरण में शामिल है।

पर्यावरण शब्द प्रकृति की समग्रता का वाचक है। प्राचीन भारतीय साहित्य में पर्यावरण शब्द का प्रयोग भले ही उपलब्ध न होता हो परन्तु पर्यावरण की सामग्री प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होती है। वेद, उपनिषद्, रामायण महापुराणादि में पर्यावरण संरक्षण के अनेक अवसर परिलक्षित होते हैं। पुराणों के पर्यालोचन से पर्यावरण सुरक्षा के अनेक प्रसंग उपलब्ध होते हैं। जल, एवं वृक्षों में देवत्व की स्थापना इसी प्रकार का महत्वपूर्ण प्रयास है। पौराणिक काल में वनों में ऋषियों के निवास स्थान, गुरूकुलों की स्थापना आदि के आधार पर हम कह सकते हैं कि उस युग हमारा पर्यावरण पूरी तरह समृद्ध था तथा वन्य प्रदूषण जैसी कोई चीज अस्तित्व में ही नहीं थी। तीर्थों के पवित्र वर्णन से नदियों के जल भी प्रदूषण रहित थे। राक्षसी प्रवृत्ति से सामाजिक प्रदूषण के बीज उपलब्ध होते हैं। किन्तु उनका सामाधान भी दैवी अवधारणा से हो जाता था।

पर्यावरण के प्रदूषण को परिभाषित करना एवं उसका वर्गीकरण करना एक कठिन कार्य है। फिर भी विचारकों, चिंतकों विद्वानों द्वारा बताये गये सिद्धांत के अनुसार हम यह मानते हैं कि पृथ्वी, जल, वायु, आकाशादि सभी तत्वों के दूषित होने से पर्यावरण भी दूषित हो जाता है। इसे ही पर्यावरण प्रदूषण कहा जाता है। हम पर्यावरण प्रदूषण को मुख्यतः निम्न भागों में बाँट सकते हैं–

(1) भूमि प्रदूषण (2) जल प्रदूषण
(3) वायु प्रदूषण (4) ध्वनि प्रदूषण

आधुनिक युग में पर्यावरण प्रदूषण विश्व की विकराल समस्या है। सभी वैज्ञानिक, पर्यावरणवेत्ता, समाज सुधारक एवं राजनेता इस समस्या के समाधान के लिए चिन्तित हैं। पर्यावरण प्रदूषण से विश्व में सभी प्राणियों का जीवन संकटापन्न हो गया है। विश्व की समस्त मानव जाति नाना प्रकार के असाध्य रोगों से आक्रान्त हो रही है। जनसंख्या वृद्धि के कारण उत्पादन बढ़ाने, संख्यातीत उद्योगों की स्थापना एवं वैज्ञानिक आविष्कार ही पर्यावरण प्रदूषण के प्रमुख कारक है। प्रकृति का अनियन्त्रित दोहन एवं वनों का समूलोन्मूलन भी पर्यावरण प्रदूषण का अपर कारण है। पर्यावरण प्रदूषण के कारण शुद्ध पेयजल, शुद्ध वायु, उपलब्ध नहीं है। जिससे लोग रोगी होते जा रहे हैं। प्रदूषण के कारण उत्पन्न हो रहे नित नये रोगों की चिकित्सा भी नहीं हो पाती है। आज के परिवेश में समस्त वायुमण्डल ही प्रदूषित है। नदियों का जल प्रदूषित है। वायु प्रदूषित है। अन्तरिक्ष प्रदूषित है और अधिक क्या कहा जाय आज सूर्य के प्रकाश के भी प्रदूषित होने की बातें की जा रही है। आज पर्यावरण प्रदूषण विश्व की एक विकराल असमाधान कारक समस्या का रूप ले चुका है। इसके कारण मनुष्य का सामाजिक ताना–बाना ही प्रभावित नहीं हो रहा है। बल्कि इसके असर से सड़कें तक खराब होने लगी हैं। हमारे मध्यप्रदेश की सरकार ने तो इसे अधिकृत रूप से स्वीकार भी कर लिया है। प्रदेश की चौदहवीं विधानसभा में विधायक विश्वास सारंग के एक प्रश्न के उत्तर में प्रदेश के तत्कालीन पर्यावरण मंत्री श्री जयंत मलैया ने इस

बात को स्वीकार किया था कि "भोपाल शहर में धूल की वजह से वायु गुणवत्ता प्रभावित हो रही है। शहर की अधिकांश सड़कें उखड़ी हुई है। जिससे कि हवा में धूल मिल रही है। और धूल कणों की मात्रा मानकों से भी कहीं अधिक हो गई है। सेड ब्लास्टिंग करने वाली इकाईयों से धूल के कण हवा में मिल रहे हैं। बीयर बनाने वाली इकाई एवं लघु क्षेत्र के उद्योगों में छोटे बायलर एवं चिमनी से लगातार निकलने वाला धुआँ भी बढ़ते वायु प्रदूषण का कारण है।"

धरती के बढ़ते प्राकृतिक असंतुलन के लिए सबसे अधिक उत्तरदायी हमारी बदलती सोच है। वैदिक एवं पौराणिककाल में प्रकृति सन्तुलन अपने उच्चस्तर पर था प्राचीन पर्यावरण विज्ञानियों में महर्षि व्यास का सर्वोच्च स्थान है। महर्षि व्यास ने पर्यावरण को प्रकृति नाम से सम्बोधित किया है तथा इसके आठ भेद बताये हैं।

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनोबुद्धि रेव च।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा।।

(भूमि जल, वायु, अग्नि, आकाश, मन, बुद्धि एवं अहंकार) वर्तमान परिवेश में प्राचीनकाल की अपेक्षा पर्यावरण का स्वरूप अत्यन्त ही विकृत हो गया है। इसका प्रमुख कारण औद्योगिक क्रान्ति है। परन्तु पर्यावरण के विकृत स्वरूप के लिए केवल औद्योगिक क्रान्ति ही एकमात्र कारण नहीं है। बल्कि आज के समय में मानव मूल्यों का पतन इतनी तेजी से हुआ है कि मनुष्य की निगाह में संसार की प्रत्येक वस्तु एक विक्रय उत्पाद बन चुकी है। क्या पेड़, क्या पौधे, जल–जंगल–जमीन–जानवर–पर्वत–नदी–तालाब–झरने–पशु–पक्षी सब चीजों की बोलियाँ लग रही हैं। पूरा विश्व एक बाजार बना हुआ है और सम्पूर्ण मानव जाति व्यापारी बनकर बोली बोलने में मशगूल है। पञ्च महाभूतों में पृथ्वी प्रत्यक्ष देवता है। ऋग्वेद में पृथ्वी को माता एवं आकाश को पिता कहा गया है। परन्तु हम आज पृथ्वी की उपेक्षा कर रहे हैं। जिससे पृथ्वी माता हमारे लिए घातक हो रही है। भूमि प्रदूषण से जल प्रदूषित होता है। पृथ्वी एवं जल का अत्यन्त ही घनिष्ट सम्बन्ध है। जल एवं भूमि प्रदूषण से अन्न प्रभृति सभी खाद्य पदार्थ विषाक्त हो जाते हैं। वर्तमान समय में मानव अपने क्षुद्र स्वार्थ की पूर्ति के लिए पृथ्वी का दोहन कर रहा है। जिससे भूमि के तत्वों में कमी आ रही है तथा उसकी उर्वरक शक्ति में अनुदिन ह्रास हो रहा है। भूमि के गुणों की कमी के कारण भूमि में निवास करने वाले सूक्ष्म जीव जन्तुओं में भी कमी आ रही है। औद्योगिक गतिविधियों के अपशिष्ट पदार्थ मिट्टी में मिलाने से, जहाँ जनसंख्या का घनत्व अधिक है वहाँ के शौचालयों से, निःसृत जल प्रवृद्ध मिट्टी में मिलने से भूमि प्रदूषित हो रही है। भूमि प्रदूषण से जन–जीवन संकटापन्न हो रहा है। जल मानव का जीवन है नदियों की महिमा पुराणों में बहुशः गाई गई है। जिस देश में नदियाँ है। वह हमेशा हरा–भरा एवं समृद्ध रहता है। नदियाँ हमें जीवन प्रदान करती हैं। फिर भी आज हम मातृस्वरूपा नदियों को भी प्रदूषित कर रहे है। यहाँ तक गंगा नदी को मोक्षदायिनी माना जाता है। इस संदर्भ में यह धारणा रही थी कि उसके नामोच्चारण मात्र से पाप दूर हो जाते है :–

गंगा गंगेति यो ब्रूयात योजनानां शतैरपि।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोक स गच्छति।।

पवित्र पावन सलिला गंगा भी आज घोर प्रदूषण का शिकार हो चुकी है। एक शोध निष्कर्ष के अनुसार गंगा तट पर एक वर्ष में लगभग 40,000 (चालीस हजार) अंतिम संस्कार होते हैं तथा 15,000 (पन्द्रह हजार) टन राख हर वर्ष गंगा नदी में प्रवाहित की जाती है। इसके अतिरिक्त, उछिष्ट पूजन सामग्री, अस्थियाँ व अधजले शवों के लगातार विसर्जन से

भी गंगा नदी का प्रदूषण बढ़ता ही जा रहा है। इसके साथ ही गंगा के दोनों ओर लगातर शहरीकरण बढ़ता जा रहा है। बड़े शहरों की गंदगी के अलावा नालों के माध्यम से भी गंगा नदीं में गंदगी का प्रवेश होता है। प्रदूषण मण्डल के अनुसार ऐसे 138 नालें हैं जो गंगा में 6087 एम0एल0डी0 गंदा पानी छोड़ते हैं। हमारे देश के सभी प्राचीन ग्रन्थों में नदियों की महिमा गाई गई है। गंगा को देवनदी की उपाधि से विभूषित किया गया है तथा गंगाजल को अमृत की संज्ञा दी गई है। किन्तु औद्योगिक अपसृष्ट पदार्थों के प्रवाहन से आज गंगा जैसी पवित्र देव नदी भी घोर प्रदूषण का शिकार बन गई है। प्राचीनकाल के ग्रन्थों में कहा गया है कि जिस देश में नदियाँ है वह हमेशा हरा–भरा एवं समृद्ध रहता है।

जल प्रदूषण की ही तरह वर्तमान समय में वायु प्रदूषण से भी पर्यावरण को काफी क्षति पहुँच रही है। पर्यावरण में वायु का महत्व सर्वाधिक है। चराचर जगत् के सभी प्राणी वायु से जीवन धारण करते है। यदि शरीर से वायु निकल जाय तो शरीर शव हो जाता है। प्राण वायु ही शरीर को संचालित एवं चेतना शक्ति प्रदान करता है। जल के समान वायु भी पर्यावरण का आवश्यक तत्व हैं। वायु समस्त लोकों में विद्यमान है। वायु का स्वरूप दिखाई न देने पर भी यह सर्वाधिक सुरम्य है। विश्व के सबसे प्राचीन साहित्य ऋग्वेद के मरूत् सूक्त में वायु की महिमा का वर्णन किया गया है। पवनदेव के नाम से वायु पुराण की रचना महर्षि व्यास के द्वारा की गई है जो मान्य अठारह पुराणों में शामिल है। भूमण्डल में वायु के नाम से एक दिशा का नामकरण वायव्य कोण किया गया है। वर्तमान समय में आधुनिक उद्योगों में हो रही संख्यातीत वृद्धि एवं उनसे निकलने वाली विषैली गैसों से हमारा वायुमंडल भी प्रदूषित हो रहा है। 30 वर्ष पूर्व भोपाल के यूनियन कार्बाइड कारखाने में रिसी जहरीली गैस से मरने वाले एवं प्रभावित होने वाले हजारों लोग इसके प्रत्यक्ष प्रमाण है। प्रत्येक मानव 24 घन्टे में 21600 बार श्वसन क्रिया करता है। परन्तु औद्योगिक संस्थानों के सन्निकट रहने वाले प्राणी अहर्निश दोषयुक्त वायु का सेवन करने के लिए विवश है। प्रदूषित वायु के शरीर में प्रवेश करने से अनेकों प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं। मनुष्य के सुविधाभोगी होने से दिन प्रतिदिन गाड़ियो की संख्या में वृद्धि होती जा रही है। एक यान प्रतिदिन 1135 व्यक्तियों के श्वास–वायु को प्रदूषित करता है। विश्व में 60 प्रतिशत वायु प्रदूषण मोटरगाडियों से हो रहा है। बड़े महानगरों दिल्ली, मुम्बई, कोलकाता, चेन्नई आदि में ही नहीं देश के प्रत्येक छोटे–बड़े शहरों और कस्बों और यहाँ तक कि छोटे–छोटे गांवों में भी मोटरगाड़ियों की संख्या अधिकाधिक वृद्धि हो रही है। जिसके कारण दिनों दिन वायु प्रदूषण का प्रतिशत बढ़ता ही जा रहा है।

भूमि जल एवं वायु की ही तरह ध्वनि भी पर्यावरण का एक महत्वूर्ण कारक है। पंच भौतिक शरीर में आकाश तत्व ध्वनि का आधार है। ध्वनि का साकार रूप अक्षर ब्रह्मं है। अकार को ब्रह्म, उकार को विष्णु एवं मकार को रुद्र कहा गया है। ये तीनों अक्षर गुणमय कहे गये हैं। ध्वनि से ही व्याकरण शास्त्र का विस्तार हुआ है। भगवान शंकर के नृत्य के पश्चात् डमरू निनाद से 14 व्याकरण सूत्र निकले। जिनसे पाणिनि व्यारकण की रचना हुई। कुरूक्षेत्र पत्रिका में प्रकाशित वैज्ञानिक आकड़ों के अनुसार प्रतिमानव श्रवण की क्षमता सामान्य तौर पर दिन में 55 डेसीबल एवं रात में 45 डेसीबल की मात्रा निर्धारित है। परन्तु इस समय महानगरों ही नहीं छोटे–छोटे शहरों में भी 60 से 90 डेसीबल की आवाज अर्हनिश विद्यमान रहती है। अधिक मात्रा की ध्वनि मनुष्य को बहरा बना रही है।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि आज विश्व में पर्यावरण के बदलते स्वरूप के लिये केवल और केवल मानव समुदाय ही जिम्मेवार है आज का मानव सुविधाभोगी होने के साथ–साथ परम्पराओं की अवहेलना का आदी बन चुका है। अधाधुंध खनिज दोहन एवं बढ़ते रसायनिक प्रयोगों से जहाँ एक ओर भूमि प्रदूषण बढ़ रहा है वहीं दूसरी ओर बढ़ते औद्योगिक एवं मानव अपशिष्ट से नदियों एवं जलाशयों का अमृत सदृश जल धीरे–धीरे विष बनता जा रहा है। वनों की अधाधुंध कटाई से जहाँ एक ओर पर्यावरण के महत्वपूर्ण अंग जंगली जानवरों की जातियाँ ही विलुप्त होती जा रही हैं वहीं दूसरी ओर मानव जीवन के सबसे महत्वपूर्ण शुद्ध हवा भी दिनों–दिन कम होती जा रही है। हमारे देश में मानव मूल्यों का पतन इतनी तेजी से हुआ है कि प्राचीनकाल में हम देव पूजा के लिए फूल तोड़ते समय पुष्प वृक्ष से अपनी विवशता बताते हुये क्षमा मांगते थे।

मा नु शोकं कुरूश्व त्वं स्थानत्यांग च मा कुरू।
देवतापूजनार्थाय प्रार्थयामि वनस्पते।।

वहीं आज हम बड़े–बड़े पेड़ों पर कुल्हाड़ी चलाने के पहले एक पल भी नहीं सोचते। तथाकथित विकास के युग में कंक्रीट के जंगल भले ही बढ़ते जा रहे हो परन्तु वनस्पतियों से युक्त जंगल दिनों–दिन कम होते जा रहे हैं। हम अपनी सुविधा भोगी प्रवृत्ति के कारण ही प्लास्टिक जैसी घातक वस्तु को दिनों–दिन बढ़ावा दे रहे हैं जबकि अनेक शोध निष्कर्षों से यह सिद्ध हो चुका है कि प्लास्टिक एक धीमा जहर है। तथाकथित विकास के नाम पर हम एक–एक कर अपनी पुरातन परम्पराओं का परित्याग कर रहे हैं। आजकल यज्ञ–यागादि का प्रचलन बिल्कुल ही समाप्त होता जा रहा है जबकि यह सब जानते हैं कि यज्ञ के धूम से बादल का निर्माण होता है और बादलों द्वारा वर्षा की जाती है जिससे अन्न उत्पन्न होता है–

अन्नाद् भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्न संभवः।
यज्ञाद् भवति पर्जन्यः यज्ञः कर्म समुद्भवः।।अ

इतना ही नहीं अनेक शोध कार्यों से यह सिद्ध हो चुका है कि यज्ञ के धूम से ओजोन परत के छिद्र भरते हैं। परन्तु यज्ञ–यागादि के आयोजन की जिम्मेवारी केवल कुछ लोगों तक ही सीमित मान ली गई है। कुल मिलाकर यह माना जा सकता है कि आज पर्यावरण का बिगड़ता स्वरूप मनुष्य की कुप्रवृत्तियों का ही परिणाम है। यदि हम समय रहते न चेते तो प्रकृति की विकृति के प्रभाव से मानव जीवन का अस्तित्व ही दांव पर लग जायेगा।

1. शिव खेड़ा, जीत आपकी, मैकमिलन पब्लिकेशन, नई दिल्ली 2004
   (i) दैनिक जागरण रीवा दिनांक 23 नवम्बर 2011, (पृष्ठ क्रमांक 08)
   (ii) श्रीमद्भगवद्गीता अ0 7/4 प्रकाशक–गीता प्रेस गोरखपुर
   (iii) स्कन्दपुराण–ब्रहा0खं031–7–प्रकाशक गीता प्रेस, गोरखपुर
   (iv) नित्यकर्म पूजा प्रकाश–(पृष्ठ क्रमांक 108) प्रकाशक–गीता प्रेस, गोरखपुर

अ श्रीमद्भगवतगीता–अ0–3/4) प्रकाशक–गीता प्रेस, गोरखपुर

सहायक–ग्रन्थ सूची–

1. अग्नि पुराण, महर्षि वेदव्यास (सम्पादक–तारणीश झा) हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग।
2. पर्यावरण एवं नदी प्रदूषण, डॉ0 प्रमोद कुमार अग्रवाल, आशीष पब्लिसिंग हाऊस नई दिल्ली।
3. कुरूक्षेत्र पत्रिका (सम्पादक बल्देव सिंह मदान) भारतीय प्रेस जौनपुर उत्तरप्रेदश
4. "पर्यावरण एवं पर्यानुकूलन तकनीक" कार्यशाला–सेमीनार कार्यवाही पत्रिका, शासकीय कमला नेहरू महिला महाविद्यालय दमोह (म0प्र0)
5. शोध प्रबंध, अग्निपुराण का पर्यावरणीय अध्ययन (रमाकान्त त्रिपाठी) अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा।

SHODH CHETNA – YEAR-2 (JAN. TO MARCH, 2016) VOL. 1
ISSN : 2350-0441

उच्च शिक्षा रीवा संभाग के शासकीय महाविद्यालयों में ग्रंथपालों की स्थिति

❒ डा. एस.पी. सिंह*
❒ राजकुमार कुशवाहा**

शोध सारांश

भारत में पुस्तकालय शिक्षा ने 100 वर्ष पूरे कर लिये हैं। इन वर्षों में पुस्तकालय के व्यवस्था और प्रक्रिया में निरन्तर द्रुति गति से विकास व क्रान्तिकारी परिवर्तन हो रहा है। ग्रंथालय एवं ग्रंथपाल किसी भी शैक्षणिक संस्थान के हृदय माने जाते हैं। शासकीय महाविद्यालयों में शिक्षण कार्य एवं शोध–कार्य को सुचारू एवं सशक्त बनाने के लिए पुस्तकालय एवं सूचना विज्ञान विषय में मास्टर अथवा उच्च उपाधि प्राप्त ग्रंथपालों की नियुक्ति होना आवश्यक है। मध्यप्रदेश शासन के शासकीय महाविद्यालयों के पुस्तकालयों हेतु यह व्यवस्था बहुत पुरानी हो चुकी है। जिसमें समय के साथ एवं पुस्तकालय सेवाओं को प्रभावी बनाने हेतु अद्यतन करना नितांत आवश्यक है।

प्रस्तावना :–

मध्यप्रदेश उच्च शिक्षा विभाग द्वारा शैक्षणिक महाविद्यालयों के पुस्तकालयों के व्यवस्थापन एवं पुस्तकालय सेवाओं को प्रभावी बनाने के लिए प्रदेश के अधिकांश पुस्तकालयों में ग्रंथपाल के पद स्वीकृत किए गए हैं। कुछ महाविद्यालयों में आज भी ग्रंथपाल के पद स्वीकृत नहीं किए गए हैं। शासकीय महाविद्यालय के पुस्तकालयों के लिए ग्रंथपालों को लेकर अन्य पुस्तकालय कर्मचारियों की नियुक्ति के लिए बनाया गया फार्मूला बहुत पुराना हो चुका है। वैश्वीकरण के प्रभाव से सूचना सामग्री में गुणोत्तर वृद्वि हुई हैं। सूचना कार्यो के लिए आधुनिक प्रौद्यौगिकी ने पुस्तकालयों में सूचना सामग्री का व्यवस्थापन एवं पुस्तकालय सेवाएँ प्रदान करना एक चुनौती पूर्ण कार्य हो गया हैं। इस चुनौती से निपटने के लिए निश्चित तौर पर महाविद्यालय के पुस्तकालयों को आधुनिक प्रौद्यौगिकी के अनुरूप परिवर्तित करना आवश्यक हो गया हैं।

मध्यप्रदेश उच्च शिक्षा के महाविद्यालयों में पद (संवर्गवार)

संवर्ग	स्वीकृत पद	कार्यरत	रिक्त पद
ग्रन्थपाल	385	144	241
सहायक ग्रंथपाल	54	31	23

* सहायक प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष (पुस्तकालय एवं सूचना विज्ञान), शास. टी. आर. एस. महाविद्यालय, रीवा म.प्र.
** शोध छात्र, अवधेश प्रताप सिंह वि. वि. रीवा म.प्र., E-mail: rk_rajkumarlib@rediffmail.com

उच्च शिक्षा रीवा संभाग के शासकीय महाविद्यालयों में ग्रंथपाल :–

रीवा संभाग के शासकीय महाविद्यालयों में ग्रंथपालों की स्थिति का अध्ययन किया गया है। यह उच्च शिक्षा रीवा संभाग रीवा के अन्तर्गत आने वाले 61 शासकीय महाविद्यालयों में ग्रंथपालों के बारे में इन्हें निम्नानुसार तालिका एवं चार्ट में दिखाया गया है।

- इनके अनुसार रीवा जिले के 15 शासकीय महाविद्यालयों में से 14 शासकीय महाविद्यालयों में ग्रंथपालों के पद स्वीकृत हैं। इनमें से मात्र 05 शासकीय महाविद्यालयों में पद भरे गए हैं और 10 शासकीय महाविद्यालयों के ग्रंथपालों के पद रिक्त हैं।
- सीधी जिले के 09 महाविद्यालयों में से 08 शासकीय महाविद्यालयों में मध्यप्रदेश शासन द्वारा ग्रंथपालों के पद स्वीकृत किए गए हैं, इनमें से 02 पद भरे हैं और 06 पद रिक्त हैं।
- शहडोल जिले के 09 महाविद्यालयों में 08 शासकीय महाविद्यालयों में मध्यप्रदेश शासन ने ग्रंथपालों के पद स्वीकृत किए गए हैं। इनमें से 03 पद भरे हैं और 05 पद रिक्त हैं।
- उमरिया जिले के 04 शासकीय महाविद्यालयों में से 04 शासकीय महाविद्यालयों में मध्यप्रदेश शासन द्वारा ग्रंथपालों के पद स्वीकृत किए गए हैं। उनमें से केवल 01 पद भरा गया है और 03 पद रिक्त हैं।
- इसी प्रकार अनूपपुर जिले के 5 शासकीय महाविद्यालयों में स्वीकृत 5 पदों में से मात्र 01 पद भरा गया है, और 04 पद रिक्त हैं।
- सतना जिले के 13 महाविद्यालयों में स्वीकृत 12 पदों में से मात्र 01 पद भरे गए हैं और 11 पद रिक्त हैं।
- सिंगरौली जिले के 08 महाविद्यालयों में स्वीकृत 08 पदों में से एक भी पद पर ग्रंथपाल अभी तक कार्यरत नहीं हैं।

तालिका क्र.– 1 रीवा संभाग के शासकीय महाविद्यालयों में ग्रंथपालों की स्थिति (जिलेवार)

सम्मिलित जिले	शासकीय महाविद्यालयों की संख्या	पदों की स्थिति		
		स्वीकृत	कार्यरत	रिक्त
रीवा	15	14	05	09
सीधी	9	08	02	06
सतना	11	10	01	09
सिगरौली	8	08	00	08
शहडोल	9	09	02	07
अनूपपुर	5	5	1	04
उमरिया	4	04	01	03
योग	61	58	12	46
प्रतिशत	100	95.08	20.68	79.31

चार्ट क्र.– 1 रीवा संभाग के शासकीय महाविद्यालयों मे ग्रंथपालों की स्थिति (जिलेवार)

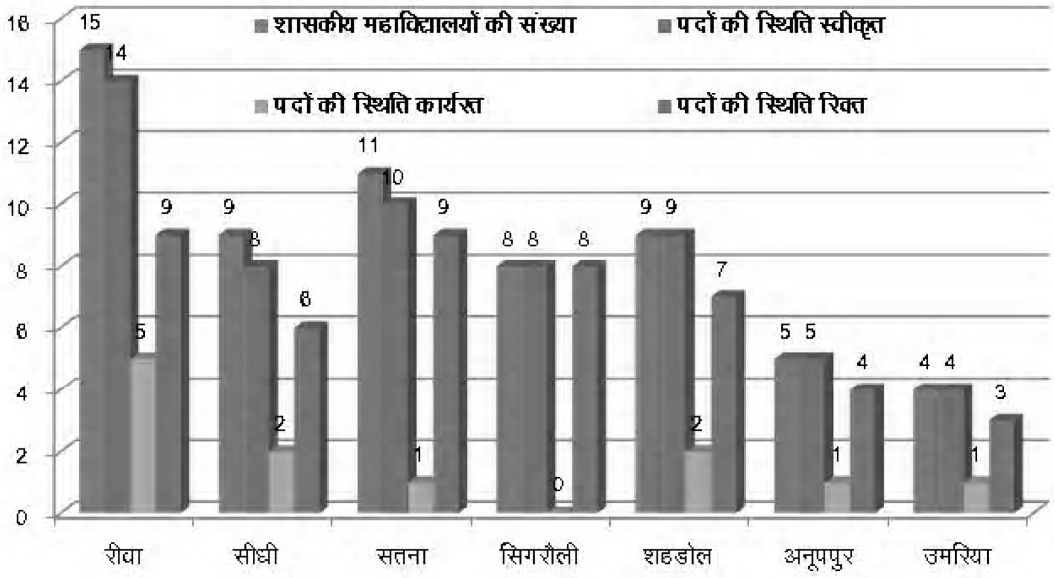

उपर्युक्त तालिका व चार्ट में दिए गए आँकड़ों से ज्ञात होता है कि रीवा संभाग के शासकीय महाविद्यालयों में ग्रन्थपालों के कुल 95.08 प्रतिशत पद स्वीकृत हैं। उनमें से मात्र 20.68 प्रतिशत पदों पर ग्रन्थपाल कार्यरत हैं। अभी भी 79.31 प्रतिशत पद रिक्त है, 4.92 प्रतिशत महाविद्यालयों में ग्रथपालों के पद शासन ने अभी तक अपनी स्वीकृत ही नहीं दी है। उपर्युक्त आकड़े शासकीय महाविद्यालयों में ग्रंथालय सेवाओं के प्रति मध्यप्रदेश शासन की नीतियों में कमी को प्रदर्शित करता है।

● रीवा संभाग के शासकीय महाविद्यालय में नियमित ग्रंथपालों की स्थिति

रीवा संभाग महाविद्यालयों में पुस्तकालयों के नियमित ग्रंथपालों के पद स्वीकृत हैं और कार्यरत हैं। रीवा संभाग के शासकीय महाविद्यालयों में पुस्तकालयाध्यक्ष की कमी को दर्शाया गया है। शासकीय महाविद्यालयों में पुस्तकालयाध्यक्षों के पद रिक्त हैं। कर्मचारियों की कमी को भी दर्शाया गया हैः–

तालिका क्र.– 2 रीवा संभाग अन्तर्गत महाविद्यालय में नियमित ग्रंथपाल की स्थिति (जिलेवार)

क्र.	जिलों की संख्या	शासकीय महाविद्यालय की संख्या	ग्रंथपाल	
			नियमित	अतिथि विद्वान
1	रीवा	15	5	10
2	सीधी	9	2	7
3	सतना	14	1	12
4	सिंगरौली	8	0	8
5	शहडोल	8	2	6
6	अनूपपुर	3	1	2
7	उमरिया	4	1	3
योग		61	12	48

चार्ट क्र.– 2 रीवा संभाग अन्तर्गत महाविद्यालय में नियमित ग्रंथपाल की स्थिति (जिलेवार)

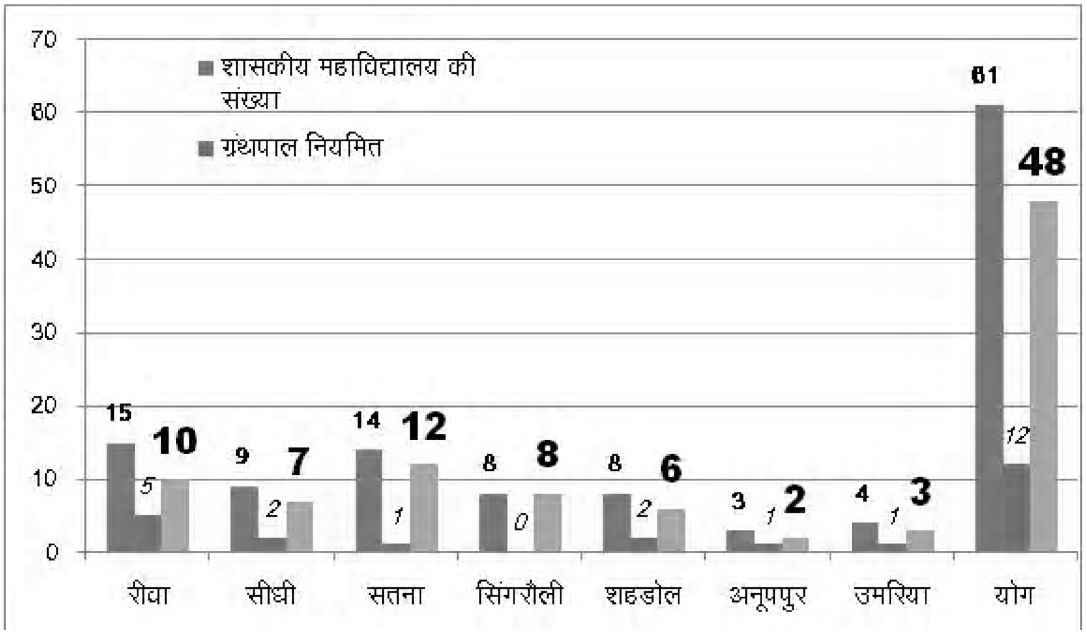

उपर्युक्त सारणी के अर्न्तगत शासकीय महाविद्यालय मध्यप्रदेश शासन उच्च शिक्षा विभाग द्वारा रीवा संभाग में ग्रंथपालों के स्वीकृत पद 60 है। शासकीय महाविद्यालयों में नियमित ग्रंथपाल मात्र बारह हैं। शेष 37 जगहों पर अतिथि विद्वान कार्यरत हैं। शेष को खाली रखा गया हैं। वहीं रीवा संभाग के अन्तर्गत शासकीय महाविद्यालय रामनगर में ग्रंथपाल का पद स्वीकृत नहीं है।

अतः मध्यप्रदेश के रीवा संभाग के शासकीय महाविद्यालयों में स्थित पुस्तकालय सूचना एवं ज्ञान के प्रमुख स्त्रोत हैं। प्राचीनकाल से ही अध्ययनशील संस्थाओं की गुणवत्ता के मानक उन संस्थाओं में उपलब्ध पुस्तकालय ही हैं। पुस्तकालयों में सतत् एवं नवोन्मेषी ज्ञान संदर्भों एवं ज्ञान संसाधनों का संग्रह गुणवत्तापूर्ण शिक्षण का मानक है। शिक्षण संस्थाओं की गुणवत्ता को सुनिश्चित करने तथा ज्ञान पर आधारित समाज की आवश्यकता के अनरूप संसाधनों की व्यवस्था महाविद्यालयों की प्राथमिक आवश्यकताएँ होनी चाहिए। आर्थिक एवं भौतिक संशाधनों के अनुपलब्धता पुस्तकालय की व्यवस्था एवं उन पुस्तकालयों को संसाधनयुक्त बनाने के प्रयासों को बाधित करती है। रीवा संभाग के पुस्तकालय में संदर्भ ग्रंथों की उपलब्धता एवं संसाधनों की उपलब्धता के दौरान यह पाया गया कि अधिकांश महाविद्यालयों में पुस्तकालयों के पास पर्याप्त ज्ञान संसाधन की उपलब्धता हेतु स्वायत्तता का अभाव दिखाई पड़ता है। अध्ययन के दौरान यह पाया गया कि अधिकांश महाविद्यालयों में पुस्तकालयों के पास पर्याप्त ज्ञान संशाधन जैसे– कम्प्यूटर, इन्टरनेट, ई–संसाधन, शोध संदर्भ, जर्नल, ई–जर्नल उपलब्ध नहीं हैं, और न ही उन स्त्रोतों तक छात्रों की पहुँच सुनिश्चित हो पाती है। अनुसूचित जाति एवं जनजाति के छात्रों की पहुँच बुक बैंक योजना के साथ–साथ सामान्य पुस्तकालयों

तथा उपलब्ध ज्ञान संसाधनों तक सुनिश्चित की जानी चाहिए।

उपसंहार :–

रीवा संभाग के जनजातीय क्षेत्र के महाविद्यालयों के पुस्तकालय पुस्तकों से समृद्ध हैं। रीवा संभाग के महाविद्यालयों में तृतीय एवं चतुर्थ श्रेणी के पद स्वीकृत नहीं हैं। अधिकतर महाविद्यालय के ग्रंथपाल, सहायक ग्रंथपाल, बुक लिफटर, एवं अन्य कर्मचारियों के पद स्वीकृत होने के बावजूद रिक्त हैं, महाविद्यालयों में पुस्तकालयाध्यक्ष का पद रिक्त है। उसके स्थान पर अतिथि विद्वान, ग्रंथपाल कार्यरत हैं।

आज जरूरत महाविद्यालय के विकास की है। लेकिन मध्यप्रदेश शासन द्वारा प्रतिवर्ष नये महाविद्यालय तो प्रारंभ किये जा रहे हैं। लेकिन कर्मचारियों की पूर्ति नहीं हो पाती। महाविद्यालय के शासकीय ग्रंथालय सुविधा से वंचित हैं कर्मचारी की पूर्ति से ग्रंथालय का विकास ही रीवा संभाग, मध्यप्रदेश को मजबूत एवं स्थायी विकास दे सकता है। तद्नुसार और छात्र और छात्राएँ लाभान्वित हो सकते हैं।

संदर्भ :–

1. मध्यप्रदेश शासन की प्रशासकीय प्रतिवेदन वर्ष 2010–11 2011–12 एवं 2013–14
2. योजना अंक दिसंबर 2015
3. हरिजन आदिवासी कल्याण की योजनायें – एक परिचय : आदिम जाति कल्याण संचालनालय भोपाल
4. मध्य प्रदेश संदेश : वर्ष 13, अंक 4, 25 सितम्बर 2009, जनसंपर्क संचालनालय, भोपाल
5. www.highereducation.mpCached – Similar.gov.in
6. www.ugc.ac.in

SHODH CHETNA – YEAR-2 (JAN. TO MARCH, 2016) VOL. 1
ISSN : 2350-0441

भारतीय नई आर्थिक नीति, कार्य एवं समाज पर प्रभाव

❒ डा. राम किंकर पाण्डेय

शोध सारांश

समाज और काल निरन्तर परिवर्तनशील हैं। काल का प्रवाह समाज को परिवर्तित करता रहता है, जिसका प्रत्येक सामाजिक के ऊपर प्रभाव पड़ता है। अर्थ मानव की सबसे बड़ी आवश्यकता है। समय के अनुसार अर्थ प्राप्ति तथा उसके उपभोग आदि की नीतियों का निर्धारण सदियों से होता चला आया है। समाज को संचालित करने वाले तत्त्व सभी प्रकार की नीतियों का निर्धारण करते हैं। उसी परिप्रेक्ष्य मे जब राजतन्त्रीय प्रणाली का ह्रास हुआ तथा प्रजातान्त्रिक प्रणाली का अभ्युदय हुआ तब समाज की आवश्यकताओं और उसकी पूर्ति की दिशा में कुछ कदम उठाने आवश्यक हुए, जिन्हें नई आर्थिक नीति के नाम से जाना गया। जिनका उद्देश्य समाज के सभी वर्गों को उन संसाधनों को पहुँचाना था जो केवल कुछ विशिष्ट लोगों को ही प्राप्य थे। नई आर्थिक नीति का उद्देश्य समाज मे समानता के आधार पर सभी के लिए सभी वस्तुओं की उपलब्धता है तथा यह तभी सम्भव हो सकेगा जब किसी भी वस्तु की आपूर्ति उसकी माँग के सही अनुपात मे की जा सकेगी।

नवीन आर्थिक नीति जिसे आधुनिक समाज मे आर्थिक दर्शन की संज्ञा प्रदान की गई है, की उत्पत्ति सन् 1984 में हुई किन्तु इसे समाज में पूर्णरूप से मान्यता 1991 में प्राप्त हुई। इस आर्थिक नीति को स्थापित करने का श्रेय भारत के पूर्व प्रधानमन्त्री स्वर्गीय राजीव गाँधी जी को जाता है। राजीव गांधी ने औद्योगिक लाइसेंसिंग नीति को परिवर्तित कर उदारीकरण की नीति को अपनाने की पहल की थी। इसका परिणाम यह हुआ कि, औद्योगिक घराने एवं विदेशी निवेशकों के लिए वे स्थान सुलभ हो सके जो इसके पूर्व केवल सार्वजनिक क्षेत्र के लिए आरक्षित थे। आर्थिक सुधार की इसी कड़ी में सन् 1985 से 1990 के मध्य एम.आर.पी.टी. एवं फेरा अधिनियमों मे परिवर्तन कर उद्योगों के निजीकरण की दिशा में महत्त्वपूर्ण पहल की गई।

स्वतन्त्रता के पश्चात् सन् 1951 में सुनियोजित आर्थिक पद्धति को अपनाया गया जिसका क्रियान्वयन 1991 तक निजी एवं विदेशी निवेश को नियन्त्रित कर सार्वजनिक क्षेत्र के विस्तार में होता रहा। इसका कुपरिणाम यह हुआ की देश में गरीबी, भुखमरी, बेरोजगारी, देश का तकनीकि में पिछड़ना, क्षेत्रीय विषमतायें आदि समस्यायें उभरकर साफतौर पर दिखने लगी। देश मे विदेशी मुद्रा का ऐसा संकट आया कि, विदेशी भुगतान के लिए देश का स्वर्ण गिरवी रख भुगतान करना पड़ा।

* प्राध्यापक-अर्थशास्त्र, स्व. यमुना प्रसाद शास्त्री स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सिरमौर, जिला-रीवा (म.प्र.)

जिस समय भारत की आर्थिक स्थिति दयनीय थी उसी समय वैश्विक पटल पर राजनैतिक उथल–पुथल भी दिखाई पड़ी। सोवियत संघ का विघटन हो गया। वह विखण्डित होकर अनेक भागों मे परिवर्तित हो गया। साम्यवादी चीन भी विकास की होड़ मे विदेशी निवेशकों की शरणस्थली बना और लगभग 70 प्रतिशत भाग निजी क्षेत्र को उद्योग के लिए सौंप दिया। उसी की देखा–देखी मे पूँजीवादी जर्मनी ने साम्यवादी जर्मनी को अपने आप में विलयकर विकास की गति को तीव्र कर दिया। इसी तरह अनेक विकासशील देशों में आर्थिक क्रान्ति की लहर दौड़ पड़ी। इसका असर यह हुआ कि, भारत को भी एक मार्ग मिला। उसने अपनी अर्थिक नीति को सुदृढ़ बनाने के लिए बाजार समर्थक नीति लाने का निर्णय लिया।

इसके लिए जो महत्त्वपूर्ण कदम उठाये गये वे निम्नानुसार हैं–

(1) नवीन औद्योगिक नीति द्वारा देश में विद्यमान प्रशासनिक नियन्त्रणों को समाप्त कर उदारीकरण का मार्ग प्रशस्त किया गया।

(2) निजी निवेश को प्रोत्साहित करने एवं विदेशी पूँजी को आकर्षित करने से सम्बन्धित विविध उपाय किये गये।

(3) भारतीय अर्थव्यवस्था को विश्व अर्थव्यवस्था से जोड़ने का प्रयास किया गया।

नवीन आर्थिक नीति के उद्देश्य–

(1) तात्कालिक प्रशासनिक नियन्त्रणों को समाप्त कर उदारीकरण का मार्ग प्रशस्त करना।

(2) निजी निवेश को प्रोत्साहित करना तथा विदेशी पूँजी को आकर्षित करना।

(3) भारतीय अर्थव्यवस्था को वैश्विक अर्थव्यवस्था से जोड़ना।

(4) अवरुद्ध आर्थिक नीति को गतिमान बनाना आदि था।

उपरोक्त नीतियों के अनुपालन से भारतीय अर्थव्यवस्था में जो परिणाम सामने आये वे निम्न प्रकार हैं–

(1) औद्योगिक नीति– नई औद्योगिक नीति के तहत फेरा को अत्यधिक उदार बनाया गया। जिसके अन्तर्गत बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को 51 प्रतिशत से अधिक की भागीदारी करने का अवसर दिया गया, साथ ही कालेधन को भी सामने लाने हेतु उद्यमियों को उद्योग में निश्चित सीमा को समाप्त कर दिया गया। जिससे उद्यमी अपनी क्षमता के अनुकूल उद्योग को बढ़ा सकें।

(2) विदेशी विनियोग नीति–इस नीति के तहत विदेशी विनियोग को बल मिला, जिसके अन्तर्गत प्रोद्योगिकी हस्तांतरण, विपणन दक्षता तथा आधुनिक प्रबंधकीय तकनीकों को प्रोत्साहित किया जा सका। जिसके लिए विदेशी निवेशकों को भारत में 51 प्रतिशत से अधिक की भागीदारी तक सुनिश्चित की गई।

(3) मौद्रिक नीति–अर्थव्यवस्था के उत्पादक क्षेत्रों में ऋण प्रवाह को अपरिवर्तित रखने हेतु तथा मुद्रास्फीति को कम करने एवं लक्षित भुगतान शेष मे सुधार लाने के लिए मौद्रिक नीति का विधान किया गया।

(4) राजकोषीय नीति–परम्परावादी अर्थशास्त्रियों के मतानुसार सरकार के लिए आवश्यक करणीय तीन कार्य जिनमें (अ) देश में शान्ति व सुरक्षा की व्यवस्था बनाना (ब) आवाम को विदेशी आक्रान्ताओं से सुरक्षा प्रदान करना तथा (स) प्रजा को न्याय प्रदान करना था। किन्तु राजतन्त्रों की हालत बिगड़ने से तथा वैश्विक राजनैतिक प्रणाली में परिवर्तन होने से वित्तीय क्षेत्र में भी परिवर्तन होना स्वाभाविक था। अतः 1930 के दशक की मन्दी ने परम्परावादियों के सिद्धान्त को ध्वस्त कर दिया।

फलतः देश व समाज को मन्दी से बाहर लाने हेतु जो नीति बनाई गई उसे राजकोषीय नीति से जाना जाने लगा। जिसके अन्तर्गत सिंचाई के संसाधन जुटाने, सार्वजनिक भवनों के निर्माण कार्य,

यातायात के साधनों, सड़कों आदि के निर्माण कार्य करने आवश्यक हो गये जिससे समाज भुखमरी की दुर्दशा से मुक्त हो सका।

(5) सार्वजनिक क्षेत्रीय नीति एवं वित्तीयक्षेत्र की सुधार नीति–सार्वजनिक उद्यमों मे बाजार अनुशासन लाने के उद्देश्य से निजी क्षेत्र से प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा दिया जाता है तथा चयनित उद्यमी में हिस्सा पूँजी का विनिवेश किया जाता है तथा वित्तीय क्षेत्र मे सुधार के लिए अर्थव्यवस्था मे ढाँचागत सुधारों को सफलता प्रदान करने हेतु वित्तीय व्यवस्था मे कार्यकुशलता एवं प्रतिस्पर्धा को होना नितान्त आवश्यक है। जो उपरोक्त नीति के अन्तर्गत अपने लक्ष्य को प्राप्त करने मे सफल रहे हैं।

नई आर्थिक नीति के प्रभाव–सन् 1991 में बनी नई आर्थिक नीति का भारतीय अर्थव्यवस्था में आमूलचल परिवर्तन दिखाई पड़े तथा समाज में उनका जो प्रभाव दिखाई पड़ा वह निम्नानुसार है–

(1) समाज को आर्थिक कार्यों की स्वतन्त्रता–उद्योगों के निजीकरण से बड़े तथा छोटे सभी प्रकार के उद्यमियों को उद्योग व्यापार करने के लिए आर्थिक गतिविधियों के संचालन में स्वतन्त्रता प्राप्त हुई। जो केवल पहले सार्वजनिक क्षेत्र के लिए ही सुरक्षित थी। जिसका परिणाम यह हुआ कि उद्यमियों की इकाइयाँ मजबूत हुईं और रोजगार प्रदान करने मे सहायक हुईं।

(2) प्रतियोगी भावना का विकास– औद्योगिक क्षेत्र में उद्योगों को विकसित करने हेतु तथा अधिक लाभांश की प्रत्याशा में न्यून लागत में अधिकाधिक उत्पादन तथा गुणवत्ता युक्त वस्तु निर्माण के प्रति सजगता जाग्रत हुई।

(3) साहसियों की संख्यावृद्धि– व्यापार जोखिम का घर है और जोखिम उठाना साहस पर आधारित है। बिना साहस के व्यापार नहीं किया जा सकता। जो उद्यमी जितना अधिक जोखिम उठाता है उसका प्रतिफल भी वह उसी के अनुपात मे प्राप्त करता है। किन्तु केवल जोखिम उठाने पर ही लाभ केन्द्रित नहीं है उसके लिए सफल आर्थिक नीति का होना भी आवश्यक है। बाजार की माँग का अध्ययन करने के उपरान्त ही पूँजी की लागत का जोखिम उठाना लाभकारी सिद्ध होता है जो भारत में सन् 1991 के बाद प्रारम्भ हो गया तथा बाजार में उसका सीधा प्रभाव दिखाई देने लगा।

(4) मशीनरी का प्रयोग– नई औद्योगिक नीति के तहत देश मे विदेशी मशीनों का आयात किया गया। जिससे वस्तुओं के उत्पादन क्षमता की वृद्धि तो हुई ही साथ ही गुणवत्ता की भी वृद्धि हुई। वस्तुओं के सर्वसुलभ होने के कारण उपभोक्ता और उपभोग्य में तादात्म्य स्थापित हो सका।

(5) पारिश्रमकि देयता में योग्यता निर्धारण–नई आर्थिक नीति के तहत किये जाने वाले उद्योग में कार्यकर्ताओं को उनकी योग्यता का मूल्यांकन कर वेतन निर्धारित किया जाने लगा। जिसका परिणाम यह हुआ कि, समाज के लोग जागरूक हुए और अधिकाधिक धन प्राप्ति की लालसा में उत्तम शिक्षा प्राप्त करने के लिए उत्सुक हुए।

नई आर्थिक नीति का भारतीय समाज पर ऐसा प्रभाव हुआ कि, इसके विस्तार की आवश्यकता भी महसूस होने लगी। जिसकी पूर्ति के लिए विदेशी विनियोग नीति, राजकोषीय नीति, मौद्रिक नीति, विदेशी व्यापार नीति, सार्वजनिक क्षेत्र सम्बन्धी नीति, वित्तीय सुधार नीति आदि नीतियों का निर्धारण किया गया। जिसका समाज पर सकारात्मक प्रभाव परिलक्षित हुआ तथा भारतीय समाज की आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ।

सन्दर्भ–

(1) डॉ0 पी.डी. माहेश्वरी, भारतीय आर्थिक नीति, प्रकाशक–कैलाश पुस्तक सदन, भोपाल।

(2) कौटिलीय अर्थशास्त्र, वाचस्पति गैरोला, प्रकाशक–

SHODH CHETNA – YEAR-2 (JAN. TO MARCH, 2016) VOL. 1
ISSN : 2350-0441

'दहेज' तथा दहेज प्रतिषेध अधिनियम 1961

❐ डा. सुशील कुमार मिश्र

शोध सारांश

हिन्दू समाज में दहेज का प्रचलन वैदिक काल से चला आ रहा है, लेकिन वर्तमान में यह एक विकराल सामाजिक अभिशाप का रूप ग्रहण कर चुकी है। वर्तमान में दहेज प्रथा का रूप ले लिया है और इस प्रथा ने इतना विकराल रूप धारण कर लिया है कि प्रत्येक वर-पक्ष का परिवार वर के विवाह में बेशुमार दहेज प्राप्त होने की अपेक्षा करता है। चाहे उसका स्वयं का परिवार कितना ही गरीब या मध्यवर्गीय क्यों न हो वधू-पक्ष पर परिवार दहेज देने के सामर्थ्य रखता है या नहीं या वधू वर की तुलना में योग्यता, निपुणता रखती है या नहीं इस बात का ध्यान नहीं रखा जाता। दहेज-निषेध अधिनियम, 1961 की धारा 2 में दहेज की परिभाषा दी गई है और 1984 व 1986 के संशोधन के बाद दहेज की परिभाषा स्पष्ट की गई है जिससे दहेज सम्बन्धों विवाद को सहजता से सुलझाया जा सके।

हिन्दू समाज में ''दहेज'' का प्रचलन वैदिक काल से चला आ रहा है, लेकिन वर्तमान में यह एक विकराल सामाजिक अभिशाप का रूप ग्रहण कर चुकी है। वैदिक समय में तीन प्रकर के विवाह प्रचलित थे—ब्रह्म, असुर, गन्धर्व। ब्रह्म विवाह सबसे अधिक मान्य माना जाता था जिसमें कन्या का पिता एक योग्य वर की तलाश कर अपनी पुत्री का कन्यादान करता था और बहुत-सा धन-धान्य, दान ''दहेज'' में देता था जिससे कि उसकी पुत्री पति के परिवार में भी सुखी रहे। इस प्रकार के विवाह को वैदिककाल के बाद भी सभी स्मृतिकारों ने उत्तम विवाहों में से एक माना है। वैदिककाल और स्मृतिकाल के दौरान दान ''दहेज'' देना पूर्णतया कन्या के पिता की स्वतंत्र इच्छा और वित्तीय सामर्थ्य पर निर्भर करता था। वर्तमान में वर पक्ष अपनी ओर से अधिक दान-''दहेज'' की मांग करते हैं और ''दहेज'' न मिलने पर वधू के साथ क्रूरता करते हैं माननीय उच्चतम न्यायालय ने आत्माराम बनाम महाराष्ट्र राज्य[1] में ''क्रूरता'' को स्पष्ट किया है ''क्रूरता'' का तात्पर्य ऐसी प्रकृति का जान-बूझकर किया गया आचरण से है, जिससे उस स्त्री को इस दृष्टि से तंग करना ताकि उसको या उसके किसी नातेदार को कोई मांग पूरा करने के लिए प्रताड़ित किया जाये या किसी स्त्री को इस कारण तंग किया जाये कि उसका नातेदार ऐसी मांग पूरा करने में असफल रहा।

ब्रिटिश शासन के दौरान पाश्चात्य सभ्यता ने जीवन की आवश्यकताओं में वृद्धि किया है, जीवन को ऊँचा उठाने की प्रवृत्ति, दूसरे परिवार को देखकर धन-प्राप्ति की होड़ आदि कारणों ने हिन्दुओं को अपनी मूल संस्कृति से भुलाकर कई सामाजिक एवं आर्थिक कुरीतियों और बुराइयों की ओर अग्रसरित किया।

औद्योगिकीकरण के प्रादुर्भाव से व्यापार में वृद्धि हुई और ऊँचे पद पर रहकर भ्रष्ट तरीके से धन-उपार्जन के फलस्वरूप बहुत-से हिन्दू परिवारों में आशा के विपरीत धन-संचय हुआ है। ऐसे परिवारों ने अपनी पुत्री के लिए योग्य-से-योग्य वर प्राप्त करने हेतु अधिक-से-अधिक

* एल-एल.एम., पी-एच.डी., अतिथि विद्वान शा. विधि महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

धन देने की होड़ होने लगी। जिस परिवार के पास बेशुबार धन-सम्पत्ति है, कन्या में कुछ भी गुण न होने के बावजूद भी अत्यधिक धन-प्राप्ति की इच्छा से योग्य, पढ़ा-लिखा व अच्छे पद के वर के माता-पिता इसलिए विवाह करने के लिए राजी होने लगे कि ''वधू सोने की मुर्गी है'', जो हमेशा धनरूपी अण्डा देती रहेगी।

वर्तमान में दहेज ने ''प्रथा'' का रूप ले लिया है और इस प्रथा ने इतना विकराल रूप धारण कर लिया है कि प्रत्येक वर-पक्ष का परिवार वर के विवाह में बेशुमार दहेज प्राप्त होने की अपेक्षा करता है। चाहे उसका स्वयं का परिवार कितना ही गरीब या मध्यमवर्गीय क्यों न हो, वधू-पक्ष पर परिवार दहेज देने की सामर्थ्य रखता है या नहीं या वधू वर की तुलना में योग्यता, निपुणता रखती है या नहीं इस बात का ध्यान नहीं रखा जाता।

आज प्रत्येक हिन्दू कन्या का जन्म अभिशाप मानने लगा है और पुत्र का जन्म एक वरदान। दहेज प्रथा एक भयंकर सामाजिक कलंक बन गया है। दहेज के लालची भेड़ियों की सन्तुष्टि विवाह में प्राप्त दहेज से नहीं होने लगी और कम दहेज प्राप्त होना बताकर वधू को और अधिक दहेज लाने की मांग करने लगते हैं। यदि उसने इससे इन्कार किया या वधू का परिवार मांग को पूरा करने में असमर्थ रहने लगे तो निःसहाय वधू को वर-पक्ष के नातेदार जिन्दा जलाने लगे।

बीसवीं शताब्दी के अन्तिम चरण से अब तक कोई भी दिन ऐसा नहीं जा रहा है कि दैनिक समाचार-पत्र में दहेज संबंधी समाचार प्रकाशित न हुआ हो। इसे चाहे आत्महत्या या आकस्मिक दुर्घटना की संज्ञा क्यों न दे दी गई हो। हिन्दू से अधिक दहेज प्राप्त होने आशा संजोए हुए है।

हिन्दुओं में विवाह से पूर्व वैवाहिक अनुबन्ध की प्रथा है जिसे सगाई, टीका, तिलक, लगन आदि कहा जाता है। इस उत्सव पर कन्या के पिता या नातेदार अपनी कन्या के लिए वर को निश्चित करते हैं और उसके लिए वर तथा वर के माता-पिता, नातेदारों को धन और वस्तुएँ भेंट में देते हैं।

यदि विवाह का कोई भी पक्षकार सगाई या लगन की इस रस्म को तोड़कर विवाह करने से इंकार कर देता है तो पीड़ित पक्षकार दोषी पक्षकार के विरुद्ध न्यायालय द्वारा बाध्य नहीं किया जा सकता। इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने राजेन्द्र बनाम रोशन[2] के बाद में यह निर्धारित किया है कि सगाई के समय किसी भी पक्ष की ओर से जो भेंट दी व खर्च की जाती हैं उसे दूसरे पक्षकार से वसूल किया जा सकता है। सगाई के समय कन्या-पक्ष की ओर से दी गई भेटें दहेज का एक भाग है।

दिलीप बनाम म.प्र. राज्य[3] के वाद में ''दहेज'' की परिभाषा को स्पष्ट किया है तथा यह आधारित किया कि ''दहेज'' से तात्पर्य है कि दहेज की मांग का विवाह से संबंध होना चाहिए और यदि इसका विवाह के प्रतिफल से कोई संबंध नहीं है तो इसे दहेज की मांग नहीं कहा जायेगा।

बचनी देवी और अन्य बनाम हरियाणा राज्य द्वारा सचिव, गृह विभाग[4], में माननीय उच्चतम न्यायालय ने कहा कि यदि किसी सम्पत्ति या मूल्यवान प्रतिभूमि के लिए मांग, प्रत्यक्षतः या अप्रत्यक्षतः विवाह से संबंधित है तो ऐसी मांग ''दहेज की मांग'' कहलायेगी.... ऐसी मांग के लिए हेतुक या कारण अतात्विक है।

अशोक कुमार बनाम हरियाणा राज्य[5], के वाद में ''दहेज'' एवं ''विवाह के पश्चात् किसी समय'' अभिव्यक्तियों को अर्थ स्पष्ट किया गया है।

रीमा अग्रवाल बनाम अनुपम[6] के वाद में ''दहेज'' का अर्थ स्पष्ट किया है। माननीय उच्चतम न्यायालय के अनुसार विवाह के समय अथवा विवाह के पश्चात् विवाह के प्रतिफल के रूप में दिया गया धन, सम्पत्ति अथवा मूल्यवान प्रतिभूति अभिव्यक्ति दहेज की परिभाषा में दिये जाने वाले उपहार जो विवाह के प्रतिफल रूप में नहीं बल्कि प्रेम तथा स्नेह में दिये जाते हैं अभिव्यक्तितः दहेज के अन्तर्गत नहीं आते।

वैदिक एवं शास्त्रिक विधि के अन्तर्गत जो अवधारणा ''वर दक्षिणा'' की ''कन्यादान'' के साथ एक पवित्र एवं धार्मिक अर्हता थी वह धीरे-धीरे दहेज के रूप में सामाजिक घोर कुमति बन गई।

आजादी से पहले तक ''दहेज'' की मांग इतनी अधिक नहीं थी तथा ''दहेज'' कन्या परिवार की इच्छा और वित्तीय सामर्थ्य पर अधिक निर्भर करता था, लेकिन स्वतंत्रता के बाद अधिक दहेज प्राप्त करने की सामाजिक बुराई बढ़ती जा रही थी। इस बढ़ती हुई ''दहेज'' की सामाजिक बुराई को दूर करने के लिए संसद ने दहेज निषेध अधिनियम, 1961 पारित किया। इस अधिनियम के पारित होने के बावजूद धीरे-धीरे ''दहेज'' की सामाजिक बीमारी ने विकराल रूप ले लिया। विद्वानों का यह मत है कि बाल-विवाह अवरोध अधिनियम, 1929 की तरह की दहेज-निषेध अधिनियम, 1961 प्रभावहीन है, क्योंकि प्रशासन स्वतः की दहेज मांगने या देने के अपराध का संज्ञान नहीं ले सकता तथा दोषी व्यक्तियों को दण्ड मिलने की कोई संभावना क्षीण हो जाती है। दहेज, निषेध अधिनियम 1961 को और अधिक प्रभाव बनाने के लिए 1984 तथा 1986 में इसमें महत्वपूर्ण संशोधन किये गए, लेकिन वो भी कोरे कागज पर लिखे गये कुछ शब्द ही प्रतीत होते रहे हैं। दहेज प्रतिषेध अधिनियम 1961 के आने के कुछ समय बाद ही ''दहेज'' देने व लेने की प्रथा बहुत ही बढ़ गई।

नारायणलाल बनाम राजस्थान राज्य[7] संभवतः यह पहला मामला था जिसमें वर के माता-पिता ने वधू द्वारा उनकी इच्छा अनुसार ''दहेज'' न लाने पर उसे लोहे की सलाखों से अत्यधिक मारा था बाद में उसे गला घोंटकर मार दिया गया।

माननीय उच्चतम न्यायालय प्रतिभारानी बनाम सूरजकुमार[8] के वाद में यह स्पष्ट किया है कि विवाह के समय कन्या पक्ष से जो कुछ वर के परिवार को मिलता है, धन, जेवर, जवाहरात, बर्तन, कपड़े, साज-सामान, चल या अचल सम्पत्ति वह सब-कुछ वधू का स्त्रीधन है और उसका पति व ससुराल वाले उस सम्पत्ति के न्यासी हैं। यदि वधू की इच्छा के विरुद्ध पति या श्वसुर उस सम्पत्ति का उपभोग या व्यय करते हैं तो आपराधिक न्यास-भंग के दोषी हैं। यदि पति और पत्नी के बीच में वैवाहिक विच्छेद की डिक्री मिल जाती है तो पति को वह समस्त स्त्रीधन पत्नी को लौटाना होना और ऐसा न करने पर तलाकशुदा पत्नी न्यायालय से प्रार्थना कर इसकी मांग कर सकती है।

इस प्रकार एक ओर से विवाह के समय मिलने वाला समस्त ''दहेज'' वैधानिक रूप से वधू का स्त्रीधन माना गया है, वहीं दूसरी ओर कुछ लालची भेड़िये वर या वर के माता-पिता दहेज कम मिलने पर यह विवाह के बरसों बाद भी कन्या के पिता द्वारा उनकी मांग पूरी न करने पर ''दहेज'' के लिए बहू को जलाने लगे।

भारतीय दण्ड सहिता 1860, दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973, भारतीय साक्ष्य अधिनियम 1872 तथा दहेज निषेध अधिनियम 1961 में इन दहेज के लालचियों को कड़ी सजा दिलाने के लिए व्यवस्था की गई है लेकिन ऐसा लगता है कि अभी भी विधि और उसके उचित अनुपालन के प्रावधानों में कहीं कमी है, जिससे कि ऐसे अपराधी फाँसी व आजीवन कारावास जैसे कठोर दण्ड से बच जाते हैं।

दहेज-निषेध अधिनियम, 1961 की धारा 2 में दहेज की परिभाषा दी गई है और 1984 व 1986 के संशोधन के बाद ''दहेज'' की परिभाषा निम्न प्रकार से है। ''दहेज'' से कोई ऐसी सम्पत्ति या मूल्यवान प्रतिभूति अभिप्रेत है जो विवाह के समय या उसके पूर्व या बाद में ''विवाह'' के एक पक्षकार द्वारा दूसरे पक्षकार को या ''विवाह'' के किसी पक्षकार के माता-पिता द्वारा या किसी अन्य व्यक्ति द्वारा विवाह के किसी भी पक्षकार को या दिये जाने के लिए करार की गई है।

किन्तु उन व्यक्तियों के संबंध में जिन्हें मुस्लिम स्वीय विधि (शरीयत) लागू होती है, मेहर इसके अन्तर्गत नहीं आती।

''दहेज'' प्रतिषेध अधिनियम 1961 की धारा 3 दहेज देने या दहेज लेने के लिए शास्ति का उपबन्ध करती है। जिसमें 1988 के संशोधन द्वारा शास्ति की मात्रा को और बढ़ा दिया गया है फिर भी समाज पर इस अधिनियम का प्रभाव दिखाई नहीं पड़ रहा है। संभवतः इसका कारण समाज द्वारा इस अधिनियम को स्वीकार न करना है।

''दहेज प्रतिषेध अधिनियम 1961 के अधीन अपराध व दण्ड सूची

धारा	अपराध	दण्ड
धारा-3	''दहेज'' देने व दहेज के लिए शारित—यदि कोई व्यक्ति इस अधिनियम के प्रारंम होने के पश्चात् देगा या दहेज लेगा अथवा दहेज या लेना दुष्प्रेरित करेगा।	यह कारावास से जिसकी अवधि पाँच वर्ष से कम नहीं होगी और जुर्माने से जो 15000 रुपये या ऐसे दहेज के मूल्य की रकम तक का, इसमें जो भी अधिक है हो, कम नहीं होगा दण्डनीय होगा।
धारा-4	''दहेज'' मांगने के लिए शास्ति यदि कोई व्यक्ति यथास्थिति वर या वधू के माता-पिता या अन्य नातेदार या संरक्षक से किसी दहेज की प्रत्यक्ष रूप से या अप्रत्यक्ष रूप से मांग करेगा।	वह कारावासी से जिसकी अवधि छहः माह से कम नहीं होगी, किन्तु दो वर्ष तक की हो सकेगी और जुर्माने से जो 1000 रुपये तक हो सकेगा। दण्डनीय होगा।
धारा-4 (ए)	विज्ञान पर पाबंदी- (क) यदि कोई व्यक्ति अपने पुत्र या पुत्री या किसी अन्य नातेदार के विवाह के प्रतिफल स्वरूप किसी सम्पत्ति या किसी धन के अंश या दोनों के किसी कारोबार या हित में किसी अंश की प्रस्थापना करेगा।	यह कारावास से जिसकी अवधि छहः माह से कम नहीं होगी, किन्तु पाँच वर्ष तक हो सकेगी या जुर्माने से जो 15000 रुपये तक हो सकेगा दण्डनीय होगा। होगी, किन्तु पाँच वर्ष तक हो सकेगी या जुर्माने से जो 15000 रुपये तक हो सकेगा दण्डनीय होगा।

धारा	अपराध	दण्ड
	(ख) खण्ड क में निर्दिष्ट कोई विज्ञापन मुद्रित करेगा, प्रकाशित करेगा या परिचालित करेगा।	यथोक्त
धारा-6	''दहेज'' का पत्नी या उसके वारिसों के फायदे के लिए होगा- (1) जहाँ कि कोई दहेज ऐसी स्त्री से निम्न जिसके विवाह के संबंध में दिया गया है किसी भी व्यक्ति द्वारा प्राप्त किया जाता है वहाँ वह व्यक्ति उस दहेज को— (क) यदि वह दहेज विवाह के पूर्व प्राप्त किया गया था तो विवाह की तारीख के पश्चात् तीन माह के भीतर। (ख) यदि वह दहेज विवाह के समय प्राप्त किया गया है या उसके पश्चात् प्राप्त किया गया था तो उसकी प्राप्ति की तारीख के पश्चात् तीन माह के भीतर ।या (ग) यदि वह उस समय जब स्त्री अवश्यक थी तब प्राप्त किया गया था तो उसके 18 वर्ष की आयु प्राप्त करने के पश्चात् तीन माह के भीतर। उस स्त्री को अंतरिक कर देगा और ऐसे अंतरण तक उसे न्यास के रूप में स्त्री के फायदे के लिए धारण करेगा। (2) यदि कोई व्यक्ति उपधारा (1) के द्वारा आपेक्षित किसी सम्पत्ति का उसके लिए विनिर्दिष्ट परिसीमाकाल के भीतर या उपधारा (3) द्वारा अपेक्षित अंतरण करने में असमर्थ रहेगा।	वह कारावास से जिसकी अवधि छहः माह से कम नहीं होगी किन्तु दो वर्ष की हो सकेगी, या जुर्माने से जो पाँच हजार रुपये तक सकेगा या दोनों से, दण्डनीय होगा।

धारा3(2) (क) - के अनुसार ऐसी भेंटे जो वधू को विवाह के समय (इस निमित्त कोई मांग किये बिना) दी जाती है या उसके संबंध में लागू नहीं होगी, लेकिन इसके लिए आवश्यक है कि इस प्रकार प्राप्त की गई भेंटों का इस अधिनियम के अधीन बनाये गये नियमों के अनुसार सूची बनाई जाये और उसमें दर्ज किया जाये।

(ख) ऐसी भेटें जो वर को विवाह के समय (इस निमित्त मांग किये बिना) दी जाती हैं या इनके संबंध में लागू नहीं होगा। परन्तु यह तब जब ऐसी भेटें इस अधिनियम के अधीन बनाये गये नियमों के अनुसार बनाई गई सूची में दर्ज किया जाये परन्तु यह और कि ऐसी भेटें जो वधू या उसकी ओर से किसी व्यक्ति द्वारा जो वधू का नातेदार है दी जाती है वहाँ ऐसी भेटें रुढ़िगत प्रकृति की हैं और उसका मूल्य ऐसी व्यक्ति की वित्तीय प्रास्थित को ध्यान में रखते हुए, जिसके द्वारा या जिसकी ओर से ऐसी भेंटे दी गई हैं अधिक नहीं है।

''दहेज'' प्रतिषेध अधिनियम 1961 की धारा-5 के अनुसार ''दहेज'' लेने या ''दहेज'' देने का करार शून्य होगा, इसे किसी न्यायालय में प्रवर्तित नहीं कराया जा सकता। अधिनियम 1961 की धारा-8 इस अधिनियम के अधीन अपराधों का संज्ञेय तथा अजमानतीय और अशमनीय होना बताती है, जिसके अनुसार इस अधिनियम

के सभी अपराध संज्ञेय होंगे तथा अजमानीय होंगे और किसी भी अपराध में समझौता नहीं हो सकेगा। साथ ही पुलिस अधिकारी दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 42 में विनिर्दिष्ट विषय और किसी व्यक्ति की वारंट के बिना गिरफ्तार कर सकेगा। ''दहेज'' प्रतिषेध अधिनियम 1916 की धारा-8 (ए) 1986 के संशोधन द्वारा जोड़ी गई जिसके अनुसार कोई व्यक्ति धारा-3 के अनुसार दहेज लेने, दहेज देने या दहेज लेने-देने का दुष्प्रेरित करने का या धारा-4 के अधीन दहेज मांग के लिए अभियोजित किया जाता है वहाँ यह साबित करने का भार उसी पर होगा कि उसने इन धाराओं के अधीन कोई अपराध नहीं किया है।

दहेज निषेध अधिनियम, 1916 को 1984 व 1986 के संशोधन के बाद दहेज लेने व देने के संबंध में शीघ्र एवं कठोर कार्यवाही करने की व्यवस्था करता है लेकिन यह सब व्यर्थ है, क्योंकि न्यायालय इसी बात में उलझ कर रह जाते हैं कि विवाह से पूर्व विवाह के समय या विवाह के बाद ली या दी गई वस्तुएँ मात्र भेंट हैं या दहेज। यदि उन्हें भेंट माना जावे तो फिर पक्षकार अपराधी नहीं होंगे। दूसरी ओर कन्यापक्ष अपनी कन्या का हित सर्वोपरि मानता है और न्यायालय तथा पुलिस के चक्कर में उसी समय आता है जब दहेज के लालची वर-पक्ष उनकी कन्या को दहेज की बलि चढ़ा देते हैं। 1966 के बाद न्यायालयों, जिनमें मूलतः उच्चतम न्यायालय का दहेज के कारण बहू की हत्या के संबंध में दोषी पति व उसके रिश्तेदारों के संबंध में अत्यधिक कठोर रूखा रहा है और उच्चतम न्यायालय ने कई मामलों में[9] विचार न्यायालय के द्वारा दिए गए कठोर दण्ड को बहाल रखा है दहेज कम या न मिलने के कारण आज भी प्रतिदिन सैकड़ों वधू वर-पक्ष के द्वारा, नृशंस कार्य से उनकी हत्या कर दी जाती है। जब दहेज निषेध अधिनियम में दहेज शब्द की परिभाषा में ही कमी है तो अपराधी को हमेशा उसी की परिधि से निकलने का अवसर मिलेगा। पारिस्थितिक साक्ष्य के आधार पर ही दहेज के कारण बहू को जलाने वाले दोषी को फाँसी या आजीवन कारावास का दण्ड दिया जाये तभी कहीं दहेज की इस विकराल सामाजिक बुराई पर अंकुश पाया जा सकता है। जलाई गई वधू की मृत्यु शैय्या पर दिये गये साक्ष्य पर दोषी व्यक्तियों को दण्ड नहीं दिया जाना[10] इस अपराध को और बढ़ाता है, क्योंकि ऐसे में प्रत्यक्ष निष्पक्ष साक्ष्य का मिलना सम्भव नहीं है।

सन्दर्भ—

1. 2013 (81) ए.सी.सी. 354।
2. ए.आई.आर. 1950 इलाहाबाद-59
3. 2013 (3) एम.पी.एच.टी. 202
4. ए.आई.आर. 2011 एस.सी.1098.
5. ए.आई.आर. 2010 एस.सी. 2839
6. एस.सी.सी. 199 (2004)
7. 1969 एस.पी. डब्ल्यू. आर-282
8. ए.आई.आर. 1985 एस.सी. 628
9. सुरेन्द्रकुमार बनाम दिल्ली प्रशासन (1987) आई.एस.सी.सी 467, कैलाश कौर बनाम पंजाब राज्य ए.आई.आर. (1987) एस. सी. 1369. राजस्थान राज्य बनाम बालचन्द्र (1978) क्रिमिनल लॉ जर्नल 195, समुन्दर सिंह बनाम राजस्थान राज्य ए.आई.आर, (1987) एस.सी. 737, पंजाब राज्य बनाम सुरजीत सिंह (1987) आई. एस.जे, 254, ज्वाइन्ट वीमनेव, बनाम राजस्थान राज्य ए.आई.आर. 1987 एस.सी 2060
10. देखिए—श्यामलाल बनाम हरियाणा राज्य ए.आई.आर (1987) एस.सी. 1873, मंगतराय बनाम पंजाब राज्य ए.आई.आर. (1997) एस.सी. 2831, पवन कुमार बनाम हरियाणा राज्य ए.आई.आर. (1998) एस.सी.58।

SHODH CHETNA – YEAR-2 (JAN. TO MARCH, 2016) VOL. 1
ISSN : 2350-0441

देश में औषधि मूल्य नियंत्रण प्रणाली

❒ डा. एस.पी. पाण्डेय

शोध सारांश

राष्ट्रीय औषध मूल्य निर्धारण प्राधिकरण की स्थापना वर्ष 1997 में अनिवार्य एवं जीवनरक्षक दवाओं के मूल्यों पर नियंत्रण के लिए स्वतंत्र जिम्मेदार निकाय के रूप में की गई थी। इसके अन्य उत्तरदायित्वों में मूल्य नियंत्रण के अंतर्गत आने वाली औषधियों की सूची की समीक्षा और अद्यतन मूल्य निर्धारण करना, औषधि निर्माता कम्पनियों, वितरकों और फुटकर कारोबारियों द्वारा मूल्य अनुपालन की निगरानी, दोषी कम्पनियों के अधिप्रभार की ब्याज सहित वसूली, औषधि नियंत्रण के अंतर्गत न आने वाली गैर–अनुसूची औषधियों के संदर्भ में मूल्य निर्धारण की निगरानी, अनिवार्य एवं जीवनरक्षक दवाओं की उपलब्धता की निगरानी एवं सुनिश्चितता, औषधि के मूल्य निर्धारण और संबंधित मामलों के बारे में अनुसंधान अध्ययन करना तथा केन्द्र सरकार को अनिवार्य एवं जीवनरक्षक दवाओं के मूल्य निर्धारण एवं उपलब्धता के बारे में परामर्श देना शामिल है।

भारतीय औषधि उद्योग मात्रा की दृष्टि से दुनिया का तीसरा (करीब 10 प्रतिशत वैश्विक उत्पादन के लिए उत्तरदायी) और मूल्य की दृष्टि से दसवां बड़ा उद्योग है, जो 12–15 प्रतिशत सीएजीआर की दर से बढ़ रहा है। वर्तमान में भारतीय औषधि उद्योग अनुमानित तौर पर 30 बिलियन अमरीकी डॉलर का है, जिसमें से करीब आधा घरेलू बाजार बाकी निर्यात के लिए उत्तरदायी है। वर्ष 2020 तक इसका कारोबार 55 बिलियन अमरीकी डॉलर तक पहुंचने की सम्भावना है। भारतीय औषधि उद्योग में 10,000 कम्पनियां हैं, लेकिन इस पर कुछ गिनी–चुनी कम्पनियों का वर्चस्व है। वर्ष 1970 से पहले, यहां बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का वर्चस्व था, लेकिन वर्तमान में इस क्षेत्र में विशाल भारतीय औषधि निर्माण कम्पनियों का वर्चस्व है। दुनिया भर में औषधियों पर प्रत्यक्ष मूल्य नियंत्रण/अप्रत्यक्ष मूल्य नियंत्रण है।

अमेरिका जैसे कुछेक देशों को छोड़कर दुनिया भर में औषधि मूल्य नियंत्रण एक सार्वभौमिक विशेषता है। पश्चिमी यूरोप के 16 में से 12 देशों में प्रत्यक्ष मूल्य नियंत्रण और शेष में अप्रत्यक्ष मूल्य नियंत्रण है। मध्य एवं पूर्वी यूरोपीय देश संदर्भ मूल्य निर्धारण प्रणाली और चिकित्सा संबंधी तुलनात्मकताओं का इस्तेमाल करते हैं। ऑस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंड नुस्खे पर आधारित औषधि मूल्य नियंत्रण प्रणाली का अनुसरण करते हैं। चीन मुनाफे और बिक्री के अंतर के नियंत्रण के आधार पर मूल्य निर्धारित करता है। कनाडा में पेटेंट वाली औषधियों के

* प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष भूगोल, शास. ठाकुर रणमत सिंह (दरबार) महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.), मो. 9425184673

मूल्यों का समीक्षा बोर्ड और संदर्भ मूल्य निर्धारण है। बहुत से देशों में औषधियों का मूल्य निर्धारण उनकी राष्ट्रीय स्वास्थ्य प्रणाली, प्रतिपूर्ति योजनाओं और स्वास्थ्य बीमा योजनाओं से संबद्ध है।

वर्ष 192 में चीन के हमले के बाद भारत सुरक्षा अधिनियम के अधीन औषधि आदेश, 1963 की घोषणा के साथ पहली बार भारत में औषधि मूल्य नियंत्रण लाया गया। इसके बाद अनिवार्य वस्तु अधिनियम, 1955 के अंतर्गत कई डीपीसीओ (1966, 1970, 1979, 1987 और 1995) घोषित किए गए। नवीनतम औषधि (मूल्य नियंत्रण) आदेश 2013 में अधिसूचित किया गया। डी.पी.सी.ओ. 2013, राष्ट्रीय औषधि मूल्य निर्धारण नीति 2012 पर आधारित है और देश में औषधि मूल्य नियंत्रण लाने की दिशा में महत्वपूर्ण घटना है। यह तीन मायनों में डी.पी.सी.ओ. 1995 से अलग है–पहला, इसमें लागत आधिारित मूल्य निर्धारण के स्थान पर बाजार आधारित मूल्य निर्धारण को अपनाया गया, दूसरा, इसमें मूल्य निर्धारण करने के उद्देश्य से प्रपुंज औषधि (बल्क ड्रग) अथवा सक्रिय औषधि घटक और उसके नुस्खों दोनों पर गौर करने की बजाए ए.पी.आई. पर आधारित विशिष्ट नुस्खों, खुराक की मात्रा और ताकतों पर गौर किया गया और तीसरा, इसमें अनिवार्यता तय करने के लिए राष्ट्रीय आवश्यक दवा सूची 2011 को अपनाया गया।

एन.एल.ई.एम. 2011 में 680 नुस्खों को शामिल किया गया, यदि हम एक से अधिक उपचारात्मक समूहों में शामिल होने वाले नुस्खों को निकाल दें, तो इन नुस्खों की संख्या घटकर 628 रह जाती है। अब तक न 628 में से 521 अनुसूचित नुस्खों को मूल्य नियंत्रण के दायरे में लाया गया है। करीब 100 नुस्खों को फुटकर बाजार में प्रचलन का अभाव होने के कारण छोड़ दिया गया है, ये सिर्फ मुख्य रूप से संस्थागत बिक्री के लिए उत्तरदायी हैं। पिछले एक वर्ष के दौरान, 256 नुस्खों को मूल्य नियंत्रण के दायरे में लाया गया है, परिणामस्वरूप उपभोक्ता को करीब 600 करोड़ रुपये की वित्तीय रहत मिली है। वर्तमान में अनुसूचित औषधियों के संदर्भ में मूल्य नियंत्रण का दायरा घरेलू चल वार्षिक कुल बिक्री स्तर पर करीब 15 प्रतिशत है। जो लगभग 82000 करोड़ रुपये है। स्वास्थ्य सुविधाओं को किफायती बनाने के लिए औषधियों का मूल्य नियंत्रण आवश्यक है, क्योंकि औषधियां निजी स्वास्थ्य सुविधाओं पर होने वाले खर्च का 80 प्रतिशत है। इसका प्रमुख कारण सरकारी योजनाओं तक सीमित पहुंच होना है। राष्ट्रीय स्वास्थ्य मिशन के साथ ही साथ केंन्द्रीय एवं राज्य स्वास्थ्य बीमा योजनाएं आवश्यक तौर पर अस्पताल में भर्ती मरीजों की स्वास्थ्य संबंधी देखरेख पर केंद्रित हैं। बहिरंग रोगियों की स्वास्थ्य सुविधाओं का लागत, मोटे तौर पर, अब तक मरीजों को ही पहले वहन करनी पड़ती हैं, जिसकी बाद में प्रतिपूर्ति कर दी जाती है। बहुत से अध्ययनों में स्वास्थ्य सुविधाओं पर होने वाले बेतहाशा खर्च और गरीबी में विशेष कर ग्रामीण भारत में सकारात्मक पारस्परिक संबंध दर्शाया गया है। भारत सरकार नए सिरे से तैयार जन औषधि कार्यक्रम के माध्यम से बड़े पैमाने पर जेनरिक दवाओं को प्रोत्साहन देने की योजना बना रही हैं

भारत में स्वास्थ्य सुविधाओं पर डीडीपी का 4.1 प्रतिशत भाग खर्च होता है, जबकि इसका वैश्विक औसत 5 से 6 प्रतिशत है। इतना ही नहीं, सरकार की हिस्सेदारी सिर्फ 1.04 प्रतिशत (केंद्र सरकार 0.34 प्रतिशत और राज्य सरकार 0.70 प्रतिशत) है, जो केंद्र सरकार की ओर से प्रति व्यक्ति सालाना खर्च 325 रुपये और सभी राज्यों का सम्मिलित प्रति व्यक्ति सालाना खर्च 632 रुपये बैठता है। यदि हम किफायती औषधियों सहित सभी के लिए

किफायती स्वास्थ्य सुविधाएं सुनिश्चित करना चाहते हैं, तो स्वास्थ्य सुविधाओं संबंध जरूरतों पर सरकार के खर्च में महत्वपूर्ण वृद्धि किए जाने की जरूरत है। वर्तमान में राष्ट्रीय कार्यक्रय कार्यक्रम समस्त मौतों में से 10 प्रतिशत से भी कम और समस्त रुग्णताओं के 15 प्रतिशत को सम्पूर्ण कवरेज उपलब्ध कराते हैं, इसके अलावा 75 प्रतिशत संचारी रोग राष्ट्रीय स्वास्थ्य कार्यक्रमों का भाग नहीं हैं। जबकि देश पर बीमारियों के समग्र बोझ में गैर–संचारी रोगों की हिस्सेदारी करीब 40 प्रतिशत है।

हाल ही में एनपीपीए के पास औषधि उत्पादन, आयात, उपलब्धता, बिक्री और मूल्यों के बारे में अपने आंकड़े नहीं थे। वह औषधियों की बिक्री और मूल्य संबंधी आंकड़ों के लिए पूर्णतया आईएमएस स्वास्थ्य के आंकड़ों और फार्माट्रेक पर निर्भर था, जिनमें गम्भीर खामी थी, क्योंकि ये नमूनों पर आधारित थे और पूरी तरह वैध नहीं थे। एनपीपीए ने राष्ट्रीय सूचना विज्ञान केन्द्र की सहायता से अब विनिर्माताओं से सीधे आंकड़े प्राप्त करने की ऑनलाइन व्यवस्था तैयार की है। जो फॉर्मा प्राइसेज डाटा बैंक कहलाती है। पीपीडीबी से चूना को ऑनलाइन प्राप्त किया जा सकेगा और उसके बाद आंकड़ों का विश्लेषण किया जा सकेगा, जिससे एनपीपीए को अपने दायित्वों का प्रभावशाली रूप से निर्वहन करने में सहायता मिलेगी। यह व्यवस्था औषधि निर्माता कम्पनियों और उपभोक्ताओं के लिए भी लाभदाय होगी, क्योंकि कम्पनियों की रिपोर्टिंग सिस्टम तक बिना किसी परेशानी के पहुंच कायम होगी, जबकि उपभोक्ताओं की पहुंच समग्र मूल्य संबंधी आंकड़ों तक होगी, ताकि वे किफायती फैसले के बारे में सुविज्ञ निर्णय ले सकें।

अनुसूचित औषधियों के सीलिंग मूल्यों का निर्धारण किसी ऐसे नुस्खे के सभी ब्रांड्स के साधारण औसत मूल्य के आधार पर किया जाता है, जिनका बाजार में एक प्रतिशत और उससे अधिक अंश है। यदि कम्पनी किसी एक नुस्खे को एक से ज्यादा ब्रांड के नाम से बेचती है, तो उसकी बाजार में हिस्सेदारी तय करने के लिए उन सभी ब्रांड्स के शेयरों के कुल योग को ध्यान में रखा जाएगा। सीलिंग मूल्य प्राप्त करने के लिए फुटकर विक्रेता के मार्जिन के रूप में साधारण औसत मूल्य में सोलह प्रतिशत को जोड़ा जाएगा। सीलिंग मूल्य से अधिक दाम पर बेजे जाने वाले ब्रांड्स का मूल्य कम करके उन्हें सीलिंग मूल्य तक लाने की आवश्यकता होगी, लेकिन जो इससे कम में बेचे जा रहे हैं, उन्हें मूल्य को वर्तमान स्तर पर बनाए रखना होगा। सीलिंग मूल्य में स्थानीय करों को शामिल करके अधिकतम खुदरा मूल्य प्राप्त किया जा सकता है।

एनपीपीए द्वारा अधिसूचित मूल्य, अधिसूचना जारी होने वाली तिथि से ही तत्काल लागू हो जाते हैं। दूसरे शब्दों में, उस तिथि के बाद निर्मित होने वाली किसी भी खेप में संशोधित एमआरपी अवश्य होनी चाहिए। बाजार में मौजूदा संशोधित एमआरपी लागू होने से पहले के स्टॉक के लिए निर्माता को यह सुनिश्चित करना होगा कि वह उस स्टॉक वापस मंगवाये जाएं और उस पर नया एमआरपी छापकर उस स्टॉक को बाजार में दोबारा जारी किया जाए। वैसे, इस दौरान उपभोक्ता वर्तमान अधिसूचित मूल्य अथवा छपे हुए मूल्य, दोनों में से जो भी कम हो, पर औषधि प्राप्त कर सकता है। इसे कारगर रूप से लागू करने के लिए रिपोर्टिंग का प्रवर्तन और प्रदर्शित अपेक्षाओं को कड़ाई से लागू करना होगा। अनुसूचित औषधियों, दोनों के संदर्भ में वार्षिक मूल्य वृद्धि की अनुमति है। अनुसूचित औषधियों के संदर्भ में, एमआरपी पर, औद्योगिक नीति एवं संवर्द्धन विभाग द्वारा अधिसूचित पिछले

वर्ष के थोक मूल्य सूचकांक के प्रतिशत जितनी वार्षिक मूल्य वृद्धि किये जाने की अनुमति है, बशर्ते कि कम्पनी द्वारा राष्ट्रीय औषध मूल्य निर्धारण प्राधिकरण को वही अधिसूचित किया जा रहा हो। यदि डब्ल्यूपीआई नकारात्मक है, मूल्यों को कम करके उसी स्तर तक लाना होगा।

एनपीपीए अनुसूचित नुस्खों और अनुसूचित नुस्खों में निहित एपीआई की उपलब्धता की निगरानी के लिए उत्तरदायी है। अनुसूचित नुस्खों और अनुसूचित नुस्खों में इस्तेमाल किये गये एपीआई के सभी निर्माताओं को अपने उत्पादन, आयात और अनुसूचित/एनएलईएम औषधि की बिक्री के बारे में एनपीपीए को निर्धारित प्रारूप में तिमाही रिपोर्ट देनी होगी। उत्पादन बंद करने के इच्छुक अनुसूचित नुस्खों के किसी भी निर्माता को कम से कम छह महीने पहले सार्वजनिक नोटिस जारी करना होगा और ऐसा कदम उठाने का कारण बताते हुए एपीपीए से इसकी अनुमति भी लेनी होगी। एनपीपीए इस उद्देश्य के लिए पारदर्शक दिशा–निर्देशों का अनुसरण करता है।

देश में 10,000 से ज्यादा औषधि निर्माता होने के बावजूद यहां बाजार पर चंद कम्पनियों का नियंत्रण है। एमएटी के करीब 96 प्रतिशत के लिए शीर्ष 100 कम्पनियां उत्तरदायी हैं। लघु इकाइयों की भूमि कमोबेश बिना ब्रांड वाली जेनरिक औषधियों के उत्पादन और मझोले एवं बड़े निर्माताओं के लिए ब्रांडेड–जेनरिक औषधियों के अनुबंधित उत्पादन तक ही सीमित है। वर्ष 2014 के एक अध्ययन के अनुसार, 94 प्रतिशत अनुसूचित नुस्खे, जिनका सीलिंग मूल्य नियत किया जा चुका है, पर मार्किट लीडर का अंश 25 प्रतिशत से ज्यादा है, और 67 प्रतिशत में 50 प्रतिशत से ज्यादा है। बहुत से मामलों में मार्किट लीडर, मूल्य लीडर भी है। ये सभी तथ्य देश के औषधि निर्माण क्षेत्र में मौजूद बाजार की खामियों की ओर संकेत करते हैं। किसी अनुसूचित औषधि का वर्तमान निर्माता उसे किसी अन्य अनुसूचित अथवा गैर–अनुसूचित औषधि के साथ मिश्रित करके अथवा अनुसूचित औषधि की खुराक अथवा ताकत अथवा दोनों को बदलकर नयी औषधि का प्रारम्भ करता है, तो उसे इस औषधि को बाजार में उतारने से पहले एनपीपीए से अनुमति लेनी होगी। नयी औषधि के मूल्य का निर्धारण, नयी औषधि के पहले से बाजार में उपलब्ध होने की स्थिति में, मौजूदा ब्रांड्स के साधारण औसत मूल्य अथवा प्रस्तावित मूल्य, जो भी कम हो, को प्राप्त करके, अथवा औषधि के अब तक बाजार में उपलब्ध न होने पर किसी विशेषज्ञ समूह द्वारा कराये गये फॉर्माकोइकॉनोमिक्स अध्ययन के आधार पर किया जाएगा।

भारत में अधिकांश नयी औषधियां निश्चित औषधि मिश्रणों (एफडीसी) वाली हैं, जिनमें दो अथवा अधिक एपीआई का मिश्रण शामिल होता है। नतीजतन, यहां अन्य देशों की तुलना में बहुत अधिक एफडीसी मौजूद हैं। इतना ही नहीं, लांच से पहले से उसके उपचारात्मक महत्व का उचित प्रदर्शन नहीं किया जाता। हाल ही में, स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय और औषध महानियंत्रक भारत, (डीसीजीआई) ने एफडीसी के संदर्भ में निर्माण का लाइसेंस प्रदान करने के विषय में सभी राज्य औषधि नियंत्रकों (एसडीसी) के लिए दिशा–निर्देश जारी किये हैं। कानून के अनुसार, नयी औषधि के निर्माण का लाइसेंस जारी करने के लिए केन्द्रीय लाइसेंसिंग प्राधिकरण (सीएलए) एकमात्र सक्षम प्राधिकरण है, और औषधि के चार साल पुराना होने पर ही राज्य लाइसेंसिंग प्राधिकरण (एसएलए) औषधि एवं कॉस्मैटिक्स अधिनियम, 1940 के तहत लाइसेंस प्रदान कर सकता है, लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ एसडीसी द्वारा इसका उल्लंघन किया गया है।

देश में एफडीसी की समीक्षा और अतार्किक एफडीसी को हटाने के लिए एक केन्द्रीय समिति का गठन किया गया है। पेंटेंट वाली औषधियों, प्रक्रिया अथवा उत्पाद, स्वदेशी अनुसंधान एवं विकास के माध्यम से विकसित और नए डिलिवरी सिस्टम के साथ स्वदेशी अनुसंधान एवं विकास से विकसित, दोनों को व्यावसायिक उत्पादन शुरू होने की तिथि से लेकर 5 वर्ष की अवधि के लिए मूल्य नियंत्रण से छूट है। निर्माता को इस उद्देश्य के लिए एनपीपीए से विशेष तौर पर छूट प्राप्त करनी पड़ती है। अनुसूचित औषधियों के मूल्यों की निगरानी करता है। साथ ही साथ उन्हें उचित स्तर पर भी बनाए रखता है। हालांकि गैर–अनुसूचित औषधियां प्रत्यक्ष मूल्य नियंत्रण के दायरे में नहीं आतीं, इसके बावजूद उनके मूल्यों में सालाना 10 प्रतिशत (एमआरपी से एमआरपी) से अधिक वृद्धि नहीं की जा सकती। डीपीसीओ 2013 में प्रत्येक औषधि निर्माता के लिए पैक पर एमआरपी प्रदर्शित करने और डीलर्स, एसडीसी और एनपीपीए को मूल्य सूची जारी के विशिष्ट प्रावधान किये गये हैं। इसी तरह, प्रत्येक फुटकर विक्रेता को भी विशिष्ट जगह पर औषधियों के मूल्य प्रदर्शित करने होते हैं। इसके अलावा, एनपीपीए अनुसूचित/एनएलईएम औषधियों के लिए विशिष्ट चिन्ह शुरू करने का प्रयास कर रहा है, ताकि उपभोक्ता आसानी से एनएलईएम औषधि की पहचान कर सकें, जो प्रभावी और सस्ती दोनों प्रकार की होती है।

भारत में डॉक्टर और मरीज के बीच सूचनाओं की बेहद असमानता है। इसके लिए मुख्य रूप से मानक उपचार दिशा–निर्देशों का अभाव, औषधि निर्माण कम्पनी द्वारा लेबल संबंधी अनिवार्यताओं का दुरूपयोग और आपूर्तिकर्ता से प्रेरित (डॉक्टरों को प्रभावित करके) औषधि की मांग जैसे कारण उत्तरदायी हैं। एनपीपीए उपभोक्ता मामलों संबंधी विभाग के सहयोग से मरीजों को शिक्षित एवं सशक्त बनाने के लिए अभियान चला रहा है, ताकि वे किफायती उपचार के बारे में सुविज्ञ निर्णय ले सकें।

जेनरिक औषधि, औषधीय एवं उपचारात्मक रूप से ब्रांडेड औषधि के बराबर होती है जिसका आशय है कि वह खुराक, ताकत, प्रदर्शन और इस्तेमाल के मामले में ब्रांडेड औषधि जैसा ही काम करती है और गुणवत्ता एवं सुरक्षा मानकों के संदर्भ में भी ब्रांडेड औषधि के ही समान होती है। खोज संबंधी लागत न होने (प्रतिरूपित औषधि होने के नाते) और जबर्दस्त प्रतिस्पर्धा होने की वजह से जेनरिक औषधि की लागत ब्रांडेड औषधि के मुकाबले नाममात्र की होती है। जेनरिक औषधियां किफायती और चिकित्सकीय रूप से प्रभावी होती हैं, इसलिए ज्यादातर देशों ने इन्हें बढ़ावा देने के लिए प्रभावी कदम उठाये हैं। मिसाल के तौर पर अमरीका में, जहां मूल्य नियंत्रण नहीं है, जेनरिक औषधियों की बदौलत औषधियों पर होने वाले खर्च में महत्वपूर्ण कमी आयी है। वर्ष 2013, में अमरीका में औषधियों पर कुल खर्च करीब 325 बिलियन अमरीकी डॉलर (प्रति व्यक्ति खर्च करीब 1000 अमरीकी डॉलर सालाना) था। उपयोग की गई 84 प्रतिशत औषधियां जेनरिक थीं और मात्र 16 प्रतिशत ब्रांडेड अथवा पेंटेंट वाली औषधियां थीं।

जेनरिक औषधियां, मूल्य के मात्र 26 प्रतिशत के लिए उत्तरदायी हैं जबकि ब्रांडेड औषधियां मूल्य के 72 प्रतिशत के लिए उत्तरदायी हैं। बहुत से देशों में जेनरिक स्पर्धा के कारण औषधि निर्माण संबंधी खर्च की औसत सालाना वृद्धि में सही मायनों में कमी आयी है। भारत में बिना ब्रांड वाली जेनरिक औषधियों का अंश ज्यादा महत्वपूर्ण नहीं है, लेकिन नये जन औषधि अभियान से जेनरिक औषधियों को मुख्यधारा में लाते हुए जबर्दस्त बदलाव लाए जाने की सम्भावना है, ऐसा

होने पर औषधियां बेहद किफायती हो जाएंगी। जेनरिक औषधियों को बढ़ावा देने के लिए कई तरह के उपाय किये जाने की जरूरत है। प्रथम, ऐसे सहयोगपूर्ण कानून की जरूरत है, जो प्रसक्रिप्शन्स में जेनरिक नाम लिखने को अनिवार्य बनाए, औषधि विक्रेता द्वारा जेनरिक अंशदान के लिए कानूनी आधार उपलब्ध कराया जाए, औषधियों के लिए कड़ी लेबलिंग आवश्यकताओं को निर्दिष्ट किया जाए। दूसरा, औषधि की गुणवत्ता परीक्षण क्षमता और औषधि आउटलेट निरीक्षण क्षमता को बेहतर बनाते हुए गुणवत्ता आश्वासन क्षमता में वृद्धि की जाए। तीसरा, जेनरिक औषधियां के संदर्भ में व्यावसायिक एवं सार्वजनिक स्वीकृति दी जाए। चौथा, औषधियों के मूल्यों के संबंध में सूचना का प्रसार सुनिश्चित किया जाए और पांचवां, संदर्भ मूल्य निर्धारण एवं प्रतिपूर्ति नीतियों, खुदरा मूल्य नियंत्रणों एवं जेनरिक औषधियों के निर्माण को बढ़ावा देने के लिए औषधि निर्माण उद्योग को प्रोत्साहन देने जैसे आर्थिक उपकरणों के माध्यमों का इस्तेमाल किया जाए।

जहां औषधि को अधिसूचित/स्वीकृत मूल्य से अधिक दाम पर बेचा जाता है, तो वहां अधिप्रभार लागू होता है। अधिप्रारित राशि की ब्याज सहित वसूली की जाती है। नयी औषधि के मामले में, जहां एनपीपीए द्वारा विशिष्ट तौर पर पूर्व मूल्य स्वीकृति प्रदान की गई है, वहां जुर्माना (अधिप्रभारित राशि और ब्याज के अतिरिक्त) लगाने का भी प्रावधान है। डीपीसीओ 1995 और 2013 के अंतर्गत, उनके प्रारम्भ से, अधिभार के हजार से अधिक मामले दर्ज किये गये हैं, जिनकी कुल मांग करीब 4000 करोड़ रुपये हैं, जिसमें से अब तक मात्र 10 प्रतिशत की ही वसूली हो सकी है और शेष राशि विवादित हैं पिछले वित्त वर्ष के दौरान, करीब 100 करोड़ रुपये की वसूली की गई।

स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय ने औषधि एवं कॉस्मैटिक्स अधिनियम, 1940 के अंतर्गत 22 चिकित्सा उपकरणों को अधिसूचित किया है। वर्तमान में, परिवार नियोजन उपकरणों के अलावा शेष मूल्य नियंत्रण के अंतर्गत नहीं हैं। कार्डिक स्टेट्स और ऑर्थोपीडिक इंप्लांट्स जैसे चिकित्सा उपकरणों को मूल्य नियंत्रण के दायरे में लाने पर व्यापक रूप से विचार किया जा रहा है। कुछ महंगी औषधियां खुदरा बाजार में उपलब्ध नहीं है और वे सीधे तौर पर अस्पतालों और नर्सिंग होम्स को बेची जाती हैं। सामान्य तौर पर यह देखा गया है कि ये औषधियां अस्पतालों/नर्सिंग होम्स को भारी छूट/रिबेट पर बेची जाती हैं, जिनका लाभ उपभोक्ता को विरले ही मिलता है। बेबस मरीजों का शोषण रोकने के लिए इस क्षेत्र पर फौरन ध्यान दिये जाने की जरूरत है।

निष्कर्ष–उपरोक्त तथ्यों के अनुसार कहा जा सकता है कि एनपीपीए एवं स्वतंत्र औषधि मूल्य नियामक है, जो सभी को आवश्यक एवं जीवनरक्षक औषधियां किफायती दामों पर उपलब्ध कराने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

संदर्भ–

1. रीता कपूर अनुवाद–अध्यक्ष, राष्ट्रीय औषध मूल्य निर्धारण प्राधिकरण।
2. इंजेटी श्रीनवास–भारत में औषधि मूल्य नियंत्रण प्रणाली–कुरुक्षेत्र जुलाई–2015
3. स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार की अधिकृत वेबसाइट
4. http:èèwww.planningcommission-nic-inèreportsègenrepèbkpap2020è26_bg2020-pdf

SHODH CHETNA – YEAR-2 (JAN. TO MARCH, 2016) VOL. 1
ISSN : 2350-0441

प्राचीन भारत की ग्राम पंचायतों का आधुनिक पंचायतीराज व्यवस्था पर प्रभाव

❐ डा. नीरज मिश्रा

शोध सारांश

1946 में संविधान सभा के गठन के बाद जब भारत के नये संविधान पर विचार हो रहा था उस समय एक सुझाव यह दिया गया कि ग्राम पंचायतों को भारत की संविधानिक व्यवस्था का आधार बनाया जाय और प्रान्तीय विधानसभाओं एवं केन्द्रीय संसद के निर्वाचनों के लिए उन्हें निर्देशित तत्त्वों में पंचायतों के सम्बन्ध में एक अनुच्छेद जोड़ दिया जाय। इसमें कहा गया है कि राज्य ग्राम पंचायतों का संगठन के सम्बन्ध में एक अनुच्छेद जोड़ दिया गया जिसमें कहा गया है कि, राज्य ग्राम पंचायतों को संगठित करेगा और उन्हें ऐसी शक्तियाँ देगा जिससे वे स्वशासन की इकाई के रूप में कार्य कर सकें। संविधान लागू होने के बाद विभिन्न राज्यों में पंचायतों का गठन किया गया किन्तु उन्हें अधिक अधिकार प्राप्त न थे। 1950 के दशक के अन्तिम वर्षों में पंचायतों का नये सिरे से गठन करने की प्रक्रिया शुरू हुई। इसके पूर्व ग्रामीण क्षेत्र का सर्वतोन्मुखी विकास करने के उद्देश्य से सामुदायिक योजना लागू की गई।

प्राचीन भारत की ग्राम पंचायतें, आधुनिक भारत के नेताओं और बुद्धिजीवियों के लिए प्रेरणा का स्रोत रही हैं। उन दिनों के ग्राम समुदाय लगभग आत्मनिर्भर और स्वायत्त थे। ग्रामों का काम पंचायतों द्वारा चलता था।

बीच में परिवर्तन हुए और ब्रिटिश सत्ता की स्थापना के समय तक पंचायतों का पुराना रूप लुप्त हो चुका था। उन्नीसवीं सदी के अन्त में स्थानीय स्वायत्त शासन की संस्थाओं को पुनर्जीवित करने का प्रयास किया गया। तत्कालीन वाइसराय लार्ड रिपन के प्रयास से 1882 में इस विषय पर एक प्रस्ताव पारित हुआ जिसके अन्तर्गत नगर पालिकाओं और जिला बोर्डो की स्थापना की गयी। इन्हें स्थानीय सड़कों, पाठशालाओं और चिकित्सालयों आदि के सम्बन्ध में अधिकार दिये गये। कुछ जगह ग्राम पंचायतों के सम्बन्ध में भी कानून पास किये गये और उनकी स्थापना हुई। इन सुधारों का उद्देश्य प्रशासन में सुधार लाना नहीं बल्कि जनता को लोकतंत्र की शिक्षा देना था। लेकिन इन पर सरकारी नियंत्रण इतना अधिक था कि संस्थाएँ सफलतापूर्वक कार्य न कर सकीं।

राष्ट्रीय आन्दोलन के समय गाँधी ने भारत की भावी राजनीतिक व्यवस्था के सम्बन्ध में एक चित्र प्रस्तुत किया था। वे चाहते थे कि स्वतंत्र भारत की राजनीतिक व्यवस्था विकेन्द्रीकरण पर आधारित हो और यथासम्भव आत्मनिर्भर स्वायत्त ग्राम समुदायों को उसमें महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त रहे। 1937 में जब 1935 के अधिनियम के अन्तर्गत प्रान्तीय स्वायत्तता लागू हुई तो कांग्रेस शासित प्रान्तों में पंचायतों की स्थापना की गई। उन दिनों महात्मा गाँधी के विचारों की इतनी लोकप्रियता थी कि 1946 में संविधान सभा के गठन के बाद जब भारत के नये संविधान पर

* शास. महाविद्यालय मानपुर जिला उमरिया (म.प्र.)

विचार हो रहा था उस समय एक सुझाव यह दिया गया कि ग्राम पंचायतों को भारत की सांविधानिक व्यवस्था का आधार बनाया जाय और प्रान्तीय विधान सभाओं एवं केन्द्रीय संसद के निर्वाचनों के लिए उन्हें निर्देशक तत्वों में पंचायतों के सम्बन्ध में एक अनुच्छेद जोड़ दिया गया। इसमें कहा गया है कि राज्य ग्राम पंचायतों का संगठन करेगा और उन्हें ऐसी शक्तियाँ देगा जिससे वे स्वशासन की इकाई के रूप में कार्य कर सकें। संविधान लागू होने के बाद विभिन्न राज्यों में पंचायतों का गठन किया गया किन्तु उन्हें अधिक अधिकार प्राप्त न थे।

1950 के दशक के अन्तिम वर्षों में पंचायतों का नये सिरे से गठन करने की प्रक्रिया शुरू हुई। इसके पूर्व ग्रामीण क्षेत्र का सर्वतोन्मुखी विकास करने के उद्देश्य से सामुदायिक विकास योजना लागू की गई थी। उसकी असफलता के कारणों का पता लगाने के लिए 1957 में श्री बलवन्तराय मेहता की अध्यक्षता में एक समिति गठित की गई। मेहता समिति का निष्कर्ष था कि सामुदायिक विकास योजना असफल इसलिए हुई है क्योंकि उसके क्रियान्वयन ने स्थानीय लोगों का उत्साहपूर्ण सहयोग प्राप्त नहीं हुआ है। समिति का विचार था कि जब तक स्थानीय स्तर पर लोकतंत्रात्मक संस्था नहीं गठित की जाती और उसे ग्रामीण विकास की जिम्मेदारी नहीं दी जाती तथा उसके लिए आवश्यक शक्ति और साधन उपलब्ध नहीं कराये जाते तब तक विकास कार्यों में न तो स्थानीय लोगों का सहयोग ही प्राप्त होगा और न उनमें स्वयं काम करने की भवना ही जागृत होगी। अस्तु, समिति ने इन संस्थाओं का तीन स्तरों—ग्राम, ब्लाक और जिला—पर नये तरीके से गठन का सुझाव दिया।

1958 के बाद विभिन्न राज्यों में पंचायतीराज का जो गठन किया गया वह सामान्यतया मेहता समिति की सिफारिशों के ही अनुसार था। इस ढांचे में प्रथम संस्था ग्राम सभा थी। यह वास्तव में ग्राम पंचायत क्षेत्र में आने वाले सभी वयस्कों की सभा थी। इसकी कार्यकारिणी ग्राम पंचायत थी जिसके सदस्यों का चुनाव विभिन्न वार्डों से होता था। इसमें कुछ स्थान अनुसूचित जातियों, जनजातियों और महिलाओं के लिए सुरक्षित रहते थे। ग्राम पंचायत के सरपंच का चुनाव कहीं तो ग्राम सभा द्वारा और कहीं पंचायत के निर्वाचित सदस्यों द्वारा होता था। पंचायतों को सफाई आदि नागरिक कार्यों के अतिरिक्त ग्रामीण विकास के कार्य भी सौंपे गये थे तथा उन्हें कुछ कर लगाने के अधिकार थे। उन्हें राज्य शासन से अनुदान भी मिलता था। ग्राम पंचायत के ऊपर जो संस्था थी, उसका गठन ब्लाक स्तर पर होता था। उसे पंचायत समिति या जनपद सभा कहते थे। पंचायत समिति के सदस्यों को चुनाव कहीं तो ग्राम सभाओं द्वारा प्रत्यक्ष तरीके से और कहीं सरपंचों द्वारा अप्रत्यक्ष तरीके से होता था। इसमें भी ग्राम पंचायत की तरह आरक्षण की व्यवस्था थी। पंचायतीराज के इस ढांचे में पंचायत समिति को केन्द्रीय स्थान प्राप्त था। सामुदायिक विकास कार्यक्रम को कार्यान्वित करने की जिम्मेदारी उसी पर थी। खण्ड विकास अधिकारी या बी.डी.ओ. पंचायत समिति का कार्यकारी अधिकारी था। ब्लाक बजट की धनराशि पर उसी का नियंत्रण था। उसे कुछ कर लगाने के भी अधिकार थे। जिला स्तर पंचायतीराज की संस्था का नाम जिला परिषद था। पंचायत समितियों के अध्यक्ष इसके पदेन सदस्य होते थे। कुछ और सदस्य पंचायत समितियों या ग्राम सभाओं द्वारा चुने जाते थे। आरक्षण की भी व्यवस्था थी। अधिकांश राज्यों में जिला परिषद् पंचायत समितियों के कार्यों में सामंजस्य स्थापित करने का कार्य करती थी। कुछ में उसे प्रत्यक्ष उत्तरदायित्व दिया गया था। सभी राज्यों में पंचायतीराज कानूनों के अंतर्गत राज्य सरकार को इन संस्थाओं की देख-रेख और कुछ हद तक उन पर नियंत्रण का अधिकार था। वह उन्हें निलम्बित भी कर सकती थी।

मेहता समिति ने आशा व्यक्त की थी कि पंचायतीराज के द्वारा व्यंजनाओं के निर्माण और उनके क्रियान्वयन में जनता का उत्साहपूर्ण सहयोग प्राप्त होगा और विकास के कार्य पूर्व की अपेक्षा अधिक अच्छी तरह हो सकेंगे। यह आशा पूरी नहीं हुई क्योंकि नये ढाँचे में भी पंचायतीराज

संस्थाओं को न तो स्पष्ट उत्तरदायित्व दिया गया था और न साधन ही उपलब्ध कराये गये थे। यद्यपि इन संस्थाओं के माध्यम से लोगों के सामाजिक विचार कुछ आधुनिक हुए और ग्रामीण क्षेत्र का वातावरण कुछ लोकतंत्रीय हुआ तथापि इन संस्थाओं को ऐसी निकायों की प्रतिष्ठा प्राप्त न हो सकी जो जनता की आवश्यकताओं और आकांक्षाओं के प्रति जागरुक हों तथा अपने बल पर टिकी रह सकें। इसी बीच लोकतंत्र के कार्यान्वयन के फलस्वरूप राजनीतिक चेतना का अत्यधिक विकास हुआ था लोगों की आकांक्षाओं में भारी वृद्धि हुई। इससे नई समस्याएँ उत्पन्न हो रही थीं। भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्री राजीव गाँधी के कार्यकाल में इन पर गंभीरतापूर्वक विचार किया गया तथा यह आवश्यक समझा गया कि स्थानीय लोगों की अपनी इच्छानुसार शासन करने तथा अपनी समस्याओं को सुलझाने का अधिकार दिया जाना चाहिये। इसके लिए यह निर्णय लिया गया कि पंचायती राज का पुनर्गठन किया जाय और उसके लिए संविधान में ही स्पष्ट प्राविधान जोड़े जाय। ऐसा इसलिए किया गया क्योंकि स्थानीय स्वायत्त शासन का विषय संविधान के अन्तर्गत राज्य सूची में है। अतः उस पर कानून बनाने का अधिकार केवल राज्यों को ही है। संघ सरकार संविधान में संशोधन करके ही पूरे देश के लिए कोई योजना दे सकती थी। ऐसा सविधान तिहत्तरवां एवं चौहत्तरवां संशोधन अधिनियत 1992 द्वारा किया गया है। संविधान में दो नये भाग-भाग IX और IX - अ जोड़े गये हैं। भाग IX पंचायतों से और भाग IX - अ नगरपालिकाओं से सम्बन्धित हैं। दोनों के प्राविधान लगभग एक तरह हैं। योजना का क्रियान्वयन राज्यों द्वारा अपने कानूनों में संशोधन या नये कानून बना कर होना है।

भाग IX में वर्णित पंचायतीराज की योजना के अनुसार पंचायतों का गठन तीन स्तरों पर ग्राम पंचायत, जनपद पंचायत और जिला पंचायत किया जाता है। पंचायतों के सभी पद ग्राम सभा द्वारा प्रत्यक्ष निर्वाचन से भरे जायेंगे। ग्राम सभा में पंचायत क्षेत्र में आने वाले सभी वयस्क लोग होंगे।

संविधान के 73वें संशोधन द्वारा ग्राम सभा को संवैधानिक मान्यता प्रदान की गई है। ग्राम सभा एक प्रकार से ग्राम पंचायत की विधान सभा है, जिसका गाँव के सभी मामलों और समस्याओं पर चर्चा कर निर्णय लेने का उत्तरदायित्व है। ग्राम सभा द्वारा लिए निर्णयों की क्रियान्वित की जिम्मेदारी ग्राम पंचायत की होती है। पंचायत क्षेत्र में रहने वाले सभी मतदाता ग्राम सभा के सदस्य होते हैं। प्रत्येक वर्ष में कम-से-कम चार बार ग्राम सभा की बैठक आयोजित करना अनिवार्य होता है। विकास कार्यों की रूपरेखा तथा प्राथमिकताएँ ग्रामसभा में तय की जाती है। ग्राम पंचायत का बजट तथा वार्षिक व्यय विवरण आदि का भी इसके द्वारा अनुमोदन किया जाना आवश्यक होता है। वास्तव में ग्राम सभा स्थानीय स्वशासन की नींव तथा लोकतंत्र का आधार कही जा सकती है।

प्रत्येक पंचायत का एक अध्यक्ष होगा जिसका चुनाव राज्य द्वारा पास किये गये कानून के अनुसार होगा। प्रत्येक पंचायत में अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति के लोगों के लिए उनकी जनसंख्या के अनुपात से स्थान आरक्षित रहेंगे। पंचायत में एक तिहाई स्थान महिलाओं के लिए भी आरक्षित रहेंगे। अध्यक्ष के पदों के लिए भी आरक्षण की ऐसी व्यवस्था की जा सकती है। राज्य के कानून द्वारा पिछड़ा वर्ग के लिए भी पंचायत में आरक्षण किया जा सकता है पंचायत का कार्यकाल पांच वर्ष होगा। उसके पूर्व उसे विघटित किया जा सकता है किन्तु छः माह के अन्दर चुनाव होने चाहिये। प्रत्येक व्यक्ति जो राज्य विधान सभा का सदस्य होने की पात्रता रखता हो पंचायत का सदस्य हो सकता है। अन्तर केवल यह है कि पंचायत की सदस्यता के लिए आयु की सीमा 21 वर्ष रखी गई है जबकि विधान सभा के लिए वह 25 वर्ष है। पंचायतों को वे सभी अधिकार होंगे जो राज्य सरकार अपने कानून द्वारा उन्हें दे जिससे वे स्वशासन की संस्थाओं के रूप में काम कर सकें। साथ ही उन्हें ग्यारहवीं अनुसूची में दिये गये विषयों में अधिकार होंगे।

इस अनुसूची में उन्नीस विषय दिये गये हैं, जैसे भूमि विकास, छोटी सिंचाई, पशुपालन, मीन क्षेत्र (फिशरीज), शिक्षा, महिला एवं बाल विकास इत्यादि। इस प्रकार ग्यारहवीं अनुसूची द्वारा राज्य सरकार और पंचायतों के बीच उसी प्रकार अधिकारों को कर लगाने के अधिकार होंगे तथा उन्हें राज्य सरकार द्वारा अनुदान और राज्य के करों से प्राप्त आय में हिस्सा भी दिया जा सकता है। एक वित्त आयोग हर पांच वर्ष में पंचायतों को वित्तीय स्थिति का उसी प्रकार पुनरीक्षण करेगा जिस प्रकार केन्द्रीय वित्त आयोग संघ और राज्यों के सम्बन्ध में करता है। पंचायतों के सभी चुनाव राज्य निर्वाचन आयोग द्वारा कराये जाते हैं। इस तरह भारत में प्राचीन काल की पंचायत व्यवस्था को 73वें संविधान संशोधन द्वारा पुनर्जीवित करने का प्रयास किया गया है।

भारतीय संविधान का तिहत्तरवां संशोधन भारत के ग्रामीण समुदाय में युगान्तर परिवर्तन प्रस्फुटित करने का क्रान्तिकारी कदम है। यह मौलिक परिवर्तन से अधिक वैचारिक परिवर्तन का पक्षधर है। यह संशोधन भारतीय समाज में सामाजिक सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनैतिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक परिवर्तन का सूत्रधार है। मध्यप्रदेश को वह प्रथम राज्य बनाने का गौरव प्राप्त हुआ है, जिसने इस संविधान संशोधन की मूल आत्मा के अनुरूप मध्यप्रदेश पंचायत राज अधिनियम 1993 (मध्यप्रदेश अधिनियम क्रमांक 1 सन् 1994) तथा मध्यप्रदेश पंचायत निर्वाचन नियम 1994 का निर्माण कर 1994 में त्रिस्तरीय पंचायतों के निर्वाचन सम्पन्न कराये हैं। प्रदेश में इन संस्थाओं का दूसरी बार निर्वाचन भी 1999 में हो चुका है। भारतीय समाज परम्परागत बंद समाज है, जिसमें सामाजिक संरचना एवं प्रकार्य दोनों मिलकर सामाजिक व्यवस्था का निर्माण करते हैं। 1994 तथा 1999 के पंचायत निर्वाचनों ने ग्रामीण नेतृत्व को परिवर्तित कर अद्‌भुत गतिशीलता का परिचय दिया है जिससे सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक क्षेत्रों में परिवर्तन आ रहा है। पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं, अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों तथा अन्य पिछड़े वर्गों के लिए स्थान का आरक्षण दिया जाकर सत्ता में उनकी भागीदारी सुनिश्चित की गई है। त्रिस्तरीय पंचायती राज संस्थाओं में आरक्षण की इस व्यवस्था से विकास एवं प्रशासन की बागडोर अब समाज के कमजोर वर्ग के हाथों में जिस सीमा तक आई है उससे विभिन्न सामाजिक क्षेत्रों में परिवर्तन परिलक्षित हो रहे हैं। चहारदीवारी में बंदी महिलायें आज पंचायती राज संस्थाओं में दायित्वपूर्ण पदों को संभाल रही है। तथा समाज की अनेक कुरीतियाँ दूर हो रही है। अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों को तो 1952 से ही भारतीय संसद तथा राज्य की व्यवस्थापिकाओं में उनकी आबादी के आधार पर आरक्षण प्राप्त है किन्तु महिलाओं तथा पिछड़े वर्गों के लिए स्पष्ट रूप से आरक्षण की व्यवस्था पंचायती राज संस्थाओं में 73वें संविधान संशोधन के माध्यम से की गई है। इससे निरंतर निर्वाचन एवं विकास तथा प्रशासन में भाग लेने से ग्रामीण समाज में छिपी हुई आंतरिक क्षमता, दक्षता, प्रतिभा एवं गुणों का शनैःशनै विकास होगा जहाँ विश्व में निर्वाचित संसदीय पदों पर महिलाओं का प्रतिशत 1988 में 14.8 से घटकर 1995 में मात्र 11.3 प्रतिशत रह गया, पोलैंड में 1980 में 23 प्रतिशत से घटकर 1989 में 13.5 प्रतिशत रह गया, रोमानिया में 1985 के 34 प्रतिशत से घटकर 1990 में 3 प्रतिशत रह गया, हंगरी में 1989 के 30.1 प्रतिशत से घटकर 1990 में 7.3 प्रतिशत रह गया, वहाँ पंचायतों के स्तर पर महिलाओं की मध्यप्रदेश में इतनी सशक्त भागीदारी ग्रासरूट डेमोक्रेसी के बेहतर सामाजिक आधार को प्रकट करती है। नगरीय निकायों में महिला पार्षदों के मामलों में मध्यप्रदेश का स्था तमिलनाडु के बाद देश में दूसरे क्रम पर है। सम्पूर्ण भारत में नगरीय निकायों में महिला जनप्रतिनिधियों की संख्या 18956 है। इनमें से 4675 तमिलनाडु में है और 2292 मध्यप्रदेश में है। पंचायतें महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी के लिए पहली पाठशाला का काम कर रही है। प्रसिद्ध समाज वैज्ञानिक मुक्ति श्रीवास्तव की

मान्यता है कि केवल में 1991 से ही आरक्षण प्रतिशत से अधिक महिला प्रतिनिधित्व पंचायतों में रहा जिसका श्रेय वहाँ की 86 प्रतिशत से अधिक (अब लगभग शत-प्रतिशत) महिला साक्षरता को दिया जाता रहा है, क्योंकि इसने महिलाओं को बाहरी दुनिया में खुलने (एक्सपोजर) का मौका दिया किन्तु मध्यप्रदेश में यह उपलब्धि राजनीतिक-सामाजिक प्रक्रिया की है जिसमें महिलाओं के राजनीतिक सशक्तीकरण के प्रश्न का आरक्षण कोटा पद्धति से तय किया गया है। केरल की पंचायतों में 30 प्रतिशत आरक्षण संविधान के 73वें संशोधन के पूर्व से ही था। यह सही है कि आरक्षण से महिला प्रतिनिधित्व कीसंख्या तो तय की जा सकती है, लेकिन गुणवत्ता नहीं। लेकिन क्या हम पुरुष प्रतिनिधित्व की गुणवत्ता तय कर सके हैं? वास्तव में परिणाम में परिवर्तन एक हद पर जाकर गुणात्मकता में परिवर्तन भी लाता है।

(अ) संन्दर्भ

(क) पुस्तकें

1. अरूणश्रीवास्तव : भारत में पंचायती राज, आर.वी.एस.ए. पब्लिशर्स, जयपुर, 1994.
2. आर.वी. जाथर : एवोल्यूशन ऑफ पंचायती राज इन इण्डिया (अंग्रेजी में), इंस्टीट्यूट ऑफ इकोनोमिक रिसर्च, धारवाड़ 1964.
3. एच.डी. मालवीय : विलेज पंचायत इन इण्डिया (अंग्रेजी में) अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी, 1956.
4. एक. ए. ऊमन : पंचायतस् एण्ड देयर फाइनेंस, सामाजिक विज्ञान संस्थान, नई दिल्ली, 1995.
5. एम. ए. ऊमन : डीवोल्यूशन ऑफ रिसोर्स फ्राम दि स्टेट टु दि पंचायती राज इंस्टीट्यूशन : सर्च फार ए नॉरमेटिव अपरोच, सामाजिक विज्ञान संस्थान, नई दिल्ली 1995.
6. एम.के. गांधी : पंचायत राज, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, 1919.
7. एस.के.डे. : पंचायती राज-ए सिंथिसिस, (अंग्रेजी में), एशिया पब्लिकेशन हाऊस, मुम्बई, 1961.
8. जार्ज मैथ्यू : स्टेट्स ऑफ पंचायती राज इन इण्डिया, (अंग्रेजी में), सामाजिक विज्ञान संस्थान, नई दिल्ली, 1994,
9. जार्ज मैथ्यू : पंचायतीराजः लेजिशलेशन टु मूवमेंट (अंग्रेजी में), सामाजिक विज्ञान सस्थान, नई दिल्ली, 1995.
10. जी रामरेड्डी : पैटर्नस ऑफ पंचायती राज इन इण्डिया, (अंग्रेजी में), मैक्सिलन कम्पनी ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली, 1977.

SHODH CHETNA – YEAR-2 (JAN. TO MARCH, 2016) VOL. 1
ISSN : 2350-0441

रीवा जिलान्तर्गत महाविद्यालयीन ग्रन्थालयों की स्थिति एवं शिक्षा पर प्रभाव

❒ रत्नेश सिंह बघेल*

शोध सारांश

शिक्षा मानव की मूलभूत आवश्यकता है। उसके बिना मानव का अस्तित्व नगण्य है। सृष्टि के आदिकाल से ही श्रेष्ठजनों द्वारा आगन्तुक पीढ़ी को शिक्षित करते रहने का उपक्रम चलता रहा है। उसके लिए समय समय पर पुस्तक लेखन और उनके ज्ञान के विकास हेतु वाचनालयों का विकास भी होता रहा है। यही कारण है कि आम धारणा बन गयी कि, यदि वाचनालय चलकर अध्ययन किया जायेगा तो उसके लिए आवश्यक सामग्री सहजतया उपलब्ध हो जायेगी। कालान्तर मे शिक्षालयों का स्वरूप बदला और ज्ञान की सामग्री का भण्डारण पुस्तकालयों के रूप मे किया जाने लगा। पुस्तकालयों का सीधा प्रभाव अध्येताओं और उस संस्था पर भी पड़ता है जहाँ सुव्यवस्थित पुस्तकालय होता है। इन्हीं विचारों से पूरित हो मैंने शिक्षा के क्षेत्र में पुस्तकालयों की वर्तमान दशा का रीवा जिले के विशेष सन्दर्भ में करने का निर्णय लिया और उपलब्ध सामग्री को लोकहित मे सार्वजनिक करने का निर्णय लिया।

वर्तमान समय में रीवा जिले में तीन प्रकार के महाविद्यालय स्थापित हैं, जिनमें (1) शासकीय, (2) अनुदान प्राप्त और (3) अशासकीय और गैर अनुदान प्राप्त अशासकीय महाविद्यालय संचालित है। ये महाविद्यालय निम्न है–

1. शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा
2. शासकीय आदर्श महाविद्यालय, रीवा
3. शासकीय माधव सदाशिव राव गोलवलकर महाविद्यालय, रीवा
4. शासकीय कन्या महाविद्यालय, रीवा
5. शासकीय विधि महाविद्यालय, रीवा
6. शासकीय व्यंकट संस्कृत महाविद्यालय, रीवा
7. शासकीय शहीद केदारनाथ स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मऊगंज, रीवा
8. शासकीय ठाकुर सोमेश्वर सिंह महाविद्यालय, नई गढ़ी, रीवा
9. शासकीय महाविद्यालय, रायपुर कर्चुलियान, रीवा
10. शासकीय महाविद्यालय, सेमरिया, रीवा
11. शासकीय स्वामी विवेकानन्द महाविद्यालय, त्यौंथर, रीवा
12. शासकीय महाविद्यालय, देवतलाब, रीवा
13. शासकीय महाविद्यालय, गोविन्दगढ़, रीवा
14. शासकीय महाविद्यालय, गुढ़, रीवा
15. शासकीय महाविद्यालय, मनगवाँ, रीवा

* अतिथि विद्वान-ग्रन्थालय, शास. स्वामी विवेकानन्द महाविद्यालय, त्योंथर, जिला–रीवा (म.प्र.)

स्वपोषित महाविद्यालयों में कुछ महाविद्यालयों को शासन अनुदान प्रदान करता है तथा कुछ महाविद्यालयों को अनुदान प्रदान नहीं करता। अनुदान प्राप्त महाविद्यालय निम्न है –

1. जनता महाविद्यालय, रीवा
2. नेहरू स्मारक महाविद्यालय, चाकघाट, रीवा
3. राजभान सिंह महाविद्यालय, मनिकवार, रीवा
4. सेठ रधुनाथ प्रसाद महाविद्यालय, हनुमना, रीवा
5. सुदर्शन महाविद्यालय, लालगाँव, रीवा
6. यमुना प्रसाद शास्त्री महाविद्यालय, सिरमौर, रीवा
7. उपाधि महाविद्यालय, सेमरिया, रीवा

गैर अनुदान प्राप्त अशासकीय महाविद्यालय निम्नानुसार है –

1. टी. डी. शिक्षा कालेज, चाकघाट, रीवा
2. श्री सांई कालेज आफ टेक्नोलॉजी एण्ड साइन्स, बैकुन्ठपुर, रीवा
3. रामबाई स्मृति कालेज, डभौरा, रीवा
4. श्री द्वारी प्रसाद यादव कालेज, डभौरा, रीवा
5. श्रीयुत महाविद्यालय, गंगेव, रीवा
6. स्वर्गीय जाहिद खान कालेज, गुढ़, रीवा
7. जनता कालेज, जनेह, रीवा
8. ईश्वरचन्द्र विद्यासागर महाविद्यालय, जवा, रीवा
9. ठाकुर सूर्य प्रताप सिंह महाविद्यालय, लक्ष्मणपुर, रीवा
10. टी. डी. शिक्षा महाविद्यालय, लक्ष्मणपुर, रीवा
11. एन. आई. टी. कालेज, मऊगंज, रीवा
12. टाटा कालेज, मऊगंज, रीवा
13. कालिका प्रसाद कन्या महाविद्यालय, पुष्पराज नगर, रीवा
14. अरूण तिवारी स्मृति महाविद्यालय, पहड़िया, रीवा
15. जे. एन. सी. टी. महाविद्यालय, रतहरा, रीवा
16. अवध डिग्री कालेज, रतहरा, रीवा
17. आई. पी. एस. कालेज, रीवा
18. महारानी लक्ष्मीबाई कालेज आफ टेक्नालॉजी, रीवा
19. सरस्वती विज्ञान महाविद्यालय, रीवा
20. विन्ध्याचल महाविद्यालय, रीवा
21. शारदा देवी कालेज, त्यौंथर, रीवा
22. श्री इन्स्टीट्यूट आफ प्रोफेशनल स्टडीज, उर्रहट, रीवा।
23. महाराणा प्रताप कालेज, उर्रहट, रीवा

उपरोक्त शासकीय अशासकीय महाविद्यालयों में शोधार्थी ने अपने अध्ययन में शासकीय महाविद्यालय के ग्रन्थालयों में कार्यरत ग्रन्थालय–कर्मियों की अर्थिक–सामाजिक स्थिति का अध्ययन किया है। इस अध्ययन के पूर्व संक्षेप में महाविद्यालय और उसके ग्रन्थालय के साथ–साथ ग्रन्थालय में कार्यरत ग्रन्थालयकर्मियों की संख्या की जानकारी आवश्यक है। इसका अध्ययन प्रस्तुत है।

शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा–

इस शताब्दी महाविद्यालय को रीवा के महाराजा रधुराज सिंह जूदेव ने सन् 1869 स्कूल के रूप में स्थापित किया था, जो रीवा राज्य का प्रथम स्कूल था। इस स्कूल को 1885 में दरवार हाई स्कूल में परिवर्तित कर दिया गया। प्रारम्भ में यह विद्यालय कलकत्ता विश्वविद्यालय से संबद्ध रहा। 1927 से इलाहाबाद विश्वविद्यालय से संबद्ध कर दिया गया। सेन्ट्रल बोर्ड आफ सेकेन्ड्री एजुकेशन, अजमेर के गठन के बाद हाईस्कूल की परीक्षायें सेन्ट्रल बोर्ड आफ सेकेन्ड्री एजुकेशन, अजमेर से सम्पादित होने लगी।

1935 से इस स्कूल का स्वरूप इन्टर कालेज में बदल दिया गया। 1945 से स्नातक महाविद्यालय में बदलकर स्नातकोत्तर महाविद्यालय के स्वरूप को प्रदान किया गया। वर्तमान में यह स्वशासी महाविद्यालय के स्वरूप को प्राप्त कर कालेज आफ एक्सीलेन्स के स्वरूप को प्राप्त करने वाला प्रदेश का गौरव युक्त महाविद्यालय में परिवर्तित हो गया।

वर्तमान में इस महाविद्यालय में परम्परागत विषयों में स्नातक, स्नातकोत्तर एवं शोध उपाधियों (एम.फिल. एवं पीएच.डी.) के संचालन के साथ–साथ सूचना प्रौद्यागिकी से सम्बन्धित उपाधियों का अध्ययन स्ववित्तीय के अर्न्तगत संचालित होने लगा है।

महाविद्यालय अपने विशाल भवन और सह–भवनों मे संचालित हो रहा है। सन् 1935 में रीवा दरबार हाई स्कूल को इण्टरमीडिएट महाविद्यालय का दर्जा दिया गया और विज्ञान संकाय के विभिन्न विभाग स्थापित किये गये। सन् 1943 में विज्ञान विषयों में स्नातक स्तर तथा 1956 में स्नातकोत्तर स्तर की कक्षाओं का संचालन प्रारम्भ की गयी। सन् 1958 में दरबार महाविद्यालय का नाम परिवर्तित कर शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय रखा गया। सन् 1964 में विज्ञान संकाय के विषयों को अलग कर शासकीय विज्ञान महाविद्यालय स्थापित कर दिया था। बीस वर्ष पश्चात् पुनः विज्ञान की स्नातक कक्षाओं का संचालन प्रारम्भ कर दिया।

महावविद्यालय में शासन द्वारा वर्तमान में अध्ययन–अध्यापन के साथ–साथ प्रशासनिक गतिविधियों के संचालन के लिये शैक्षिक एवं अशैक्षिक कर्मचारियों की एक सौ से अधिक की व्यवस्था की है। यहाँ कुछ पद रिक्त हैं। इन रिक्त पदों पर कर्मचारियों की व्यवस्था शासन द्वारा बनाई गई नीति के आधार पर की गई।

वर्तमान मे महाविद्यालय मे स्ववित्तीय व्यवस्था के अन्तर्गत कई विषयों में स्नातक, स्नातकोत्तर एवं शोध उपाधियों (एम.फिल. एवं पीएच.डी.) की कक्षाओं का संचालन किया जाने लगा है। इसे संचालित करने के लिये स्ववित्तीय एवं जनभागीदारी के मद से लगभग तीन सौ पचास से अधिक शैक्षणिक एवं अशैक्षणिक कर्मचारियों की व्यवस्था की गई है।

महाविद्यालय में कई सैकड़ा कम्प्यूटर वाई फाई से जुड़े इन्टरनेट की व्यवस्था के साथ कई प्रिन्टरों से युक्त है।

महाविद्यालय का ग्रन्थालय अपने आप में काफी पुराना है। यहाँ के सभी शैक्षणिक संस्थाओं के पुस्तकालयों का जनक इसी पुस्तकालय को माना जाता है। वर्तमान में इस महाविद्यालय में एक केन्द्रीय पुस्तकालय और शैक्षणिक विभागों मे विभागीय पुस्तकालय है। केन्द्रीय पुस्तकालय में एक लाख से अधिक पुस्तकों का संग्रह है। पुस्तकालय के संचालन के लिये एक ग्रन्थपाल, एक सहायक ग्रन्थपाल एवं बुक लिफ्टर के साथ कई सहायक कर्मचारी है।

शासकीय आदर्श महाविद्यालय, रीवा :

सन् 1935 में रीवा दरबार हाईस्कूल को इण्टरमीडिएट महाविद्यालय का दर्जा प्रदान कर विज्ञान संकाय के विभिन्न विभाग स्थापित किये गये। सन् 1943 में विज्ञान विषयों में स्नातक स्तर तथा 1956 में स्नातकोत्तर स्तर की कक्षायें संचालित की जाने लगी। सन् 1958 में दरबार महाविद्यालय का नाम परिवर्तित कर शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय रखा गया।

सन् 1964 में विज्ञान संकाय के विषयों के लिये अलग से शासकीय विज्ञान महाविद्यालय स्थापित किया गया। शासकीय विज्ञान महाविद्यालय

का भवन राजनिवास मार्ग के पास स्थित है। इस महाविद्यालय में भौतिकी, प्राणिशास्त्र, भू–गर्भ शास्त्र तथा सांख्यिकी में स्नातकोत्तर स्तर तक अध्ययन एवं शोध की सुविधायें उपलब्ध हैं। वर्तमान में स्ववित्तीय योजनान्तर्गत बायोसाइन्स से सम्बन्धित विषयों में स्नातक और स्नातकोत्तर कक्षाओं का संचालन किया जाने लगा है।

महाविद्यालय को संचालित करने के लिये पर्याप्त शैक्षणिक एवं अशैक्षणिक कर्मचारी शासन के द्वारा पदस्थ है।

महाविद्यालय का पुस्तकालय कम्प्यूटरीकृत एवं इंटरनेट की सुविधा से सम्पन्न है। पुस्तकालय प्रतिदिन कार्यदिवस मे प्रातः 8.00 बजे सायं 8.00 तक है। इसमें अध्ययन सामग्री के अन्तर्गत 60000 से अधिक पाठ्यपुस्तकें, 22 जर्नल्स, 05 पत्रिकाएँ, 06 समाचार–पत्र, 3000 संदर्भ एवं दुर्लभ ग्रंथ एवं 02 पत्रिकाएँ हैं। शोध छात्र/छात्राओं हेतु संदर्भ कक्ष स्थापित है। स्नातकोत्तर विद्यार्थियों के लिये विभागीय पुस्तकालय है। आरक्षित संवर्ग के विद्यार्थियों के लिये पृथक से बुक बैंक की सुविधा है। पुस्तकालय के संचालन के लिये एक पुस्तकालयाध्यक्ष, सहायक पुस्तकालयाध्यक्ष, बुक लिफ्टर के साथ अन्य सहायक कर्मचारी कार्यरत है।

शासकीय माधवसदाशिव राव गोलवलकर महाविद्यालय, रीवा :

इस महविद्यालय की स्थापना 1989 में हुई। इस महाविद्यालय की स्थापना विज्ञान विषयों (भौतिक शास्त्र, रसायनशास्त्र, गणित, कम्प्यूटर, वनस्पति विज्ञान, प्राणिशास्त्र, जैव प्रौद्योगिकी आदि) में अध्ययन–अध्यापन की गई है। महाविद्यालय में लगभ 26 शैक्षणिक एवं अशैक्षणिक कर्मचारी कार्यरत है।

महाविद्यालय के पुस्तकालय में पुस्तकों की अनुमानित संख्या 10000 है। महाविद्यालय में समाचार–पत्र एवं पत्रिकायें वाचानालय में अध्ययन हेतु उपलब्ध हैं। पुस्तकालय के संचालन के लिये एक पुस्तकालयाध्यक्ष, बुक लिफ्टर के साथ अन्य कर्मचारी कार्यरत है।

शासकीय कन्या महाविद्यालय, रीवा :–

04 अगस्त सन् 1961 को भारत की भूतपूर्व प्रधानमंत्री स्व. श्रीमती इंदिरा गांधी के कर–कमलों द्वारा शासकीय कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रीवा का विधिवत् उद्घाटन किया गया था। दिनांक 01 जुलाई 1961 से महाविद्यालय का प्रथम सत्र राष्ट्रीय राजमार्ग क्रमांक 07 के समीप स्थित प्रवीण कुमारी पाठशाला भवन में प्रारंभ हुआ था। महाविद्यालय दिसम्बर 1968 में कोठी कम्पाउण्ड स्थित वर्तमान भव्य भवन में स्थानांतरित हुआ और सफलता के नये सोपानों के साथ आज भी संचालित है। महाविद्यालय व्दारा बी.ए., बी.एससी., बी.काम. एम.ए. एम.काम., एम.एससी. आदि की कक्षाओं का संचालन किया जा रहा है।

महाविद्यालय को संचालित करने के लिये पर्याप्त शैक्षणिक एवं अशैक्षणिक कर्मचारी शासन के द्वारा पदस्थ है।

महाविद्यालय का पुस्तकालय कम्प्यूटरीकृत एवं इंटरनेट की सुविधा से सम्पन्न है। पुस्तकालय प्रतिदिन कार्यदिवस में प्रातः 8.00 बजे सायं 8.00 तक खुलता है। इसमें अध्ययन सामग्री के अन्तर्गत 30000 से अधिक पाठ्यपुस्तकें, 22 जर्नल्स, 05 पत्रिकाएँ, 06 समाचार–पत्र, 2125 संदर्भ एवं दुर्लभ ग्रंथ एवं 02 पत्रिकाएँ है। शोध छात्राओं हेतु संदर्भ कक्ष स्थापित हैं। स्नातकोत्तर विद्यार्थियों के लिये विभागीय पुस्तकालय है। आरक्षित संवर्ग के विद्यार्थियों के लिये पृथक् से बुक बैंक की सुविधा है। पुस्तकालय के संचालन के लिये एक पुस्तकालयाध्यक्ष, सहायक पुस्तकालयाध्यक्ष, बुक लिफ्टर के साथ अन्य कर्मचारी कार्यरत है।

शासकीय विधि महाविद्यालय, रीवा :–

महाविद्यालय राष्ट्रीय राजमार्ग क्रमांक 07 में स्थित रीवा शहर के उत्तर की ओर झिरिया के पास स्थित है। महाविद्यालय की पृथक स्थापना दिनांक 30 जून 2003 को मध्यप्रदेश शासन द्वारा की गई। स्थापना के पूर्व यह महाविद्यालय शासकीय ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा का अंग था। विधि संकाय सन् 1944 में प्रारम्भ हुआ जिसमें एलएल. बी. की कक्षाओं का संचालन होता था। एलएल.एम. की कक्षायें महाविद्यालय में सन् 1968–69 से प्रारम्भ हुई। भारतीय विधि परिषद् के परिपत्र द्वारा दिनांक 27 दिसम्बर 1996 से मान्यता प्राप्त है। महाविद्यालय मे एलएल.बी., एलएल.एम. की कक्षाओं का संचालन किया जाता है। महाविद्यालय में 18 शैक्षणिक एवं अशैक्षणिक पदों की स्वीकृति है।

महाविद्यालय के पुस्तकालय लगभग 10000 महत्वपूर्ण पुस्तकें हैं। पुस्तकालय को गुरु प्रसन्न सिंह (पूर्व मुख्य न्यायाधीश उच्च न्यायालय, जबलपुर) द्वारा भेंट स्वरूप प्राप्त हुई है। पुस्तकालय के संचालन के लिये एक पुस्तकालयाध्यक्ष, बुक लिफ्टर के साथ अन्य कर्मचारी कार्यरत है।

शासकीय शहीद केदारनाथ स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मऊगंज, रीवा :–

इस महाविद्यालय की स्थापना स्व. रामधनी मिश्र ने ग्राम–बरहटा, तहसील मऊगंज के स्वतंत्रता संग्राम सेनानी अमर शहीद स्व. केदारनाथ चतुर्वेदी के पावन स्मृति में अशासकीय महाविद्यालय के रूप में 1966 में किया। इस संस्था को मध्यप्रदेश शासन ने 13 जनवरी 1981 को शासनाधीन कर लिया। महाविद्यालय में कला, वाणिज्य, विज्ञान की स्नातक एवं स्नातकोत्तर की कक्षाओं के साथ–साथ विधि की स्नातक कक्षाओं का संचालन किया जाता है। महाविद्यालय का अपना स्वयं का भवन है जिसमें कुल 42 कक्ष, 07 प्रयोगिक कक्ष हैं। महाविद्यालय मे ब्राड बैण्ड इन्टरनेट कनेक्शन के साथ 04 कम्प्यूटर एवं तीन लेजर प्रिंटर है। महाविद्यालय में 35 शैक्षणिक/अशैक्षणिक पद स्वीकृत है जिसमें 20 शैक्षणिक/अशैक्षक कर्मचारी कार्यरत हैं। रिक्त पदों पर शासन के नियमानंसार नियुक्ति कर कार्य सम्पादित किया जा रहा है।

महाविद्यालय के लिये ग्रन्थालय के संचालन के लिये एक ग्रंथपाल एवं बुक लिफटर का पद स्वीकृत है साथ ही पुस्तकालयाध्यक्ष की मदद के लिये महाविद्यालय प्रशासन सहायक कर्मचारियों की नियुक्ति करता है। वर्तमान में महाविद्यालय के ग्रंथपाल का पद रिक्त हो गया है इस पर शासन की व्यवस्थानुसार अतिथि ग्रन्थपाल की नियुक्ति की गई है। महाविद्यालय में कुल पुस्तकों की संख्या लगभग 30000 है।

शासकीय ठाकुर सोमेश्वर सिंह महाविद्यालय, नईगढ़ी, रीवा :–

शासन द्वारा शासकीय महाविद्यालय, नई गढ़ी के नाम से जुलाई 1988 में महाविद्यालय स्थापित किया गया। इस महाविद्यालय मे स्नातक स्तर की कला एवं वाणिज्य विषय कक्षाओं का संचालन किया जाता है। दिनांक 29.5.1998 को मध्यप्रदेश शासन उच्च शिक्षा विभाग ने इस महाविद्यालय का नाम ठाकुर सोमश्वर सिंह के नाम पर कर दिया गया। शासकीय ठाकुर सोमेश्वर सिंह महाविद्यालय नई गढ़ी रीवा में स्नातक बालक छात्रावास की सुविधा है। एक–एक कम्प्यूटर व लेजर प्रिंटर है। महाविद्यालय में 24 शैक्षणिक/अशैक्षणिक पद स्वीकृत है जिसमें 10 पद पर शैक्षणिक/अशैक्षणिक कर्मचारी कार्यरत एवं रिक्त पदों पर शासन के नियमानुसार कार्यरत है।

महाविद्यालय के पुस्तकालय में वर्तमान में लगभग 6000 पुस्तकें है। पुस्तकालय के संचालन के लिये एक पुस्तकालयाध्यक्ष के साथ अन्य कर्मचारी कार्यरत है।

शास0 महाविद्यालय, रायपुरकर्चुलियान, रीवा :–

शासकीय महाविद्यालय की स्थापना सन् 1989 की गई थी। वर्तमान में महाविद्यालय में 08 शैक्षणिक/अशैक्षणिक कर्मचारी कार्यरत हैं। इतने ही पद रिक्त है। शासन द्वारा बनाई गई नीति के अनुसार कार्य सम्पादित किया जा रहा है।

महाविद्यालय में नियमित ग्रंथपाल एवं बुक लिफटर के पद स्वीकृत एवं कार्यरत है तथा लगभग 10000 पुस्तके है। दैनिक समाचार पत्र, साप्ताहिक पत्र और मासिक रोजगार समाचार हिन्दी पत्र–पत्रिकाएं मंगाई जाती है।

शास0 महाविद्यालय, सेमरिया, रीवा :–

शासकीय महाविद्यालय, सेमरिया, रीवा की स्थापना विगत वर्ष 2014 मे हुई। विधिवत संचालन वर्ष 2015 से प्रारम्भ हुआ। इस महाविद्यालय मे वर्तमान समय में नियमित कर्मचारियों मे मात्र एक प्राध्यापक कार्यरत है, जो प्रचार्य के पद का कार्यभार सभाले हुये है। कार्यरत अन्य कर्मचारियों में शासन के नियमानुसार विभिन्न विभिन्न पदों पर कार्य कर महाविद्यालय के पठन–पाठन के साथ अन्य कार्यों का सम्पादन किया जा रहा है।

महाविद्यालय के पुस्तकालय मे पुस्तकों की संख्या काफी कम है। इसका संचालन एक ग्रन्थापाल द्वारा किया जाता है। उसकी आवश्यकता पर महाविद्यालय प्रशासन एक सहयोगी समय पर उपलब्ध कराता है।

शासकीय स्वामी विवेकानन्द महाविद्यालय, त्यौंथर, रीवा :–

मध्यप्रदेश के उत्तरांचल में स्थित रीवा जिले के तहसील मुख्यालय त्योंथर में स्वामी विवेकानन्द महाविद्यालय वर्ष 1965 में स्थापित होकर उत्तरोत्तर विकास कर रहा है। इस महाविद्यालय में बी.ए, बी.एससी., एलएल.बी. एवं एम.ए. (भूगोल, हिन्दी, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र एवं संस्कृत) में अध्ययन–अध्यापन की व्यवस्था है। पूर्व में इस महाविद्यालय का संचालन कार्य स्थानीय शिक्षा समिति के माध्यम से होता था। 01 अक्टूबर 1982 से इस महाविद्यालय को शासनाधीन कर लिया गया। महाविद्यालय मे आवश्यकतानुसार शैक्षणिक एवं अशैक्षणिक कर्मचारी कार्यरत है।

महाविद्यालय के पुस्तकालय एवं वाचनालय का पूर्णरूप से कम्प्यूटरीकृत किये जाने का कार्य प्रगति पर है। पुस्तकालय में अनुमानित 15000 पुस्तकें हैं। पुस्तकालय के संचालन के लिये एक पुस्तकालयाध्यक्ष, बुकलिफ्टर के साथ अन्य कर्मचारी कार्यरत है।

शास0 महाविद्यालय, देवतालाब, रीवा :–

शासकीय महाविद्यालय, देवतालाब़, रीवा की स्थापना विगत वर्ष 2011 को हुई परन्तु विधिवत संचालन 2013 से हुआ। महाविद्यालय में नियमित कर्मचारियों मे एक प्राध्यापक, अन्य कर्मचारी कार्यरत है। महाविद्यालय पठन–पाठन हेतु अन्य कर्मचारियों की नियुक्ति शासन ने अस्थाई रूप मे कर महाविद्यालय का कार्य सम्पादित करा रहा है।

महाविद्यालय के पुस्तकालय को एक अस्थाई ग्रन्थापाल व्दारा संचालित किया जा रहा है। उसकी आवश्यकता पर महाविद्यालय प्रशासन एक सहयोगी समय पर उपलब्ध कराता है। ग्रन्थों की संख्या कम है।

शासकीय महाविद्यालय, गोविन्दगढ़, रीवा :–

शासकीय महाविद्यालय, गोविन्दगढ़, रीवा की स्थापना विगत वर्ष 2014 को हुई परन्तु विधिवत संचालन 2015 से हुआ। महाविद्यालय मे नियमित कर्मचारियों में एक प्राध्यापक और एक अन्य कर्मचारी कार्यरत है। महाविद्यालय में अन्य कार्यरत अन्य कर्मचारी शासन के नियमानुसार विभिन्न पदों पर कार्य कर महाविद्यालय के पठन–पाठन के साथ अन्य कार्यों का सम्पादन कर रहे हैं।

महाविद्यालय के पुस्तकालय में पुस्तकों की संख्या नाममात्र है। इसका संचालन एक अस्थाई ग्रन्थापाल द्वारा किया जाता है। उसकी आवश्यकता पर महाविद्यालय प्रशासन एक सहयोगी समय पर उपलब्ध कराता है।

शासकीय महाविद्यालय, गुढ़, रीवा :–

मध्यप्रदेश शासन उच्च शिक्षा विभाग भोपाल के आदेश क्रमांक एफ/44/2/1984 भोपाल दिनांक 03.09.1984 के द्वारा शासकीय महाविद्यालय, गुढ़ की स्थापना की गई थी। महाविद्यालय को स्थायी सम्बद्धता प्राप्त है एवं यू.जी.सी. की धारा 2 (एफ) में एवं धारा 12 (बी) के आधार पर पंजीकृत है। 18 दिसम्बर 2010 को नवनिर्मित भवन में संचालित है। जिसमें वर्तमान में कला संकाय, विज्ञान संकाय एवं वाणिज्य संकाय में स्नातक स्तर के अध्ययन की सुविधा है। महाविद्यालय में 09 कम्प्यूटर, 02 लेजरप्रिंटर तथा ब्राड बैन्ड इन्टरनेट कनेक्सन मौजूद है। वर्तमान में महाविद्यालय में 22 शैक्षणिक/अशैक्षणिक कर्मचारी कार्यरत है।

महाविद्यालय के पुस्तकालय मे पुस्तकालयध्यक्ष और बुक लिफटर के पद स्वीकृत और कार्यरत है। पुस्तकालय में 05 कम्प्यूटर है। पुस्तकालय अनुमानित 7000 पुस्तकें हैं। समाचार–पत्र, पत्र–पत्रिकायें आदि मंगाई जाती हैं।

शास0 महाविद्यालय, मनगवाँ, रीवा :–

शासकीय महाविद्यालय, मनगवाँ, रीवा की स्थापना विगत वर्ष 2011 को हुई परन्तु विधिवत संचालन 2013 से हुआ। महाविद्यालय मे नियमित कर्मचारियों मे एक प्राध्यापक, एक अन्य कर्मचारी कार्यरत है। महाविद्यालय पठन–पाठन हेतु अन्य कर्मचारियों को शासन के नियमानुसार विभिन्न पदों पर नियुक्त कर महाविद्यालय का कार्य सम्पादित किया जा रहा है।

महाविद्यालय के पुस्तकालय में पुस्तकों की संख्या नाम मात्र है। इसका संचालन एक अस्थाई ग्रन्थापाल द्वारा किया जाता है। उसकी आवश्यकता पर महाविद्यालय प्रशासन एक सहयोगी समय पर उपलब्ध कराता है।

सन्दर्भ–

1. दुबे, एस.सी. ''मानव और संस्कृति'' नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, 1969.
2. जुगुल किशोर. परसनल मैनेजमेन्ट इन लायब्रेरीज. दिल्लीः एसएस पब्लिकेशन, 1981.
3. पारेवाल, एल. एस. भारतीय सांख्यिकी. जयपुर, रमेश बुक डिपो.
4. बघेल, डी. एस. समकालीन भारतीय समाज एवं संस्कृति. रीवा, पुष्पराज प्रकाशन, 1990.
5. बघेल, डी. एस. सामाजिक विघटन. रीवा, पुष्पराज प्रकाशन, 1989.
6. बधेल, डी. एस. सामाजिक अनुसंधान. रीवा, पुष्पराज प्रकाशन.
7. मध्यप्रदेश, उच्च शिक्षा विभाग. प्रतिवेदन.
8. लवानिया, एम. एम. एवं जैन, शशी. सामाजिक अनुसंधान में सर्वेक्षण पद्धतियाँ, नई दिल्ली, रिसर्च पब्लिकेशन

SHODH CHETNA – YEAR-2 (JAN. TO MARCH, 2016) VOL. 1
ISSN : 2350-0441

वैश्विक समाज की सुसंस्कृति संरचना में साहित्य का योगदान

❐ अश्विनी सिंह

शोध सारांश

वस्तुत 'सत्यम् शिवम् सुन्दरम्' हमारे वाङ्मय का आधार सूत्र है। फलतः इसे मानवीय संस्कृति की त्रिवेणी कहा जाता है तथा साहित्य जगत् में इसकी लोकप्रियता एवं उपादेयता असंदिग्ध है, अतएव इस सूत्र वाक्य का मूलोद्गम ढूँढते समय विचारक पृथक्-पृथक् मत व्यक्त करते हैं। साहित्य शब्द की धातुगत व्याख्या करते हुए कहा गया है ''सहित शब्द से साहित्य के मिलने का भाव देखा जाता है वह केवल भाव-भाव का, भाषा-भाषा का, ग्रन्थ-ग्रन्थ का ही मिलन नहीं है, बल्कि मनुष्य के साथ मनुष्य का, अतीत के साथ वर्तमान का, दूर के साथ निकट का अत्यन्त अंतरंग मिलन भी है जो साहित्य के अतिरिक्त अन्य से सम्भव नहीं है।

संस्कृति और सभ्यता है हमारी पहचान
जिसमें साहित्य का है अतुलनीय योगदान।
हमने विश्व को दिया एक अनोखा उपहार
जिससे सुसंस्कृति व नवनिर्मित
हो रही है मानवता अगाध।।

''दुनिया से कह दो—गाँधी अंग्रेजी नहीं जानता... सारे संसार में भारत ही एक अभागा देश है जहाँ सारा कारोबार एक विदेशी भाषा में होता है!..... तो आइए संकल्प लें, कि हम सब हिन्दी में अपना अधिकतम कार्य करेंगे!.... स्वेदश, स्वराज्य और स्वभाषा का सम्मान रखेंगे!''[1]

वस्तुतः 'सत्यम् शिवम् सुन्दम्' हमारे वाङ्मय का आधार-सूत्र है फलतः इसे मानवीय संस्कृति की त्रिवेणी कहा जाता है तथा साहित्य जगत में इसकी लोकप्रियता एवं उपादेयता असंदिग्ध है, अतएव इस सूत्र वाक्य का मूलोद्गम ढूँढते समय विचारक पृथक्-पृथक् मत व्यक्त करते हैं और डॉ. गुलाबराय ने तो इस सूक्ति का स्रोत भारत के प्राचीन साहित्य में ही ढूँढने का प्रयत्न किया है। उनका कहना है कि यह सूक्ति नितान्त नहीं है, क्योंकि भगवान कृष्ण ने अर्जुन को उपदेश देते समय कहा था—

''अनुद्वेगकरं वाक्यं, सत्यं प्रियहितं च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव, वाङ्मय तप उच्यते।।''[2]

अर्थात् ऐसा वाक्य बोलना चाहिए जो दूसरों के चित्त में उद्वेग उत्पन्न न करे, जो सत्य, प्रिय और हितकर हो तथा जो वेदशास्त्रों के अनुकूल हो, यह वाणी का तप कहलाता है।

विश्वकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर ने साहित्य शब्द की धातुगत व्याख्या करते हुए कहा है ''सहित शब्द से साहित्य के मिलने का एक भाव देखा जाता है। यह केवल भाव-

* एस.आर.एफ.(शोध छात्रा), हिन्दी विभाग, इलाहाबाद वि. वि., इलाहाबाद।

भाव का, भाषा-भाषा का, ग्रन्थ-ग्रन्थ का ही मिलन नहीं है, बल्कि मनुष्य के साथ मनुष्य का, अतीत के साथ वर्तमान का, दूर के साथ निकट का अत्यंत अंतरंग मिलन भी है जो साहित्य के अतिरिक्त अन्य से सम्भव नहीं है।''[3] साथ ही हेनरी हडसन का कहना है—

''It is fundamentally an expression of life through the medium of language.''[4]

अर्थात् साहित्य मूलतः भाषा के माध्यम द्वारा जीवन की अभिव्यक्ति है। 21वीं शताब्दी परिवर्तनों की शताब्दी है। पूरा विश्व एक गाँव में रूपाकार हो गया है तथा विश्व अर्थव्यवस्थाओं में भी तीव्र गति से परिवर्तन हो रहा है। आज भारत और चीन को निकट भविष्य की विश्व शक्ति के रूप में देखा जाने लगा है।

''वैश्वीकरण बड़ा रोचक शब्द है, बना तो विश्व से है, किन्तु इसका तालमेल वैश्व से सही बैठता है। वैश्वीकरण की प्रक्रिया स्थान/क्षेत्र/राष्ट्र की सीमाओं को तोड़कर वस्तुओं/घटनाओं का रूपान्तरण विश्व स्तर पर करती है अर्थात् यह ऐसी प्रक्रिया है, जिसके द्वारा पूरे विश्व के लोग मिलकर एक समाज बनाते हैं तथा एक साथ कार्य करते हैं। वैश्वीकरण की प्रक्रिया आर्थिक के साथ-साथ तकनीकी, सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक (यहाँ तक कि धार्मिक) ताकतों का एक संयोजन है।''[5] विज्ञान एवं तकनीकी के दौर में प्रत्येक देश की भाषा एवं संस्कृति अपनी संकुचित सीमाओं को त्यागकर वैश्विक हो रही है। यह वैश्विक परिप्रेक्ष्य विज्ञान के आधुनिक साधनों से ही सम्भव हो सका है। वर्तमान में भारतीय संस्कृति साहित्य के उन्नयन के फलस्वरूप आज हिन्दी राष्ट्रभाषा के विश्वभाषा बनने की ओर अग्रसर है। ''विश्वभाषा होने के लिए निम्न अभिलक्षण निर्मित किए जा सकते हैं—

1. विश्वस्तर पर बोलने वालों की भारी संख्या।

2. साहित्य की सुदीर्घ परम्परा एवं एक विधा का विश्वस्तरीय होना।

3. सरल, सुबोध, वैज्ञानिक लिपि।

4. ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में सृजित एवं प्रकाशित वाङ्मय।

5. नवीनतम वैज्ञानिक एवं तकनीकि उपलब्धियाँ की समायोजन क्षमता।

6. अन्तर्राष्ट्रीय सामाजिक सन्दर्भों, सामाजिक संरचनाओं, सांस्कृतिक चिंताओं की संवाहक।

7. जनसंचार में बड़े पैमाने पर प्रयुक्त (प्रयोजनमूलक व रोजगारपरक रूप)।

8. विश्व चेतना की संवाहिका, विश्वमैत्री एवं कल्याण की भावना।''[6]

सारांशतः हम कह सकते हैं कि उपर्युक्त मानकों पर हिन्दी पूर्णतः खरी उतरती है। हिन्दी विश्व की दूसरी सर्वाधिक बोली जाने वाली भाषा है। साहित्य व संस्कृति की सुदीर्घ परम्परा ''सरहपा'' (8वीं सदी) से 21 वीं सदी तक अविरल प्रवाहमान है। हिन्दी साहित्य का प्रत्येक रूप (काव्य, निबन्ध, कहानी, उपन्यास समालोचना आदि) आज इन्टरनेट के माध्यम से विश्व में अपना परचम लहरा रही है। चाहे बाजारीकरण की जरूरत ''हिंग्लिश' हो या साहित्य की समृद्धता आज हिन्दी अपनी समर्थ साहित्य व संस्कृति के कारण विश्वस्तरीय आवश्यकता है।

अतः वैश्विक परिप्रेक्ष्य के रूप में शेक्सपियर, हडसन, हेमिल्टन, अरस्तु, प्लेटो, टी. एस. इलियट हों या कालिदास, वाल्मीकि, वेदव्यास, तुलसी, कबीर, रवीन्द्रनाथ टैगोर, बंकिमचन्द्र, गाँधी, नेहरू, विवेकानन्द जैसे सिद्ध महापुरुषों की कल्याणमयी रचनाओं द्वारा ही साहित्य सामाजिक ग्लोब का अक्षांश सिद्ध होती है। चाहे पश्चिमी शेक्सपियर हो या भारतीय कालिदास दोनों विभूतियों के नाटक सामाजिक सुसंस्कृति का सबल प्रमाण है। संस्कृति की कल्पना भाषा के अभाव में संभव नहीं

है, अतः जिस देश, जाति का साहित्य सुदृढ़, संस्कृति न हो वहाँ समाज की कल्पना भी नहीं की जा सकती। वैश्विकरण की दौड़ में 'सत्यम् शिवम् सुन्दरम्' का नवनिर्मित रूप व संरचना सम्पूर्ण वाङ्मय हेतु और भी मंगलकारी व फलदायी सिद्ध हो यही हमारी शुभेच्छा है।

''सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा
कश्चिद् दुःख भागभवेत्।।''[7]

'हितोपदेश' समस्त भूमण्डल को कुटुम्ब मानता है—

''अयं निजः परोवेति गणनां लघुचेतसाम्
उदारचरितानाम तु वसुधैव कुटुम्बकम्।।''[8]

सन्दर्भ—

1. परीक्षा मंथन निबन्ध, पृ. 68
2. श्रीमद्भगवद्गीताः 17, 15
3. साहित्यिक निबन्ध डा. मिश्र, डा. चतुर्वेदी, पृ. 13
4. वही पृ. 13
5. नई सदी में हिन्दी का वैश्विक परिदृश्य (शोध-पत्र-सार), पृ. 123
6. वही, पृ. 126
7. वही, पृ. 130
8. वही, पृ. 130

SHODH CHETNA – YEAR-2 (JAN. TO MARCH, 2016) VOL. 1
ISSN : 2350-0441

पंडित सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' का महाप्राणतत्व

❐ डा. अजय शुक्ल*
❐ दिनेश कुमार पाण्डेय**

शोध सारांश

निराला जी के बहुआयामी व्यक्तित्व पर प्रकाश डालते हुए उनका महाप्राणतत्व सिद्ध करने का प्रयास किया गया है।

प्रत्येक वर्ग का दूसरा और चतुर्थ वर्ण महाप्राण कहलाता है तथा इनके अतिरिक्त उत्तर व्यंजन भी महाप्राण कहलाते हैं। महाप्राण व्यंजनों से हमारा अभिप्राय उन व्यंजनों से है जिनके उच्चारण में प्राणवायु अधिक प्रयुक्त होती हो अर्थात् बल देकर इन व्यंजनों का उच्चारण किया जाता है। हिंदी साहित्य के छायावादी कवि पं. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' के लिए भी कवियों ने 'महाप्राण' की संज्ञा (उपनाम) का प्रयोग किया है। प्रथम दृष्टि में हमें यह विचार कर लेने की आवश्यकता है कि निराला का रचनाकाल भले ही काल विशेष यानी छायावाद में पड़ता है लेकिन निराला जी का जो रचना संसार है उससे यह परिलक्षित होता है कि निराला जी किसी काल विशेष या वाद विशेष के न होकर सम्पूर्ण हिंदी साहित्य के थे और उनकी रचनाएँ समस्त वादों (हिंदी जगत) को कहीं-न-कहीं अपने आप में समाहित किये हुए थीं। इसीलिए निराला जी को सिर्फ छायावादी मानना उनका एकांगी व अधूरा विश्लेषण करना है।

निराला जी जीवन की सम्पूर्णता के कवि थे उन्होंने अपनी काव्य रचनाओं में जीवन में होने वाली उथल-पुथल व सामान्य घटनाओं को चित्रण का विषय बनाया और मानव जीवन की उलझी गुत्थियों को सुलझाने का प्रयत्न किया। निराला जी द्वारा रचित 'राम की शक्ति पूजा', 'सरोज स्मृति', 'कुकुरमुत्ता', 'तुलसीदास' आदि ग्रन्थ इस दिशा में एक सफल कृति कही जा सकती हैं। 'राम की शक्ति पूजा' की पंक्तियों का अर्थ विविध स्तर पर उद्घाटित होता हुआ चलता है। कहीं कवि के व्यक्तिगत जीवन में कहीं राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन के संदर्भ में तो कहीं श्री राम के व्यक्तिगत जीवन के संदर्भ में यह निराला जी का महाप्राणत्व ही था कि एक-एक पंक्ति इतने अर्थगाम्भीर्य का निर्वहन कर सकी हैं। निराला जी अपने शोकगीत 'सरोज स्मृति' में अपनी पुत्री के यौवन का चित्रण करने वाले हिंदी साहित्य के प्रथम कवि हैं। यहाँ उनका अपना अनूठा व्यक्तित्व है। कवि ने यौवन का चित्रण करते हुए भी मर्यादा की रक्षा की है। कहीं भी

* सहायक प्रोफेसर, स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग, सिदो कान्हु मुर्मू विश्वविद्यालय, दुमका, झारखण्ड।
** शोध छात्र (हिन्दी), स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग, सिदो कान्हु मुर्मू विश्वविद्यालय, दुमका, झारखण्ड

गरिमा में बट्टा नहीं लगने दिया है। अपने काव्य 'तुलसीदास' (1938) में माध्यम से उन्होंने भारतीय संस्कृति को संरक्षित करने का कार्य किया है तथा वैदेशिक शासन एवं धर्म के प्रचार-प्रसार के प्रति चिन्ता व्यक्त की है। निराला जी द्वारा 1942 में रचित 'कुकुरमुत्ता' एक कल्पनाशील तीव्र व्यंग्य है जो इस बात का प्रमाण देता है। निराला पर अब तक जो पत्थर फेंकते आये थे, वे इस बात से नाराज हुए कि निराला ने उलटकर एक ढेला उन पर भी फेंक दिया होता।

इन सभी उपरोक्त रचनाओं के अतिरिक्त भी निराला ने बहुत सारी रचनाएँ की हैं। जिनका जिक्र करना यहाँ उपयोगी नहीं है। अतः आचार्य रामचंद्र शुक्ल का यह कथन निराला जी पर वस्तुतः चरितार्थ नजर आता है कि निराला बहुवस्तुस्पर्शिनी प्रतिभा के धनी थे। निराला जी ने महाप्राण वर्णों का ही विवेचन अपने रचना संसार में अकेले न करके अपना महाप्राणत्व सिद्ध किया अपितु उन्होंने साहित्य की सभी विधाओं, वादों, भावों को अपना वर्ण्य विषय बनाकर यह भी सिद्ध कर दिया कि वे अकेले वर्णों के महाप्राण नहीं थे बल्कि अपनी प्रतिभा और प्रयोगों में भी महाप्राण थे। उन्होंने सिद्ध कर दिया कि कवि कविता के लिए नहीं होता कविता कवि से होती है। भाव भाषा के लिए नहीं भाषा भावों की अनुगामिनी होती है। इस प्रकार निराला जी ने नये-नये प्रयोगों द्वारा काव्य को आभिजात्य से मुक्ति दिलायी।

SHODH CHETNA – YEAR-2 (JAN. TO MARCH, 2016) VOL. 1
ISSN : 2350-0441

किरातार्जुनीयम् में द्रौपदी की मनःस्थिति का मूल्याङ्कन

❐ राजीव कुमार शुक्ल

शोध सारांश

किरातार्जुनीय में द्रौपदी की मनःस्थिति कुछ इस प्रकार है—धर्मराज युधिष्ठिर के द्वारा नियुक्त वनेचर गुप्त रहस्यों को युधिष्ठिर से उद्घोषित करता है जिसे ज्ञात कर युधिष्ठिर आदर-सत्कार देकर विदा करने के उपरान्त उसके द्वारा प्राप्त कराये गये गुप्त रहस्यों को भाइयों सहित द्रौपदी भवन में द्रौपदी के सामने बतलाते हैं जिसमें दुर्योधन की गतिशीलता का वर्णन पति के ही मुख से सुनने में असमर्थ द्रौपदी युधिष्ठिर को उद्वेलित करने वाली तीक्ष्ण बातें कहने लगी।

लौकिक संस्कृत साहित्य के इतिहास उत्कर्ष में सौष्ठव एवं औदार्यपूर्ण वाणी से परिष्कृत कर देने वाले महाकवि ''भारवि'' हैं जिनके द्वारा 18 सर्गों एवं 1040 श्लोकों से समन्वित एक बृहदाकार महाकाव्य है जो महाभारत के वन पर्व से अवतरित किया गया है। जिसकी गणना वृहत्त्रयी में की जाती है। जिसकी व्युत्पत्ति निम्न है—

''किरातश्च अर्जुनश्च इति किरातार्जुनौ।
तौ अधिकृत्य कृतं काव्यम् किरातार्जुनीयम्।''[1]

किरातार्जुन शब्द की भ संज्ञा तथा किरातार्जुन नकारोत्तवर्ती अकार की यस्येति च से लोप होने पर किरातार्जुन् बनता है तथा पाणिनिकृत ''शिशुक्रन्दयमसभ-द्वन्द्वेद्रजननादिभ्यश्छः'' 4/3/88 सूत्र के द्वारा छ प्रत्यय होकर किरातार्जुन्+छ रूप निष्पन्न होता है। तत्पश्चात् इस छ प्रत्यय को आयनेयीनीयियः फढखछघांप्रत्ययययादीनाम् (7/1/2) सूत्र से ईय आदेश होकर-किरातार्जनीय शब्द व्योत्पन्न होता है।''[2]

किरातार्जुनीयम् में द्रौपदी की मनःस्थिति कुछ इस प्रकार है—धर्मराज युधिष्ठिर के द्वारा नियुक्त वनेचर गुप्त रहस्यों को युधिष्ठिर से उद्घोषित करता है जिसे ज्ञात कर युधिष्ठिर आदर सत्कार देकर विदा करने के उपरान्त उसके द्वारा प्राप्त कराये गये गुप्त रहस्यों को भाईयों सहित द्रौपदी भवन में द्रौपदी के सामने बतलाते हैं।[3] जिसमें दुर्योधन की प्रगतिशीलता का वर्णन पति के ही मुख से सुनने में असमर्थ द्रौपदी युधिष्ठिर को उद्वेलित करने वाली तीक्ष्ण बातें कहने लगी।[4] क्योंकि स्वामी को कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का उपदेश देना हम जैसे नारियों से तिरस्कार ही होगा फिर भी विषाक्त अन्तर्वेदना व्यङ्गबाणों के रूप में प्रकट होने लगती है।[5]

द्रौपदी मन की विवशता—

द्रौपदी मन की विवशता यह है वह एक आदर्श नारी है। नारी स्वभाव से ही सुख वैभव से प्रीति रखने वाली होती है फिर द्रौपदी तो साधारण नारी स्तर से ऊपर

* शोधछात्र, पी-एच.डी. (संस्कृत), क. मुं. हिन्दी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ, डॉ. बी. आर. अम्बेडकर विश्वविद्यालय, आगरा

थी। द्रौपदी पाञ्चाल नरेश की पुत्री, भरतवंश की कुलवधू पाण्डवों की राजमहिषी, मनोरम हृद्य एवं अगणित सद्गुणों से मण्डित। ऐसी राजकन्या यदि अपने पतियों के कारण अज्ञता एवं अकर्मण्यता के कारण दर-दर ठोकर खाती फिरे तो उसकी क्या प्रतिक्रिया होगी? वस्तुस्थिति इसी-मानसिक स्थिति में सुयोधन की अभ्युत्थान कथा सुनकर सहन नहीं कर पाती है[6]—

भवादृशेषु प्रमदाजनोदितं
भवत्यधिक्षेप इवानुशासनम्।
तथापि वक्तुं व्यवसायन्ति मां
निरस्तनारी समया दुराधयः।।

मेरी दुष्ट मानसिक दशाएँ मुझे छत-विछत कर देने वाली खरी-खोटी सुनाने के लिए बाध्य कर रही हैं।[7] क्योंकि आप महाराज हैं और उसके मूल आप हैं यहाँ द्रौपदी का कहना कितना सार्थक है कि भाईयों में आप बड़े हैं आप में भ्रातृत्व का होना, क्षत्रियों में श्रेष्ठ होने से क्षत्रियत्व एवं राज्य का श्रेष्ठ होने से राजत्व का होना आप में कितना श्रेयस्कर है।

द्रौपदी मन का सापेक्षिक वृत—

द्रौपदी मन का सापेक्षिक वृत्त इस प्रकार है धर्मराज युधिष्ठिर के—अन्तरात्मा में स्थित क्रोध को उद्वेलित करने के लिए पूर्वजों के नाना कष्टों को राज्यरक्षार्थ दिखलाती हुई शालीनतापूर्ण मर्यादा को उद्यत करती है।[8]

व्रजन्ति ते मूढधियः पराभवं
भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः।

मन्दबुद्धि वाले लोग जो मायावियों के साथ मायावी नहीं होते वे पराजय का वरण करते हैं।[9] आप क्षत्रिय तेज को धारण करें और दुर्योधनादि से युद्ध करने का उचित समय है—

सत्पक्षा मधुरगिरः प्रसाधिताशामदोद्धतारम्भा।
निपतन्ति धार्तराष्ट्राः कालवशान्मेदिनीपृष्ठे।।

अच्छी सेना वाले मधुर बोलने वाले सभी दिशा को अधीन करने वाले अहङ्कार के कारण धृतराष्ट्र पुत्र दुर्योधनादि धराशायी हो रहे हैं।[10] इनसे युद्ध करना ही ज्यादा श्रेयस्कर है।

महाराज आप ही ऐसे व्यक्ति हैं जो चिरकालीन कुलक्रमागत प्राप्त राज्यलक्ष्मी को तथा द्रुपद वंशोत्पन्न अपनी प्रेयसी को अनायास दुर्योधनादि के द्वारा अपहृत करा रहे हैं।[11]

"परैस्त्वदन्यः क इवापहारये-
न्मनोरमामात्मवधूमिव श्रियम्।।"

यह सभी वाक्य द्रौपदी युधिष्ठिर को समुद्यत करने के लिए प्रयोग करती है। क्योंकि उसकी प्रबल इच्छा है विनिन्दित मार्ग पर विद्यमान दुर्योधनादि कौरवों के कारण प्राप्त करायी गयी दयनीय स्थिति का स्मरण करके शुष्कशमी वृक्ष की तरह क्यों प्रज्वलित नहीं होते हैं।[12]

अत्याचारी का प्रतिकार न करने वाले लोग अनादर को प्राप्त हो जाते हैं तथा निष्फल क्रोध वाले व्यक्ति का अनुकूलता प्रतिकूलता का कोई मूल्य नहीं होता।[13] यथार्थतः सत्य भी यही है किन्तु संघर्षशील धैर्य निश्चयी व्यक्ति से ही समाज एवं शत्रु भय करता है। आज भीम इसी मर्यादा के मारे पर्वतों की कन्दराओं में दर-दर ठोकरें खाते फिर रहे हैं।[14] अर्जुन आज वल्कल वस्त्रों को जंगलों से ला रहे हैं।[15] तथा नकुल सहदेव ककड़ीले स्थल में सोने के कारण जिनके शरीर कठोर हो गये हैं। हे नरदेव आप उन सबकी दयनीय स्थिति को देखकर धृतिसंयम को त्यागने के लिए उद्यत क्यों नहीं हो रहे हैं।[16] इसी तरह की अधीर स्थिति सीता ने भी प्रकट की है—

"न सहिष्ये ईदृशं जीवलोकस्य" हे पृथ्वी माता आप अपने अंगों में हमें विलीन कर लो।[17] दुर्योधन तथा दुःशासन ने द्रौपदी के साथ दुर्व्यहार किया था तब इसी तरह का मनोयोग द्रौपदी का भी हुआ था।

द्रौपदी मन का दौबल्र्य द्योतक—

"इमामहं वेद न तावकीं धियं
विचित्ररूपाः खलु चित्तवृतयः।
विचिन्तयन्त्या भवदापदं परां
रुजिन्त चेतः प्रसभं ममाधयः।।

किन्तु मैं आपकी चित्त वृत्ति को न जान पा रही हूँ फिर भी आपके महती विपत्ति के बारे में सोचने से मेरी मनोव्यथाएँ क्षत-विक्षत हो रही हैं तथा जिसके बुद्धिवैचित्र्य पर वाग्व्रज करती हूँ वह विषय परिस्थितियों में भी क्षुब्ध नहीं होता है।[18] नरदेव आप पहले बहुमूल्य शय्या पर शयन करते थे, किन्तु आज कटीले कुशों में तथा सियारिनों के द्वारा अमंगल समय में जगाये जाते हो।[19] तथा ब्राह्मण भोजनोपरान्त भोजन करने से कहाँ आप रमणीयता से सुशोभित थे आज आप यश एवं बल दोनों से क्षीण हो रहे हैं।[20] तथा आपके पैर कहाँ राजाओं के शिरमालाओं से सुशोभित होते थे वही आज मलिनता एवं कुश अंकुरता को प्राप्त हो रहे हैं [21] इसके अनन्तर द्रौपदी की आन्तरिक पीड़ा उद्घटित होने लगती है—

''परैरपर्य्या सितवीर्य्य सम्पदां
पराभवोऽप्युत्सव एवं मानिनाम्।

प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष अनुभव की जाने वाली दशा कौरवों के कारण ही हुई है। यदि हम युद्ध हार गये होते तो इसे हम उत्सव सदृश मनाते हैं।[22] जैसे भगवान कृष्ण ने अर्जुन से कहा है—

''हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम।''[23]

इसके अनन्तर आप शान्ति को त्यागकर क्षत्रियत्व मार्ग को धारण करे जैसा कि राम ने उत्तररामचरितम् में कहा है—

''नन्वयमलंकार क्षत्रियस्य''

यह तो क्षत्रिय का आभूषण है।[24] आप राजत्व का निर्वहन करें यदि आप ऐसा नहीं करते हैं तो खेद है कि 'निराश्रया हन्त! हता मनस्विता' मनस्विता निराधार होकर समाप्त हो जायेगी।[25] उपर्युक्त तर्कों को देते-देते द्रौपदी जब खीझ जाती है। तब युधिष्ठिर के पुरुषार्थ पर कटाक्ष व्यङ्ग बोलती है कि अगर आप चिरकाल तक क्षमा को ही सुख-साधन स्वीकार्य करते हैं तो राजचिह्न धनुष का त्याग कर जटाजूट बढ़ाकर वन में अग्नि तर्पण करें या विजयाभिलाषी होकर त्रयोदश सन्धि प्रस्ताव भंग करके युद्धार्थ तैयार हो जाये।[26] क्योंकि अकारण वन में भी दुर्योधन परेशान कर रहा है। उन्हीं की ही भाषा में तत्पर जबाव दें।

द्रौपदी मन का आदर्शात्मक विवरण—

द्रौपदी मन का आदर्शात्मक विवरण इस प्रकार वर्णित है जैसे सायंकाल भाग्य और समय के फेर से आपत्ति सदृश अथाह पश्चिमी सागर में छिपने वाले प्रकाश की हानि क्षीण मन्द किरणों वाले किन्तु प्रातः काल शत्रु रूप अन्धकार को दूर करके उदित हुए सूर्य के पास लक्ष्मी पुनः आती है।

''विधिसमयनियोगाद्दीप्ति संहारजिह्मं
शिथिलवसुमगाधे मग्नमापत्यपयोधौ।
रिपुतिमिरमुदस्योदीयमानं दिनादौ
दिनकृतमिवलक्ष्मीस्त्वां समभ्येतु भूयः।।

उसी तरह पुनः आप प्रातःकाल अपने शत्रु अन्धकार पर विजय प्राप्त करता हुआ धीरे-धीरे दिन लक्ष्मी द्वारा आलिङ्गित होता है इससे आप स्वयं धैर्य धारण कीजिए एवं उद्योग कीजिए पूर्व ऐश्वर्य को पुनः धारण करेंगे।[27] इसी तरह अभिज्ञान में ''यात्येकतोऽस्तशिखरं पतिरोषधीनाम्...।'' एक तरफ चन्द्रमा अस्ताचल को जा रहा होता है दूसरी तरफ अरुण को आगे किये हुए सूर्य अपने प्रकाशपुञ्ज के साथ उदित होता दिखलाई देता है।[30] मेघदूतम् में भी वर्णित है—

''कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा
नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण।।''

निरन्तर सुख दुःख प्राप्त होता है अर्थात् किसी को नहीं। सुख दुःख तो पहिये के अरे के समान हैं जो क्रमशः नीचे ऊपर आते रहते हैं इसलिए आज आपके समय प्रतिकूल हैं कल आप सूर्य के समान सामाज्यलक्ष्मी को पुनः वरण करेंगे।[31]

उपसंहार—

वनेचर द्वारा सम्पूर्ण वृतान्त को जानकर महाराज युधिष्ठिर भाईयों सहित पत्नी द्रौपदी के सामने प्रकट करते हैं जिसे सुनकर द्रौपदी असहज-सी महसूस करती हुई व्यङ्गबाण का प्रहार करते हुए युधिष्ठिर को सचेष्ठ करना चाहती है कि अब भी समय है, आप संभल जाइए

क्योंकि मेरी मानसिक व्यथाएँ खरी-खोटी सुनाने के लिए बाध्य कर रही हैं। महाराज आपके पूर्वज जिस राज्य के लिए नाना प्रकार के कष्टों को सहन किये थे उसे आपने सहज गंवा दिया इन बातों को मर्यादा एवं शालीनतापूर्ण तरीके से वह कहती है कि मायावियों से मायापूर्ण आचरण करना ज्यादा श्रेयस्कर होता है; जैसे—

''आजर्व हि कुटिलेषु न नीतिः'' कुटिल व्यक्ति के साथ सरलतापूर्ण व्यवहार नहीं करना चाहिए, नहीं तो वे नुकीले बाण की तरह शरीर में प्रवेश करके मार डालते हैं, उचित समय है वह सभी दिशाओं से धराशायी हो रहा है इससे युद्ध करना ज्यादा श्रेयस्कर दिखलाई दे रहा है क्योंकि विनिन्दित मार्ग पर विद्यमान कौरव आदि द्वारा आप राज्यलक्ष्मी तथा प्रियतमा को क्यों अपहृत करा रहे हैं। इसी महती विपत्ति के बारे में मेरा मन क्षुब्ध-सा हो रहा है। आप युद्ध के लिए तटस्थ भाव में उन्हीं की भाषा में जवाब दें ऐसी मेरी मनोकामना है। आज आप सूर्य सदृश अन्धकार रूपी शत्रु पर विजय प्राप्त करेंगे तथा पुनः राज्यलक्ष्मी का वरण करोंगे। जैसे—दुःख-सुख तो निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है आप पुनः राज्यलक्ष्मी को प्राप्त करेंगे।

सन्दर्भ—

1. किरात. भारवि, भूमिका, शारदा पुस्तक भवन, प्रकाशन तृतीय संस्करण, पृष्ठ-24
2. किरात. भारवि, पृष्ठ-24
3. वही, 1/26
4. वही, 1/27
5. वही, 1/28
6. वही, नारायण पब्लिशिंग हाउस, पृष्ठ-36
7. वही, 1/28
8. वही, 1/29
9. वही, 1/30
10. वेणी. भट्टनारायण, भारतीय विद्या प्रकाशन, 1/6
11. किरात. भारवि 1/31
12. वही, 1/32
13. वही, 1/33
14. किरात. भारवि, 1/34
15. वही, 1/35
16. वही, 1/36
17. उत्तरराम., भवभूति, रामनारायण लाल विजय कुमार प्रकाशन, पृष्ठ 485
18. किरात. भारवि, 1/37
19. वही, 1/38
20. वही, 1/39
21. वही, 1/40
22. वही, 1/41
23. श्रीमद्भगवद्गीता 2/37
24. किरात. भारवि, 1/42
25. उत्तरराम. भवभूति, पृष्ठ-417
26. किरात. भारवि, 1/43
27. वही, 1/44
28. वही, 1/45
29. वही, 1/46
30. अभिज्ञान. कालिदास, रामनारायण विजय कुमार प्रकाशन, 4/2
31. उत्तर मेघ 'कालिदास' साहित्य भण्डार, पृष्ठ-76.

SHODH CHETNA – YEAR-2 (JAN. TO MARCH, 2016) VOL. 1
ISSN : 2350-0441

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में पर्यारवरण का संरक्षण

❐ संगीता

शोध सारांश

प्रकृति ही सब कुछ है ये हमारी माता-पिता और पुत्र भी है। ये द्यौ, अन्तरिक्ष और पृथ्वी के रूप में सबको उत्पन्न करने वाली है। यह हमें शारीरिक रूप से स्वस्थ रखती है। क्योंकि मनुष्य ही नहीं अपितु सभी प्राणियों को जीवन जीने के लिए वायु, अन्न, जल, प्रकाश की महती आवश्यकता होती है। प्रकृति प्रदत्त इन घटकों की स्वच्छता बनाये रखने के लिए हमें अपने आप को जाग्रत करना है। क्योंकि जिस वातावरण में हम रहते हैं उसको संरक्षित रखना हमारे लिए उतना ही आवश्यक है जितना हमारे शरीर की सुरक्षा। संसार के सम्पूर्ण मनुष्यों के जीवन का अनिवार्यतम अंग विशेष रूप से शुद्ध प्राण वायु, स्वच्छ सुस्वाद, मीठा जल, पौष्टिक शुद्ध सात्विक एवं स्वास्थ्यवर्धक भोजन तथा ओजपूर्ण शक्ति प्रदान करने वाला विशुद्ध मनोरम प्रकाश की महती आवश्यकता है।

परिआंग उपसर्ग पूर्वक वृ धातु से ल्युट प्रत्यय करके पर्यावरण शब्द निर्मित होता है। प्रकृति प्रत्य के अनुसार चारों तरफ से मर्यादित रूप में जो सुरक्षित रहते हुए दूसरों को सुरक्षा प्रदान करे वही पर्यावरण है।

''सृष्टे संरक्षणार्यं भूमिं परितो यद आवरणम् ओतं-प्रोतं परिवेष्टितम् च पर ब्रह्मणां तदस्ति पर्यावरणमं।।''

अर्थात् प्रकृति प्रदत्त हमारे आस-पास का जो वातावरण पृथ्वी पर स्थित अग्नि, वायु, जल, पृथ्वी और आकाश (पंच महाभूत) नदी, झरने, सरोवर औषधियों से सुगन्धित वायु सूर्य चन्द्रमा हमारे ऊपर फैला तारों का समूह ग्रह नक्षत्र यह सभी हमारे पर्यावरण के अभिन्न अंग हैं।

मनुष्य का शरीर पंच महाभूतों से निर्मित है। इसी बात को स्पष्ट करने के लिए पंचमहाभूतों के पंचीकरण के सम्मिश्रण से उद्भूत चतुर्धा सृष्टि में जीवांश के रूप में पल रहा जीवन है वही उपयुक्त वातावरण को प्राप्त करता है, वह प्रकृति में ही पैदा हुआ और इसी में विलीन हो जायेगा। उपनिषदों में कहा गया है—

''तस्माद्वा एतस्मादात्मनः आकाशः सम्भूतः आकाशद्वायुर्वायोरग्नेरापोऽभ्यदः पृथ्वीं पृथिव्या औषधाय औषधेभ्योऽन्नमन्नोद्रतो रेतसः पुरुषः स एष पुरुषोऽन्नरसमः।।''[1]

ईश्वर ने प्रकृति से आकाश उत्पन्न किया, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल, जल से पृथ्वी, पृथ्वी से औषधि, औषधियों से अन्न, अन्न से वीर्य, वीर्य से पुरुष की उत्पत्ति हुई यह पुरुष रसमय है।

उदाहरण के लिए मनुष्य अपनी इस स्थिति के लिए यात्रा प्रारम्भ करके आज यहाँ तक पहुँचा है, हमारे इस शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, वैचारिक, सामाजिक,

* शोधछात्र, पी-एच.डी. (संस्कृत), क. मुं. हिन्दी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ, डॉ. बी. आर. अम्बेडकर विश्वविद्यालय, आगरा

राजनीतिक एवं आध्यात्मिक विकास में उपयुक्त चतुर्धा सृष्टि ही नहीं अपितु चारों ओर विद्यमान वातावरण के अतिरिक्त वन, वृक्ष वनस्पतियाँ खाद्य पदार्थ आदि सबकी अहम् भूमिका है।

इसलिए प्रकृति द्वारा हमें जो भी प्राकृतिक तत्व प्रदान किये गये हैं हम उनका संरक्षण नहीं करेंगे तो ये प्रदूषित होकर हमारे समस्त वातावरण को दूषित कर देंगे क्योंकि यहाँ—

''अदितिद्यौरदितिरन्तक्षमदितिर्माता सपिता स पुत्रः
विश्वदेवा अदितिः पञ्चर्जना अदिति जति मदितिर्जनित्वम्।''[2]

प्रकृति ही सब कुछ है, ये हमारी माता-पिता और पुत्र भी है। ये द्यौ, अन्तरिक्ष और पृथ्वी के रूप में सबको उत्पन्न करने वाली है। यह हमें शारीरिक रूप से स्वस्थ रखती है क्योंकि मनुष्य ही नहीं अपितु सभी प्राणियों को जीवन जीने के लिए वायु, अन्न, जल, प्रकाश की महती आवश्यकता होती है। प्रकृति प्रदत्त इन घटकों की स्वच्छता बनाये रखने के लिए हमें अपने आप को जागृत करना है—

''चतस्तः सृष्टयः सन्ति चत सृणां हिपोषिकाः
तासु साम्यं स्थाप्यं वैषम्यो प्रलयः स्थितः।।''[3]

उपर्युक्त पंचमहाभूतों के पञ्चीकृत सम्मिश्रण से उद्भूत चतुर्धा सृष्टि परस्पर एक दूसरे का परिपोषक है। इन चारों में साम्य स्थापन का दायित्व मानव समाज पर निर्भर करता है। इन चारों में विषमता की स्थिति उत्पन्न होने पर प्रलयकारी अवस्था अवश्यम्भावी है।

क्योंकि जिस वातावरण में हम रहते हैं उसको संरक्षित रखना हमारे लिए उतना ही आवश्यक है जितना हमारे शरीर की सुरक्षा। अभिज्ञान शाकुन्तल में पर्यावरण संरक्षण की उपयोगिता को इस प्रकार दर्शाया है—

''पातुं न प्रघमं व्यवस्यति जलं युष्मावं पीतेषु या
नादत्ते प्रियमण्डनापि भ्वतां स्नेहेन या पल्लवम्।
आद्येवः कुसुम प्रसूति समये यस्या भव उत्सवः
सेयं याति शकुन्तला पतिग्रहं सर्वेरनुज्ञायताम्।।''[4]

कैसा मनोरम दृश्य है और साथ ही प्रकृति प्रदत्त पेड़-पौधे, पुष्प-लताओं आदि का संरक्षण कि शकुन्तला इन्हें जल पिलाये बिना जल नहीं पीती थी। पुष्प प्रिय होने पर भी शृंगार हेतु तोड़ती नहीं थी। नई पत्तियाँ आने का उसका उत्सव होता था ऐसा लग रहा है इन प्राकृतिक अवयवों से पति घर जाने की आज्ञा मांग रही हो।

इस प्रकार से पर्यावरण का सुरक्षित रहना हमारे लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है और इसके घटकों को प्रदूषण से बचाना हमारी नैतिक जिम्मेदारी है। इन घटकों में से किसी का अभाव या दूषित होना हमारे जीवन को संकट में डालता जा रहा है। जल के महत्त्व पर ऋतुसंहाम् में कहा गया है—

''तृशाकुलैश्चातक पक्षिणां कुलैः प्रपाचितास्तो य भरा बलम्बि।
प्रयन्ति मन्दं बहुधारवर्षिणो बलाहकाः श्रोतमनोहर स्वनाः।।''[5]

गर्मी में प्यास से व्याकुल होकर चातक पक्षियों ने मेघ से वर्षा की याचना की इसलिए मेघ इस वर्षा ऋतु में वर्षा कर रहे हैं। वे कर्णप्रिय शब्दों के साथ आकाश में विचरण कर रहे हैं।

उपनिषदों में कहा गया है—

जलमेव जीवनम्।

जल ही जीवन है। हमारे शरीर में लगभग 60 प्रतिशत जल है। जल जीवन का मुख्य स्रोत है। शहरों में पीने के स्वच्छ जल का संकट है। अतः हम सबको जल प्रदूषित होने से बचाना चाहिए। हमारे देश के प्रधानमंत्री ने जल के महत्त्व पर कहा है—'नमामि गंगे स्वच्छ

भारतम्' अर्थात् गंगा को शुद्ध करके पवित्र गंगाजल को पीजिए। गीता में कहा गया है—

''अन्नाद भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः
यज्ञाद् भवति पर्जन्यौ यज्ञः कर्म समुदभवः।।''[6]

सारे प्राणी अन्न पर आश्रित हैं, जो वर्षा से उत्पन्न होता है वर्षा यज्ञ सम्पन्न करने से होती है और यज्ञ नियत कर्मो से होता है। जल के साथ-साथ वायु हमारे पर्यावरण के घटकों में एक महत्त्वपूर्ण घटक है जो हमे पेड़-पौधों से प्राप्त होती है, जो श्वास द्वारा हमें जीवन देती है। पेड़-पौधे कार्बनडाई आक्साइड ग्रहण करके हमें आक्सीजन देते हैं। आज के विज्ञान के अनुसार भूमि पर 30 प्रतिशत वन का भाग होना चाहिए जो कि आज 23 प्रतिशत ही है। भूमि को सुव्यवस्थित और स्वस्थ रखने के लिए पृथ्वी पर वृक्षों का होना अनिवार्य है—

''यस्यां वृक्ष वनस्पतयोधुवास्तिष्ठन्ति विश्वहा।
पृथिवीं विश्वधापसं धृतामच्छा वदामसि।।''[7]

वृक्ष व वनस्पतियाँ हमें बाढ़ से बचाते हैं, प्राणवायु देने के साथ लकड़ियाँ भी देते हैं, वृक्षों की लड़कियों से हम यज्ञ कर निरोगता प्राप्त करते हैं।

''जीवनस्पकृते सर्वेषाम निवार्य रूपतः।
विशुद्धः प्राणवायुः स्यु निर्मल मधुरं पयः।
पौष्टिकं भोजनं शुद्ध सात्विक स्वास्थ्यवर्धकम्।
मानवानां प्रकाशश्चशक्तः पूर्वाबलप्रदः।।''[8]

इस संसार के सम्पूर्ण मनुष्यों के जीवन का अनिवार्यतम अङ्ग विशेष रूप से शुद्ध प्राणवायु, स्वच्छ सुस्वाद, मीठा जल, पौष्टिक शुद्ध सात्विक एवं स्वास्थवर्धक भोजन तथा ओजपूर्ण शक्ति प्रदान करनेवाला विशुद्ध मनोरम प्रकाश की महती आवश्यकता है। उपर्युक्त अनिवार्यतम् घटकों की उपलब्धि सृष्टि के सन्तुलन पर आश्रित है यदि प्राकृतिक संसाधनों का सुदपयोग चतुर्धा सृष्टि में सन्तुलन के साथ किया जाये तो पर्यावरण प्रदूषण का कोई कारण नहीं।

''वायुरत्नाकरे सर्वेनिमग्नाः स्योवयं जनाः
तन्महत्त्वं न जानी मोऽज्ञाता कारणात परम्।।''[9]

यह सम्पूर्ण सृष्टि वायवीय सागर के अन्तराल पर स्थित है। हमारे ऊपर-नीचे, दीयें-बायें, आगे-पीछे एवं अन्दर- बाहर स्थित हमें हर प्रकार से सुरक्षित एवं संरक्षित करने वाले रत्न वायु के सम्बन्ध में अज्ञानता के कारण इसके महत्त्व को नहीं जान पा रहे हैं।

''जनाः प्योदरपूतर्यर्थ क्षेत्रात् खाद्य प्रयोगतः।
बहून्यन्नानि ग्रहणान्तिनपर्यापृनृणांकृते।।''[10]

छः सौ करोड़ से भी अधिक संख्या वाले विश्व का मानव समाज अपने उदर पूर्ति के लिए सीमित भूखण्ड में अनेक प्रकार के अधिकाधिक खाद्य का प्रयोग करके जबरदस्ती पृथ्वी की उर्वराशक्ति के दोहन का प्रयास कर रहा है।

विश्व पर्यावरण दिवस 5 जून को प्रति वर्ष आयोजित किया जाता है। वर्ष 1972 में संयुक्त राष्ट्र की जनरल असेम्बली में इसे मनाने की स्थापना की थी। जिसमें कहा गया था कि समग्र मानव जाति को मिलकर सभी प्रकार से पर्यावरण से सम्बन्धित प्राकृतिक तत्त्वों का संरक्षण करना चाहिए।

निष्कर्ष—

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि जो हमारे आस-पास, ऊपर-नीचे, अन्दर-बाहर स्थित आवरण है, वह पर्यावरण है। प्रकृति-प्रदत्त किसी भी तत्व का दूषित होना उसका प्रदूषण कहलाता है। अमेरिकी राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी के अनुसार प्रदूषण की परिभाषा—''प्रदूषण जल, वायु या भूमि के भौतिक रासायनिक या जैविक गुणों में होने वाला कोई भी अवांछनीय परिवर्तन है जिसमें मनुष्य अन्य जीवों सांस्कृतिक तत्व तथा प्राकृतिक संसाधनों को कई हानि हो या होने की सम्भावना हो।''

उपर्युक्त विश्लेषणों से ज्ञात होता है कि हमारे वातावरण में स्थित प्राकृतिक तत्वों में से किसी की हानि या दूषित होना पर्यावरण प्रदूषण कहलाता है। इसे रोकना हमारी नैतिक जिम्मेदारी है। पर्यावरण प्रदूषण से हम विभिन्न प्रकार के रोगों को दावत देंगे। वायु, आकाश, जल, भूमि आदि प्राकृतिक तत्वों में अत्यधिक प्रदूषण है यह प्रदूषण जीते जी मानव जाति का सर्वनाश करता जा रहा है। विभिन्न प्रकार के रोगों का रोगी बनाकर जीने की संभावनाओं को ही समाप्त करता जा रहा है।

सन्दर्भ—

1. तैत्तिरीयोपनिषद्-2-1
2. अथर्ववेद-7-6-1
3. शतकम जनसंख्या नियन्त्रणम्, डा. डी. एन. त्रिपाठी, पृष्ठ-16
4. अभिज्ञान शाकुन्तलम्-4/9
5. ऋतुसंहारम्-2/6
6. श्रीमद्भगवद्गीतां-3-14
7. अथर्ववेद-12-2-27
8. शतकम् जनसंख्या नियन्त्रणम्, डा. डी. एन. त्रिपाठी, पृष्ठ-24.
9. वही, पृष्ठ-25.
10. वही, पृष्ठ-43.
11. वही, पृष्ठ-19.
12. अमेरिकी राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी, प्रतियोगिता दर्पण, अप्रेल, हिन्दी मासिक पत्रिका, पृष्ठ-99.

SHODH CHETNA – YEAR-2 (JAN. TO MARCH, 2016) VOL. 1
ISSN : 2350-0441

योग का महात्म्य

❐ योगेश्वर कुमार पाण्डेय

शोध सारांश

वेदान्तियों और अन्य उपासकों की दृष्टि से जीव और परमात्मा का मिलन होता है। अतः युजिर् योगे धातु से योग शब्द निष्पन्न माना जाता है परन्तु महर्षि पतंजलि ने समाधि अर्थ में योग शब्द का प्रयोग किया है। संस्कृत वाङ्मय में इन तीनों अर्थों में योग शब्द का प्रयोग प्रायः होता रहा है। क्योंकि, योग तो वैदिक परम्परा से लेकर आज तक चला आ रहा है। गीता में भगवान कृष्ण अनेक प्रकार के योगों का ज्ञान अर्जुन को प्रदान करते हैं और उनमें से सांख्य तथा योग को प्रमुख बताते हुए योग की महत्ता का प्रतिपादन करते हैं। योग के बिना तो सांख्य की साधना करना कठिन है। योग से युक्त होकर अर्थात् योग निष्णात होकर मुनि लोग शीघ्र ही बह्म का साक्षात्कार करते हैं। योग के द्वारा ब्रह्म प्राप्ति का मार्ग सरल हो जाता है।

योग शब्द युज् धातु में घञ् प्रत्यय के जुड़ने से निष्पन्न होता है। लेकिन सामान्य रूप से योग शब्द का अर्थ मिलना या जुड़ना होता है और यदि व्याकरण की दृष्टि से देखें तो पाणिनि के अनुसार युज् धातु तीन गणों में पायी जाती है। युज् समाधौ दिवादिगणं, युजिर् योगे रुधादिगणं और युज् संयमने चुरादिगण। क्रमशः इन तीनों धातुओं से बने योग शब्द के अर्थ भिन्न-भिन्न हैं। वेदान्तियों और अन्य उपासकों की दृष्टि से जीव और परमात्मा का मिलन होता है। अतः युजिर् योगे धातु से योग शब्द निष्पन्न माना जाना चाहिए। परन्तु महर्षि पतञ्जलि ने समाधि अर्थ में योग शब्द प्रयोग किया है। संस्कृत वाङ्मय में इन तीनों अर्थों में योग शब्द का प्रयोग प्रायः होता रहा है।'[1] क्योंकि योग तो वैदिक परम्परा से लेकर आज तक चला आ रहा है। जैसा कि ऋग्वेद में दृष्टव्य है—'इन्द्रः क्षेमे योग हव्य इन्द्रः'[2] और याज्ञवल्क्यस्मृति में उल्लेख मिलता है कि—'हिरण्यगर्भो योगस्य वक्तानान्यः पुरातनः।'[3] हिरण्यगर्भ ही योग के सबसे प्राचीन वक्ता हैं। इनसे पहले योग को कहने वाला और कोई भी नहीं है इसलिए हिरण्यगर्भ को योग का आदि वक्ता तथा गुरु माना जाता है। गीता में भगवान कृष्ण अनेक प्रकार के योगों का ज्ञान अर्जुन को प्रदान करते हैं और उनमें से सांख्य तथा योग को प्रमुख बताते हुए योग की महत्ता का प्रतिपादन करते हैं—

''सन्यासस्तु महाबाहो दुःखमाप्तुयोगतः।
योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म नचिरेणाधिगच्छति।''[4]

कि योग के बिना तो सांख्य की साधना करना कठिन है। योग से युक्त होकर अर्थात् योग निष्णात् होकर मुनि लोग शीघ्र ही ब्रह्म का साक्षात्कार कर लेते हैं। योग के द्वारा ब्रह्म प्राप्ति का उपाय सरल हो जाता है। इसलिए भगवान कृष्ण योग के महत्त्व को बतलाते हुए अर्जुन को योगी बनने की प्रेरणा देते हैं।

* शोधछात्र, पी-एच.डी. (संस्कृत), क. मुं. हिन्दी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ, डॉ. बी. आर. अम्बेडकर विश्विद्यालय, आगरा

''तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपिमतोधिकः।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन।।'[5]

हे अर्जुन! तप करने वाले ज्ञानियों और सकाम कर्म में युक्त हुए इन सभी में से योगी श्रेष्ठ है। अतः तुम योगी बन जाओ। भगवान श्रीकृष्ण के कथनों से प्रमाणित होता है कि महाभारत काल में योग का स्थान महत्त्वपूर्ण था।

सांख्य मतानुसार—

''पुंप्रकृत्योर्वियोगेऽपि योग इत्यभिधीयते।''[6]

पुरुष तथा प्रकृति का पृथकत्व स्थापित कर दोनों का वियोग करके पुरुष का स्वरूप स्थित होना योग है। इसी क्रम में महर्षि पतञ्जलि योग परिभाषित करते हुए कहते हैं—''योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।''[7] चित्त की वृत्तियों का निरोध ही योग है। अर्थात् प्राप्य विषयों के अतिरिक्त विषयों से चित्त या मन को रोककर अन्तर्मुख करके अपने कारण चित्त में लीन कर देना ही योग है। अतः मन की एकाग्रता को सभी दर्शनों में ब्रह्म साक्षात्कार के लिए आवश्यक माना गया है। योग के द्वारा ही हमारे ऋषियों तथा मुनियों ने लौकिक तथा पारलौकिक दोनों प्रकार के सुखों को प्राप्त किया है। महर्षि पतञ्जलि ने इन सुखों की प्राप्ति के लिए योग के आठ अंगों के अनुष्ठान की प्रक्रिया बताई है—

''योगाङ्गाऽनुष्ठानात् अशुद्धिक्षयेज्ञानदीप्तिः आविवेकख्यातेः।''[8]

''यमनियमासनप्राणायाम प्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयः अष्टौ अङ्गानि।''[9]

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि ये योग के आठ अंग माने गये हैं। इन आठ अंगों को विवेक ख्याति का साधन माना गया है। इनके सम्यक् प्रकार के अनुष्ठान से चित्त की शुद्धि होती है और मन एकाग्र होता है और योगी के लिए मन का एकाग्र होना आवश्यक है।

योग सूत्र की तरह महाभारत में भी योग के आठ अंग माने गये हैं—''वेदेषु चाष्टगुणिनं योगमाहुर्मनीषिणः।''[10] बौद्धदर्शन में भी अष्टांग योग का उल्लेख प्राप्त होता है परन्तु वहाँ इन्हें अष्टाङ्गमार्ग की संज्ञा से अभिहित किया गया है।

''मग्गानट्ठङ्गिको सेट्ठो सच्चानं चतुरो पदा।''[11]

सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वाचक, सम्यक् आजीवन, सम्यक् व्यापाम, सम्यक् स्मृति और सम्यक् समाधि इन आठों मार्गों के अनुपालन से दुःख निरोध होता और ज्ञान की प्राप्ति होती है। ज्ञान प्राप्ति होने पर मनुष्य निर्वाण को प्राप्त होता है। इसी प्रकार महर्षि पतञ्जलि द्वारा बताये गये योग के आठों अंग बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। जिनमें ये यम के बिना कोई अभ्यासी योग का अधिकारी नहीं बन सकता है। यम के पालन से हमारे सामाजिक और नैतिक मूल्यों की वृद्धि होती है। यम के पाँच अंग बताये गये हैं—''अहिंसासतयास्तेयब्रह्मचर्या-परिग्रहायमाः''[12] अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपिग्रह इन सभी का पालन करना प्रत्येक व्यक्ति का नैतिक कर्त्तव्य है तथा हमारे वेदों में भी उल्लिखित है। 'सत्यं वद् धर्म पर' पतञ्जलि के अनुसार—''अहिंसा प्रतिष्ठायां सन्निधौ वैरत्यागः''[13] अहिंसा का भाव दृढ़ हो जाने पर निकटवर्ती समस्त जीव वैरभाव त्याग देते हैं। तथा ''सत्यप्रतिष्ठायां-क्रियाफलाश्रयत्वम्''[14] कि सत्य की स्थिति दृढ़ हो जाने पर क्रियाफल के आश्रय का भाव जाता है। अतः सभी प्राणियों का हित करने वाला सत्य बोलना चाहिए। अस्तेय अर्थात् चोरी न करना यह बौद्ध दर्शन में भी पञ्चशील सिद्धान्त के वर्णन में प्राप्त होता है। पतञ्जलि के अनुसार अस्तेय—''अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोंपस्थानम्।''[15] ब्रह्मचर्य के विषय कहते हैं—''ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठायां वीर्यलाभः।''[16] सब इन्द्रियों को निरोधपूर्वक 'उपस्थेद्रिय' के संयम का नाम ब्रह्मचर्य है। अथर्ववेद में भी कहा गया है—

''ब्रह्मचर्येण तपसादेवा मृत्युमुपघ्नत।
इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वराभरत।''[17]

अर्थात् ब्रह्मचर्य के पालन द्वारा देवताओं ने मृत्यु को जीत लिया तथा इन्द्र ब्रह्मचर्य के द्वार देवताओं में श्रेष्ठ बना। ब्रह्मचर्य के पालन से योग पूर्णता को प्राप्त होता है।

इसके बाद अपिग्रह को बताते हुए कहते हैं कि आवश्यकता से अधिक वस्तुओं का संग्रहण न करना अपिग्रह है। संग्रह करना लोभ है जो योगी का गुण नहीं है।

नियम भी प्रत्येक मनुष्य के जीवन में आवश्यक है तभी उसे समस्त सुखों की प्राप्ति हो सकती है। महर्षि पतञ्जलि के अनुसार नियम भी पाँच प्रकार के होते हैं—''शौचसन्तोषतपःस्वध्यायेश्वर प्रणिधानानिनियमाः।''[18] शैच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान ये नियम है। जिनमें शैच दो प्रकार का बताया गया है—आभ्यन्तर तथा ब्रह्म, योग भाष्य में भगवान वेदव्यास कहते हैं—''शौचं मृज्जजलादिजनितंमेध्याभ्यवहरणादि च बाह्यम, आभ्यन्तरं चित्तमलानामाक्षालनम्।''[19] कि मिट्टी तथा जल से शरीर तथा घर आदि की सफाई करना वाह्य शुद्धि है तथा असूया, ईर्ष्या, मद मात्सर्य आदि चित्त के मल हैं इनका प्रक्षालन करना आन्तरिक शुद्धि है। शौच से मन एकाग्र तथा इन्द्रियाँ वश में हो जाती हैं। योगी के लिए सन्तोष भी आवश्यक है। महर्षि पतञ्जलि के अनुसार, ''सन्तोषादनुत्तम सुखलाभः।''[20] अर्थात् संतोष से ही सबसे उत्तम सुख प्राप्त होता है। जब पूर्ण सन्तोष प्राप्त कर साधक का मन स्थिर हो जाता है तो समस्त तृष्णाओं का नाश हो जाता है और तप के द्वारा अशुद्धि का नाश होने से शरीर और इन्द्रियों की शुद्धि होती है। ''कायेन्द्रियसिद्धिः अशुद्धिःक्षयात् तपसः।''[21] महाभारत में भी तप की महिमा को कुछ इस प्रकार कहा गया है—

''मनश्चेन्द्रियाणां चाप्यैकाग्रयं निश्चितं तपः।''[22]

अर्थात् मन और इन्द्रियों की एकाग्रता ही निश्चित रूप से तप है। स्वाध्याय स्व अर्थात् आत्मा (मैं) का अध्ययन चिन्तन मनन करना ही स्वाध्याय है। स्वाध्याय से ही इष्ट देवता के दर्शन होते है।''[16] इसी क्रम में ईश्वर प्रणिधान को बताते हुए महर्षि पतञ्जलि कहते हैं—''समाधि सिद्धिरीश्वर प्रणिधानात्।''[17] अर्थात् समाधि की सिद्धि ईश्वर प्रणिधान से होती है। समाधि की सिद्धि के लिए योगी को आसन की आवश्यकता होती है महर्षि पतञ्जलि ने तो अनेकों प्रकार के आसनों का उल्लेख किया है परन्तु कहते हैं—''सिरिसुखमासनम्।''[18] अर्थात् जिस आसन में सुखपूर्वक बैठकर देर तक साधना की जा सके वही आसन है। आसन की सिद्धि होने पर श्वास-प्रश्वास की गति को रोकना प्राणायाम कहलाता है। ''तस्मिन सतिश्वास प्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणयाम।''[19] वेदान्तसार में रेचक, कुम्भक और पूरक के द्वारा प्राणवायु को निगृहीत करने के उपाय को प्राणायाम बताया गया है।

''रेचकपूरककुम्भकलक्षणाः प्राणनिग्रहोपायाः प्राणायामः।''[20] प्राणायाम के पश्चात् साधक प्रत्याहार का अभ्यास करता है।

वेदान्तसार में इसे स्पष्ट किया गया है—''इन्द्रियाणां स्वस्वविषयेभ्यः प्रत्याहरणं प्रत्याहारः।''[21] अर्थात् इन्द्रियों को अपने-अपने विषयों से हटा लेना प्रात्याहार है। इन्द्रियों को विषयों से हटाकर मन को ईश्वर में लगाना परम लक्ष्य है।

इस प्रकार आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार आदि के द्वारा जब चित्त स्थिर हो जाए तब उसको अन्य विषयों से हटाते हुए एक ध्येय में वृत्ति मात्रा द्वारा स्थापित करना ही धारण है। जैसा कि महर्षि पतञ्जलि ने कहा है—''देशबन्धः चित्तस्य धारणा''[22] और धारणा में चित्त जिस वृत्ति से ध्येय में लगता है जब वह वृत्ति इस प्रकार समान प्रवाह से लगातार उदय होती रहे कि और कोई दूसरी वृत्ति बीच में न आये तब उसे ध्यान कहते हैं। पतञ्जलि के अनुसार—''तत्र प्रतययैकतानताध्यानम्।''[23] जब ध्यान में केवल ध्येय मात्र का बोध रह जाता है और स्वरूप शून्य-सा हो जाता है। वह अवस्था समाधि कहलाती है। महर्षि पतञ्जलि के अनुसार—''तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः।''[24] ध्यान की अन्तिम अवस्था का नाम समाधि है। समाधिस्थ साधक आत्म साक्षात्कार के द्वारा ईश्वर को प्राप्त कर लेता है।

इसी प्रकार गीता में ''समत्वं योाग उच्यते।''[25] तथा ''योगः कर्मसु कौशलम्।''[26] कहकर योग की महत्ता का प्रतिपादन किया गया है तथा श्रीमद्भागवत् में भगवान श्रीकृष्ण उद्धव जी को उपदेश देते हुए कहते हैं—

"जितेन्द्रियस्य युकृतस्य जितश्रवासस्य योगिनः।
मयि धारयतश्चेत उपतिष्ठन्ति सिद्धः।"[27]

जब योगी इन्द्रिय प्राण और मन को वश में करने हेतु अपने चित्त को मुझमें लगाकर मेरी धारणा करने लगता है तो उसको समस्त सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं। महर्षि पतञ्जलि भी कहते हैं कि—"समाधिभावनार्थः क्लेशतनूकरणार्थश्च।"[28] यह क्रिया योग समाधि को सिद्ध करने वाला तथा अविद्या से उत्पन्न सभी कष्टों को दूर करने वाला है।

इस प्रकार निष्कर्षतः हम देखते हैं कि भारतवर्ष में प्राचीन काल से योग का विकास हुआ है। हमारे संस्कृत वाङ्मयों में योग विद्या मोती के समान बिखरे हुए हैं परन्तु महर्षि पतञ्जलि ने योग सूत्र की रचना करके अपने अनुरूप उन्हें एक माला में पिरो दिया है। योग पर अनेक ग्रन्थ लिखे गये हैं लेकिन पातञ्जल योग का महत्त्व अधिक है। योग की विभिन्न पद्धतियों एवं उपासना आदि के द्वारा मनुष्य अपने चित्त को निर्मल कर अन्तःचेतना को जागृत कर सकता है जो ज्ञान की वृद्धि तथा चरित्र निर्माण में उपयोगी है जैसा कि यम, नियम आदि के पालन से क्षमा, दया, करुणा आदि के भाव स्वतः उत्पन्न हो जाते हैं तथा विभिन्न प्रकार के आसनों और प्राणायाम को अपनाकर मनुष्य निरोग रह सकता है। धारणा, ध्यान और समाधि इन तीनों को संयम कहा गया है इसके सम्यक् रूप से पालन के द्वारा ईश्वर का साक्षात्कार किया जा सकता है हमारे ऋषियों ने योग के द्वारा ही ब्रह्म साक्षात्कार को प्राप्त किया साधक योग के द्वारा ही अपने इन्द्रियों को विषयों से हटाकर तथा मन को एकाग्र कर ईश्वर में लगाता है। अतः योग साधना के द्वारा ही मानव का चतुर्दिक् विकास सम्भव है जिसके द्वारा सम्पूर्ण मानव समाज का कल्याण होगा।

सन्दर्भ—

1. पातञ्जलयोग (योगसिद्धि), सुरेशचन्द्र श्रीवास्तव, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पृष्ठ-30.
2. ऋ. 10.79.10
3. पा.यो. प्र., श्री स्वामी ओमानन्दतीर्थ, गीता प्रेस गोरखपुर, पृष्ठ-140
4. गीता-5/6
5. गीता-6/46
6. सम्पूर्ण योगविद्या, राजीव जैन, मंजुला पब्लिशिंग हाउस, मालवीय नगर, भोपाल, पृष्ठ-34.
7. पा. यो. सू. 1/2
8. वही, 2/29
9. पा. यो. प्र, पृष्ठ-355
10. धम्मपद-20/1-2, पा. यो. प्र. पृष्ठ-357.
11. पा0 यो. सू.-2/30
12. वही, 2/35
13. वही, 2/36
14. वही, 2/37
15. वही, 2/38
16. अथर्ववेद, अध्याय-3 सू. ज, मं.-19
17. पा. यो. सू. 2/32
18. योग भाष्य-2/32.
19. पा. यो. सू.-2/42.
20. पा. यो. सू.-2/43.
21. महाभारत (30/260/25).
22. पा. यो. सू.-2/44.
23. वही-2/45.
24. वही-2/46.
25. वही-2/49.
26. वही-2/49.
27. वेदान्तसार, सन्तनारायण श्रीवास्तव, सुदर्शन प्रकाशन, गाजियाबाद, 2005, पंचम संस्करण, पृष्ठ-165.
28. वेदान्तसार, पृष्ठ-165.
29. पा.यो.सू.-3/1.
30. वही-3/2.
31. वही-3/3.
32. गीता-2/48.
33. वही-2/50.
34. श्रीमद्भागवत्-11/15/1.
35. पा. यो. सू.-2/2.

SHODH CHETNA – YEAR-2 (JAN. TO MARCH, 2016) VOL. 1
ISSN : 2350-0441

मेघदूत में शृंगार का वैशिष्ट्य

❐ श्यामाचरण उपाध्याय

शोध सारांश

मेघदूत में कालिदास ने शृंगार के दोनों भेदों का भरपूर वर्णन किया है। शृंगार के विषय में मेघदूत में वर्णित भूमिका की उक्ति दृष्टव्य है—''इनमें मानवीय प्रेम का उदात्त स्वरूप प्रस्तुत किया जाता है। प्रेमी-प्रेमिका के अलौकिक प्रणय का हृदयस्पर्शी एवं मधुर वर्णन ही इन काव्यों का उद्देश्य होता है। कालिदास शृंगार के मर्मज्ञ कवि हैं। वह जानते हैं कि संयोग की पूर्णता विरह में ही पल्लवित होती है—''न बिना विप्रलम्भेद संभोगः पुष्टिमश्नुते'' इसी विचार से अनुप्राणित होकर मेघदूत खण्डकाव्य में शृगार की महत्ता स्थापित करने के लिए कवि ने विप्रलम्भ शृंगार से खण्डकाव्य का प्रारम्भ किया।

मेघदूत खण्डकाव्य लौकिक संस्कृत साहित्य के सर्वश्रेष्ठ कवियों में अग्रणी महाकवि कालिदास की शृंगार रस-प्रधान एक उत्कृष्ट कृति है। एक किंवदन्ती के अनुसार प्रारम्भ में कालिदास महामूर्ख थे। संयोगवश विद्योत्तमा नामक एक विदुषी राजकुमारी से शास्त्रार्थ में परास्त हो गये। विद्वानों ने प्रतिशोध की भावना से उस विदुषी महिला का पाणिग्रहण महामूर्ख कालिदास के साथ करा दिया, बाद में कालिदास की मूर्खता का ज्ञान होने पर विद्योत्तमा द्वारा उपेक्षित, कालिदास भगवती काली के आशीर्वाद से शास्त्रनिष्णात् होकर विद्योत्तमा से पुनः भेंट होने पर विद्योत्तमा द्वारा कहे गये 'अस्ति कश्चिद् वाग् विशेषः'[1] उक्ति से अनुप्राणित कालिदास ने 'कश्चिद्' शब्द को मेघदूत के प्रथम श्लोक के प्रथम शब्द के रूप में प्रयुक्त किया है।

यद्यपि कालिदास ने अपनी कृतियों में यथोचित सभी रसों का समावेश किया है तथापि कालिदास शृंगार रस के ही उत्कृष्ट कवि हैं। मेघदूत में शृंगार का वैशिष्ट्य को देखने से पूर्व हमें शृंगार के स्वरूप को भी ज्ञात कर लेना चाहिए। तथेहि—

शृंग हि मन्मथोद्भेदस्तदागमन हेतुकः।[2]
उत्तम प्रकृतिप्रायो रसः शृंगार इष्यते॥

शृङ्ग हीति—कामदेव का उद्रेक शृंग कहलाता है।[3] मन्मभोद्भेद् का शृंग दूसरा नाम है। शृंग की व्युत्पत्ति शृणाति दशम्दशया हन्ति कामुकान् इति। अर्थात् कामदेव के उद्रेक से मृत्यु की दशा को प्राप्त कराने वाले व्यापार शृंग कहलाता है।[4] साहित्य दर्पण के अनुसार शृंगार का स्वरूप देखिए—

* शोध छात्र (संस्कृत), कन्हैया लाल माणिक लाल मुंशी हिंदी एवं भाषा विज्ञान संस्थान, डॉ. भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, आगरा

भ्रूविक्षेपकटाक्षादिरनुभावः प्रकीर्तितः[5]
त्यक्वौग्रयमरणालस्यजुगुप्सा व्यभिचारिणः
स्थायिभावोरतिः श्याम वर्णोऽयं विष्णुदैवतः

शृंगार के दो भेद हैं—(1) विप्रलम्भ शृंगार, (2) संभोग शृंगार तथेहि—

विप्रलम्भोऽय सम्भोग इत्येष द्विविधोमतः॥[6]

मेघदूत में कालिदास ने शृंगार के दोनों भेदों का भरपूर वर्णन किया है। शृंगार के विषय में मेघदूत में वर्णित भूमिका की उक्ति दृष्टव्य है—'इनमें मानवीय प्रेम का उदात्त रूप प्रस्तुत किया जाता है। प्रेमी-प्रेमिका के अलौकिक प्रणय का हृदयस्पर्शी एवं मधुर वर्णन ही इन काव्यों का उद्देश्य होता है।''[7]

कालिदास शृंगार के मर्मज्ञ कवि हैं। वह जानते हैं कि संयोग की पूर्णता विरह में ही पल्लवित होती है। तथेहि—

न विना विप्रलम्भेद सम्भोगः पुष्टिमश्नुते॥[8]

इसी विचार से अनुप्राणित होकर खण्डकाव्य में शृंगार की महत्ता स्थापित करने के लिए कवि ने विप्रलम्भ शृंगार से ही खण्डकाव्य को प्रारम्भ किया गया है—

कश्चिद् कान्ता विरह गुरूणा स्वाधिकारात्प्रमत्तः[9]

प्रियतमा से मिलन अवधि सामीप्य की कल्पना सहृदय विरही यक्ष के हृदय में ऐसा विचारों का ज्वार उमड़ा देती है कि दीर्घकाल से विरह वेदना भोगी यक्ष भाव-विभोर होते हुए चेतन तथा अचेतन भेद शून्य हो जाता है, तथा अचेतन पदार्थों में चैतन्यता की अनुभूति करने लगता है—

धूमज्योति सलिलमरूतां सन्निपातः क्व मेघः[10]
सन्देशार्थाः क्वपटुकरणैः प्राणिभिः प्रापणीयाः।
इत्यौत्सुक्यादपरिगणयन् गुह्यकस्तं ययाचे।
कामार्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु।

कामीजन की जड़ और चेतन में भेद न कर पाने की स्थिति को साहित्य दर्पण में विप्रलम्भ शृंगार के अन्तर्गत उन्माद माना है। तथेहि—

अभिलाषः स्पृहा चिन्ता प्राप्त्युपायादि चिन्तनम्।[11]
उन्मादश्चापरिच्छेदश्चेतना चेतनेष्वपि॥

शृंगार में उन्माद का विस्तृत वर्णन मिलता है। मेघदूत में विरह दग्ध यक्ष की उन्मादकता देखते ही बनती है। जिसमें यक्ष अपनी कुशलता का सन्देश अपनी प्राणवल्लभा तक पहुँचाने के लिए अचेतन मेघ की वाक्पटुतापूर्ण चाटुकारिता कर रहा है—

जांत वंशे भुवन विदिते पुष्करावर्तकानां[12]
जानामि त्वां प्रकृति पुरूषं कामरूपं मघोनः
तेनार्थित्वं त्वयि विधिवशाद् दूरबन्धुर्गतोऽहं
याच्ञा मोघा वरमधि गुणे नाधमे लब्धकामा॥

सौन्दर्य को शृंगार का प्रमुख तथ्य बिन्दुत्यां मूल कह सकते हैं सौन्दर्य के अभाव में शृंगार की कल्पना अपूर्ण ही मानी जायेगी। यह सौन्दर्य आन्तरिक है तो आत्मिक अनुभूत का विषय बन जायेगा और यदि सौन्दर्य बाह्य जगत का है तो इन्द्रियानुभूत विषय बनेगा। कविगण बाह्य सौन्दर्य का वर्णन काव्य जगत में प्राकृतिक सौन्दर्य तथा मानव सौन्दर्य का वर्णन अन्योन्याश्रित रूप में करते हैं। यद्यपि कालिदास मानव शारीरिक अंगों की उपमा प्राकृतिक अवयवों से करते हैं तथापि मेघदूत में कवि ने नारी सौन्दर्य को प्राकृतिक सौन्दर्य से भी श्रेष्ठ दर्शाया है। इसी सन्दर्भ में यहाँ पृथ्वी को नायिका के रूप में तथा आम्रकूट पर्वत को उसके स्तनों के रूप में वर्णन देखिए—

छन्नोपान्तः परिणत फल द्योतिभिः काननाम्रैः[13]
स्त्वटयारूढे शिखरमचलः स्निग्धवेणी सवर्णे।
नूंन यास्यत्मरमिथुन प्रेक्षणीयामवस्थां
मध्ये श्यामः स्तन इव भुवः शेषविस्तार पाण्डुः॥

कवि ने निर्विन्ध्या नदी का मानवीकरण मेघ के समक्ष करते हुए निर्विन्ध्या को यौवन से परिपूर्ण नायिका की भाँति प्रस्तुत किया है तथा कुलीन नायिकाएँ अपने प्रेमी के समक्ष अपना प्रथम प्रणय निवेदन मुख से नहीं करके स्त्रियोचित अंग प्रदर्शन के द्वारा करती है। इस सन्दर्भ में कवि ने बड़ा ही सटीक वर्णन किया है। तथेहि—

स्त्रीणामाद्यं प्रणयवचनं विभ्रमोहि प्रियेषु[14]

कुछ इसी प्रकार के भाव का वर्णन कालिदास ने अभिज्ञान शकुन्तलम में शकुन्तला का दुष्यन्त के प्रति अनुराग प्रदर्शन करने में किया है। तथेहि—

दर्भाङ्कुरेण चरणः क्षत इत्यकाण्डे[15]
तन्वी स्थिता कतिचिदेव पदानि गत्वा
आसीद्विवृत्त वदना च विमोचयन्ती
शाखासु वल्कलमसक्तमपि द्रुमाणाम्॥

शृंगार की पाँचवीं अवस्था का वर्णन सिन्धु नदी को कृशकाय विरहिणी नायिका के रूप में प्रस्तुत स्वभाविका दृश्य को देखिए—

वेणीभूत प्रतुन सलिला, तामतीतस्य सिन्धुः[16]
पाण्डुच्छाया तरुभ्रंशिभिर्जीर्ण पर्णै।

कवि मेघदूत में गम्भीर नदी को एक नायिका के रूप में प्रस्तुत करते हुए उसके शारीरिक सौन्दर्य एवं कामोत्तेजक भाव भङ्गिमा का अद्भुत दृश्य उपस्थित करके यह सिद्ध कर देते हैं कि उन्होंने शृंगार के सर्वोच्च शिखर को चूमा है। तथेहि—

तस्याः किञ्चित्कर धृतमिव प्राप्त वानीर शाखं[17]
हृत्वा नीलं सलिलवसनं मुक्तरोधोनितम्बम्।
प्रस्थानं ते कथमपि सखे लम्बमानस्य भावि।
ज्ञातास्वादो विवृतजघनां को विहातुं समर्थः॥

कवि ने यहाँ पर गम्भीर के जल को उसके वस्त्र की तथा तट को उसके नितम्बों की संज्ञा देते हुए नायक द्वारा नायिका के अधोवस्त्र को नीचे खिसकाने का दृश्य उपस्थित किया है, तथा नायिका के द्वारा उस वस्त्र को दोनों हाथों से पकड़कर नायक का प्रतिकार दर्शन तथा नायिका की लज्जायुक्त शिष्टता से कवि ने बड़ा ही मनोहर शृंगार का परिवेश बना दिया है।

शृंगार में मदमस्त रमण की तीव्र इच्छा वाले जनों से कामिनी किस भाँति नखपद सुख का अनुभव कराती है। इसका मेघदूत में नैसर्गिक मनमोहक वर्णन देखिए—

वेश्यास्त्वन्तों नखपद सुखान्प्राप्य वर्षाग्रबिन्दु[18]

कामशास्त्र के अनुसार भी रतिक्रीड़ा के दश बाह्य व्यापारों में नखक्षत भी एक काम व्यापार है, देखिए—

नखदानं व घातश्च ग्रहणं कुचकेशयोः[19]
... बाह्य प्रचक्ष्यते॥

कवि का मेघ को निर्देश देखिए कि वह (मेघ) रात के अंधेरे में अपने प्रियतम से मिलने के लिए जाती हुई अभिसारिकाओं के मार्ग को अपनी विद्युत के प्रकाश से प्रकाशित करें। तथेहि—

गच्छन्तीनां रमणवसतिं योषितां तत्र नक्तं[20]
रुद्धालोके नरपतिपथे सूचिभेद्धौस्त मोभिः
सौदामन्य कनकनिकषस्निग्धया दर्शयोर्वी
तोयोत्सर्गस्तनिक मुखरो मा स्म भूर्विक्लवास्ताः

प्रियतम से मिलन हेतु जाती हुई अभिसारिकाओं के लिए इस प्रकार का सहयोगी भाव कवि को शृंगार के प्रत्येक विभाग का पक्षधर सिद्ध करता है तथा कवि को भी शृंगार वर्णन के प्रत्येक क्षेत्र में वर्णन से अपने खण्ड काव्य को अद्भुत शृंगारिकता से परिपूर्ण किया है।

इस अद्वितीय खण्डकाव्य में प्राकृतिक उपादानों को मानव आकृति में रूपान्तरित करते हुए मानवीय सौन्दर्य गुणों को उकेरने वाले शृंगारिकता के उदाहरण भरे पड़े हैं। तथेहि—

तां कस्याञ्चिद्भ वनलभौ सुप्त पारावताया।[21]
नीत्वा रात्रिं चिरविलसनात्खिन्नविद्युतकलत्रः।

खण्डकाव्य में कवि का कामोत्तेजक स्त्री-पुरुषों की रतिक्रीड़ा का शृंगारिकता से परिपूर्ण मनमोहक वर्णन दृष्टव्य है। प्रियतमा अपने प्रियतमों के द्वारा हटाये गये अधोवस्त्रों के कारण नग्नावस्था में लजाती हुई कक्ष में मणियों के प्रज्ज्वलित दीपकों पर चूर्ण फेंककर उन्हें बुझाने का असफल प्रयत्न कर रही होती हैं। तथेहि—

नीवीबन्धोच्छ्वसित शिथिलं यत्र बिम्बाधराणां[22]
क्षौमं रागादनिभृत करेष्वाक्षिपत्सु प्रियषु।
अर्चिस्तुङ्गानभिमुखमपि प्राप्य रत्नप्रदीपान
ह्री मूढानां भवति विफल प्रेरणा चूर्णमुष्टिः॥

कवि ने पृथ्वी की अनन्यतम सुन्दरियों की शृंगारिक दशाओं का वर्णन करते हुए यक्ष को अनन्य एवं सच्चे प्रेमी की भाँति किसी अन्य स्त्री के रूप लावण्य में मोहित न हुआ होता, अपनी प्रियतमा के रूप लावण्य में ही अनुरक्त रहते हुए, उसे विधाता की प्रथम कृति बताकर एक आदर्श प्रेमी का उदाहरण प्रस्तुत किया है। तथेहि—

तन्वी श्यामा शिखरिदशना पक्वबिम्बा धरौष्ठी[23]
मध्ये क्षामा चकितहरिणी प्रेक्षणा निम्ननाभिः।
श्रोणीभारादलसगमना स्तोकनम्रा स्तनाभ्यां
या तत्र स्याद्युवति विषये सृष्टिराद्येव धातुः॥

अभिज्ञान शाकुन्तलम् में दुष्यन्त का शकुन्तला के प्रति ऐसा ही भाव है। देखिए—

स्त्रीरत्न सृष्टिरपरा प्रतिभाति सा मे।[24]

प्रियतम एवं प्रियतमा का अनन्यतम प्रेम मेघदूत में देखते ही बनता है। संगीतानुरागिणी यक्षिणी प्रियतम के विरह में शारीरिक शृंगार से वियुक्त होकर विरह के दिन व्यतीत कर रही है तथा पति के द्वारा रची गई कविता को गाने की इच्छुक है लेकिन पति के विरह में व्याकुल होकर वह किस प्रकार अपनी सुध-बुध खो बैठती है। देखिए—

भूयो भूयः स्वयमपि कृतां मूर्च्छनां विस्मरन्ती[25]

शृंगार के अन्तर्गत काम की दश अवस्थाओं में वर्णित तीसरी अवस्था संकल्प है—नयनप्रीतिः प्रथमं चित्तासङ्गस्ततोऽथसङ्कल्पः।[26] काम की तीसरी अवस्था का कवि ने यक्षिणी की विरहावस्था की दशा में विरहिणी के द्वारा अपने प्राण वल्लभा के विरह के दिनों को, देहली पर फूल रखकर गिनना तथा प्राणेश्वर के साथ आरम्भ में संभोगावस्था की आनन्दानुभूति अपनी कल्पना शक्ति के द्वारा करना आदि। मेघदूत में यह सब दृश्य बड़ी ही स्वाभाविक गति से कवि ने प्रवाहित कर दिये हैं। तथेहि—

शेषान्मासान्विरहदिवसस्थापितस्यावधेर्वा[27]
विन्यस्यन्ती भुविगणनया देहलीदत्त पुष्पैः।
संभोगं वा हृदयनिहितारम्भमास्वादयन्ती।
प्रायेणैते रमणविरहेष्वङ्गनानां विनोदाः॥

इस काव्य में विरह दग्ध प्रियतम एवं प्रियतमा का विशुद्ध प्रेम वर्णन—

एक ऐसा प्रेम जिसे आत्मिक प्रेम कह सकते हैं जिसके समक्ष शारीरिक प्रेम कहीं नहीं ठहरता।

इस प्रकार के प्रेम में प्रेयसी के शारीरिक सौन्दर्य को महत्व न देते हुए आत्मिक सौन्दर्य पुष्ट होता है यह प्रेम लौकिक प्रेम की पराकाष्ठा के रूप में अलौकिक प्रेम के रूप में स्थापित हो जाता है। तथेहि—

स्पर्शक्लिष्टामयमितनखेनासकृत्सारयन्ती[28]
गण्डाभोगात्कठिनविषमामेकवेणीं करेण।

अनन्य प्रेमी जन अपने प्रिय अथवा प्रिया के विरह में कितने भाव-विह्वल हो जाते हैं कि उनकी भाव विहलात का दर्शन करने वाले सहृदय जन की करूणाक्रान्त हो जाती है। तथेहि—

त्वामप्यस्रं नवजलमय मोचयिष्यत्यवश्यं[29]
प्रायः सर्वो भवति करूणावृत्ति रार्द्रान्तरात्मा॥

विरह दशा का वर्णन करते हुए कालिदास ने प्रेमीजनों की कारूणिक अवस्था की पराकाष्ठा का बड़ा ही हृदय विदारक चित्रांकन किया है। तथेहि—

त्वामालिख्य प्रणयकुपितां धातुरागैः शिलाया[30]
मात्मानं ते चरणपतितं यावदिच्छामि कर्तुम।
अस्त्रैस्तावन्मुहुरूपचितै र्दृष्टिरालुप्यते मे
क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते सङ्गमं नौ कृतान्तः॥

इस प्रकार उपर्युक्त खण्ड काव्य में वर्णित शृंगार का अवलोकन करने से यह तथ्य उजागर होता है कि मेघदूत महाकवि कालिदास की अनन्यतम कृति है। जिसमें शृंगार का बड़ा ही स्वाभाविक एवं अविरल धारा प्रवाह मिलता है। इसमें सन्देह नहीं कि मेघदूत खण्डकाव्य शृंगार के भावों का अथाह सागर है। इसके अध्ययन से प्रेमीजनों को विविध प्रकार के आनन्द की अनुभूति होती है।

ऋषियों ने जिस प्रकार भौतिक जगत के मनुष्यों के लिए चार पुरूषार्थों (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) में से तीन पुरुषार्थों का निर्वहन करते हुए अन्तिम लक्ष्य मोक्ष को

पुरुषार्थ के रूप में प्राप्त करना ही जीवन का परम उद्देश्य माना है। ठीक वैसे ही कालिदास ने इसे खण्डकाव्य के माध्यम से सहृदयजनों को श्रृंगार के समस्त लौकिक पक्षों का दर्शन कराते हुए अलौकिक श्रृंगार की परिणति अपने अंतिम चरण में की है। नारी सौन्दर्य के वासनापूर्ण शारीरिक सौन्दर्य से संतृप्त कराते हुए मानव को अलौकिक श्रृंगार में तल्लीन कर देना ही मेघदूत में श्रृंगार का वैशिष्ट्य समाहित है।

सन्दर्भ—

1. मेघदूत भूमिका पृष्ठ सं. 2
2. सा. दर्पण 3/183
3. सा. दर्पण पृष्ठ सं. 226
4. सा. दर्पण पृष्ठ सं. 226
5. सा. दर्पण 3/185
6. साहित्य दर्पण 3/186
7. भूमिका मेघदूतम, पृष्ठ 33
8. अभि.शा. पृष्ठ सं. 168 द्वितीय अंक पूर्व भाग
9. पूर्व मेघदूत 1
10. पूर्व मेघदूत/5
11. साहित्य दर्पण 3/191
12. पूर्व मेघदूत - 6
13. पूर्व मेघदूत - 18
14. पूर्व मेघदूत - 29
15. अभि.शा. - 12
16. पूर्व मेघदूत-30
17. पूर्व मेघदूत-44
18. पूर्व मेघदूत-38
19. मेघदूत के अनुसार स्मरदीपिका से
20. पूर्व मेघदूत-40
21. पूर्व मेघदूत-41
22. उत्तर मेघ/7
23. उत्तर मेघ/22
24. अभि.शा. 2/9
25. उ.मेघ-26
26. मेघदूत पृ.सं. 43
27. उत्तर मेघ-27
28. उ.मेघ-32
29. उ.मेघ-33
30. उत्तर मेघ-45

SHODH CHETNA – YEAR-2 (JAN. TO MARCH, 2016) VOL. 1
ISSN : 2350-0441

महिला उद्यमियों की आपेक्षाएँ

❐ हरिओम शुक्ला

शोध सारांश

जिस समाज मे महिलायें जितनी अधिक अधिकार सम्पन्न और सम्मानित होंगी वह उतना ही श्रेष्ठ माना जाता है। किसी भी देश की प्रगति व आर्थिक विकास में महिलाओं की भूमिका पुरुषों से कम नहीं है। आज प्रत्येक देश चाहे वह अल्प विकसित हो या विकासशील अपने को विकसित देशों में लाने के लिए प्रयासरत है ताकि देश निर्धनता व बेरोजागारी से निजात पा सके। आज हर क्षेत्र में महिलाओं ने पुरुष के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर चलना शुरू कर दिया है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में असंदिग्ध रूप से यह कहा जा सकता है कि प्रत्येक क्षेत्र में महिलाओं ने अपने दायित्वों का निर्वाह करते हुए आत्म उन्नयन के साथ शब्द उन्नयन को भी मूर्तरूप दिया है।

जिस समाज में महिलाएँ जितनी अधिक अधिकार संपन्न और सम्मानित होंगी, वह उतना ही श्रेष्ठ माना जाता है। किसी भी देश की प्रगति व आर्थिक विकास में महिलाओं की भूमिका पुरुषों से कम नहीं है। आज प्रत्येक देश चाहे वह अल्पविकसित हो या विकासशील अपने को विकसित देशों की श्रेणी में लाने के लिये प्रयासरत् है ताकि देश निर्धनता व बेरोजगारी से निजाद पा सके। आज हर क्षेत्र में महिलाओं ने पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलना शुरू कर दिया है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में असंदिग्ध रूप से यह कहा जा सकता है कि प्रत्येक क्षेत्र में महिलाओं ने अपने दायित्वों का निर्वाह करते हुए आत्म उन्नयन के साथ राष्ट्र उन्नयन को भी मूर्त रूप दिया है। महिलाओं ने सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक क्षेत्रों में अपनी कार्यक्षमता एवं कार्यकुशलता के दम पर अपनी अलग पहचान बनाई है। शासन स्तर पर भी पिछले दो दशकों से भारत में महिलाओं को जीवन के विभिन्न क्षेत्रों और पहलुओं में अधिकार संपन्न बनाने के लिये कड़े कदम उठाये गये हैं। वर्ष 1987 में राष्ट्रीय महिला आयोग की स्थापना, 73वें संविधान संशोधन द्वारा महिलाओं को अधिकार संपन्न बनाने के प्रयास पंचायतीराज संस्थाओं में महिलाओं के लिए 33 प्रतिशत सीट का आरक्षण, राष्ट्रीय महिला नीति की घोषणा एवं वर्ष 2001 को महिला सशक्तिकरण वर्ष के रूप में घोषित करना।

सशक्तिकरण तभी संभव है जब महिलाओं को आर्थिक रूप से सक्षम व स्वावलंबी बनाया जाये। लघु व कुटीर उद्योग क्षेत्र में महिला उद्यमियों की भूमिका महत्वपूर्ण हो सकती है। केन्द्र सरकार

* निकट केशवानी पेट्रोल पम्प, रीवा रोड, ब्योहारी, जिला–शहडोल (म.प्र.)-484774, मो. 9977601256
ई-मेल : hsukla431@gmail.com

व राज्य सरकारें विभिन्न योजनाओं एवं संस्थाओं के माध्यम से लघु एवं कुटीर उद्यमों के विकास हेतु सतत् प्रयासरत् है। भारत सरीखे विकासशील देश में उत्पत्ति के विभिन्न संसाधनों का समुचित विदोहन करने हेतु लघु एवं कुटीर उद्योग ज्यादा उपयुक्त हैं। मानवीय संसाधन चाहे वह पुरुष हो या महिला, स्वरोजगार प्रदान करने में लघु उद्यम ज्यादा सक्षम हैं। वृहद एवं मध्यम उद्यमों के विकास में भी लघु उद्यमों का योगदान अधिक होता है। सम्पूर्ण राष्ट्रीय उत्पादन एवं निर्यात में लघु उद्यमों की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। लघु उपक्रमों का कुल निर्यात में 35 प्रतिशत हिस्सा है, सकल घरेलू उत्पाद में 40 प्रतिशत हिस्सा है तथा औद्योगिक क्षेत्र का 80 प्रतिशत रोजगार लघु उद्यमों से ही प्राप्त होता है। पंजीकृत लघु उद्यमों के प्राप्त आँकड़े बताते हैं कि सन् 2003–03 में 35.72 लाख पंजीकृत लघु उद्यम 7,60,844 करोड़ रुपये लागत मूल्य की वस्तुओं का उत्पादन कर रहे थे। इन उपक्रमों में 199.65 लाख लोगों को रोजगार प्राप्त था ये उपक्रम 69,800 करोड़ रुपये मूल्य का निर्यात कर रहे थे।[1] उपरोक्त आँकड़े सिद्ध करते हैं कि भारतीय अर्थव्यवस्था में लघु उपक्रमों का महत्वपूर्ण स्थान है। लघु उपक्रम औद्योगिक विकास की पृष्ठभूमि हैं। इनमें न सिर्फ नवीन उत्पादों को प्रश्रय प्राप्त होता है बल्कि नवीन तकनीकी व उद्यमीय कौशल को पकने–फूलने का मौका भी प्राप्त होता है।[2] सरकार द्वारा इन उद्यमों को सदैव सहायता व सुविधाएँ विभिन्न योजनाओं एवं सहायता एजेंसियों के माध्यम से प्रदान की जाती है। इन्हें सस्ती दरों पर ऋण, कच्चे माल की आपूर्ति, किराया क्रय पद्धति से भारी मशीनरी क्रय करने की सुविधा, तकनीकी ज्ञान प्राप्त करने की सुविधा, बाजार की उपलब्धता तथा सामयिक सूचनाएँ प्रदान करने का काम सरकारी उपक्रमों द्वार पूर्ण किया जाता है। कुछ विशिष्ट लघु उद्यमों को वृहद उद्योगों से प्रतिस्पर्धा में सहायता व संरक्षण भी प्रदान किया जाता है। यहाँ यह कहना भी प्रासंगिक होगा कि भारतीय संविधान के अनुसार लघु उद्यमों का विकास व संरक्षण राज्य सूची का विषय है परंतु इसके राष्ट्रीय महत्व को देखते हुये भारत सरकार स्वयं इन उद्यमों के विकास हेतु योजनाओं तथा सहायता नीतियों का क्रियान्वयन करती है, जिससे लघु उद्यमों का विकास हो सके। कुल मिलाकर केन्द्र व राज्य सरकारें दोनों ही देश में लघु उद्यम के विकास हेतु प्रतिबद्ध हैं। यहाँ यह कहना भी उचित होगा कि जो सहायता एजेंसियाँ संपूर्ण देश एवं मध्यप्रदेश में लघु एवं मध्यम उद्यमों के विकास हेतु कार्य कर रही हैं। लगभग वही सहायता एजेंसियाँ शहडोल संभाग में उद्यमियों की सहायता कर रही हैं। ये उद्यमी महिला एवं पुरुष दोनों हो सकते हैं।

प्रस्तुत अध्याय में यह जानने का प्रयास किया गया है कि (1) सहायता एजेंसियाँ चयनित महिला उद्यमियों की आशा के अनुरूप कार्य कर रही है अथवा नहीं तथा (2) इन सहायता एजेंसियों के प्रति चयनित महिला उद्यमियों का क्या दृष्टिकोण रहा है? इसके साथ ही विभिन्न सहायता एजेंसियों की संक्षिप्त जानकारी व महिला उद्यमिता विकास संबंधी विभिन्न योजनाओं पर प्रकाश डालने का प्रयास भी इस अध्याय में किया गया है।

अध्ययन क्षेत्र में महिला उद्यमिता विकास हेतु जो विभिन्न सहायता एजेंसियाँ कार्यरत् हैं उनका संक्षिप्त परिचय व महिला उद्यमियों हेतु संचालित विभिन्न योजनाओं की जानकारी यहाँ प्रदान करना प्रासंगिक प्रतीत होता है। उद्योग स्थापना की प्रक्रिया में उद्यमी को अनेकों कार्य करने पड़ते हैं तथा विभिन्न संस्थाओं/विभागों का सहयोग प्राप्त करना पड़ता है। लघु उद्यमों के विकास को प्रोत्साहित करने हेतु मध्यप्रदेश में अनेकों विभाग, निगम तथा

संस्थाएँ कार्यरत् हैं उनमें से महिला उद्यमियों को सहायता पहुँचाने वाली कुछ प्रमुख संस्थाओं की जानकारी निम्नानुसार है–

1. अध्ययन क्षेत्र में जिला उद्योग केन्द्र की भूमिका–

जिला उद्योग केन्द्र किसी भी जिले में होने वाले औद्योगिक क्रियाकलापों की धुरी कहलाता है। किसी भी उद्योग की स्थापना हेतु अनुमति (प्रस्तावित पंजीयन के रूप में) प्रदान करने से लेकर उसकी स्थापना तक अनेकों प्रकार की सहायताएँ/सुविधायें, अनुमतियाँ व अनुशंसायें जिला उद्योग केन्द्र द्वारा की जाती है। शहडोल संभाग में भी जिला उद्योग केन्द्र अपने नये रूप में वर्ष 1977 में भारत सरकार द्वारा घोषित औद्योगिक नीति के अंतर्गत निम्नलिखित प्रमुख उद्देश्यों की पूर्ति हेतु 1.4.1979 से कार्यरत् है–

(1) जिले में संभावित उद्योगों की जानकारी रखना तथा इच्छुक उद्यमियों को यह जानकारी उपलब्ध कराना।

(2) जिले के निवासियों को उद्योग स्थापना हेतु प्रेरित करना।

(3) विभिन्न प्रशिक्षण योजनाओं जैसे ट्रायमेस योजना, स्टेप–अप योजनाआदि के क्रियान्वयन हेतु व्यवस्था तथा सहयोग करना।

(4) लघु क्षेत्र के उद्यमियों को प्रोजेक्ट प्रोफाईल्स उपलब्ध करना।

(5) उद्योग स्थापना के इच्छुक उद्यमियों के अस्थाई पंजीयन करना तथा उद्योग स्थापित हो जाने के उपरांत स्थायी पंजीयन प्रमाण पत्र जारी करना।

(6) शिक्षित बेरोजगारों हेतु चलाई जा रही प्रधानमंत्री रोजगार योजना की नोडल एजेंसी के रूप में कार्य करना।

(7) जिला उद्योग केन्द्र के क्षेत्राधिकार में आने वाले औद्योगिक क्षेत्र, प्रक्षेत्रों में इच्छुक तथा उपयुक्त उद्यमियों को भूमि तथा शेड आवंटित करना अथवा क्रय भाड़ा आधार पर उपलब्ध कराना।

(8) शासकीय खरीदी कार्यक्रम के अंतर्गत लघु क्षेत्र की इकाईयों को क्षमता प्रमाण पत्र (काम्पेटेंसी सर्टिफिकेट) जारी करना।

(9) विद्युत खर्चों में छूट, ब्याज अनुदान में छूट, एन्ट्री टैक्स में छूट, पूँजी अनुदान, विक्रय कर में छूट संबंधी लघु उद्यमियों को मिलने वाली सुविधायें उपलब्ध कराना। प्रकरण तैयार करके जिला स्तरीय समिति के सम्मुख प्रस्तुत करना।

(10) दुर्लभ तथा नियंत्रित कच्चे माल की प्राप्ति हेतु लघु क्षेत्र के उद्यमियों को पात्रता प्रमाण पत्र देना तथा उनके प्रकरण अनुशंसित कर संबंधित संस्थाओं में प्रेषित करना।

(11) इकाई की आवश्यकताओं को देखते हुए पानी, बिजली, टेलीफोन, डीजल, कोयला आदि की मात्रा की आवश्यकता हेतु अनुशंसा, संबंधित विभागों को करना।

(12) विभिन्न विभागों द्वारा उद्योग स्थापना हेतु संबंधित जिले/क्षेत्र में किये जाने वाले क्रियाकलापों हेतु समन्वयकारी भूमिका निभाना जैसे हस्तशिल्प विकास निगम द्वारा हस्तशिल्पों के विकास से संबंधित संचालित की जाने वाली योजनायें, उद्यमिता विकास केन्द्र द्वारा संचालित किये जाने वाले उद्यमिता विकास कार्यक्रम, म.प्र. चर्म शिल्प विकास निगम द्वारा चर्मोद्योग से संबंधित प्रशिक्षण कार्यक्रम, खादी एवं ग्रामोद्योग आयोग के माध्यम से संचालित की जाने वाली योजनाएँ आदि।

(13) क्षेत्र के औद्योगिक विकास से संबंधित अन्य समस्त योजनाओं, कार्यक्रमों के संचालन में सक्रिय भागीदारी निभाना।[3]

2. म. प्र. वित्त निगम–

म. प्र. वित्त निगम (M.P.F.C.) लघु उद्यमों को वित्त प्रदान करनेवाली प्रमुख संस्था है। निगम की स्थापना का मुख्य उद्देश्य नई तथा पूर्वतया स्थापित औद्योगिक संस्थाओं को माध्यम तथा दीर्घ अवधि के ऋण प्रदान करना है। निगम द्वारा निम्नलिखित कार्यों हेतु वित्तीय सहायता प्रदान की जाती है–

(1) वस्तुओं के उत्पाद/निर्माण, परिरक्षण अथवा संरक्षण हेतु

(2) खनन कार्य हेतु

(3) होटल उद्योग हेतु

(4) सड़क, जल या वायु साधनों द्वारा माल एवं यात्रियों के यातायात हेतु

(5) विद्युत या अन्य प्रकार की शक्ति के उत्पादन तथा वितरण हेतु

(6) विभिन्न प्रकार के वाहन व मशीनरी के रख–रखाव, परीक्षण अथवा सुधार हेतु

(7) मशीनरी या शक्ति की सहायता से किसी वस्तु के संयोजन, अथवा पैकिंग कार्य हेतु

(8) भूमि के किसी भाग को औद्योगिक संस्थान के रूप में विकसित करने हेतु

(9) मत्स्योद्योग या मत्स्योद्योग हेतु किनारों पर लगने वाले साधनों या उनके रख–रखाव हेतु

(10) औद्योगिक विस्तार अथवा विशेष तकनीकी ज्ञान या अन्य सेवाएँ प्रदान करने हेतु

(11) अन्य सेवाओं जैसेः स्टोन क्रेशर, चिकित्सा स्वास्थ्य सुविधाएँ टेलेक्स, टेलीफोन, टेली कम्युनिकेशन सुविधाएँ, फोटो कॉपियर, कम्प्यूटराइज्ड सुविधाएँ किराये पर देने हेतु।

निगम 10,000 रुपये से लेकर सामान्य इकाईयों हेतु 30 लाख तथा को–ऑपरेटिव सोसायटीज या कम्पनी के मामले में 60 लाख रूपये तक ऋण प्रदान करता है।

3. मध्यप्रदेश महिला आर्थिक विकास निगम–

मध्यप्रदेश महिला आर्थिक विकास निगम महिलाओं के आर्थिक विकास हेतु एक समर्पित संस्थान है, इसकी स्थापना वर्ष 1988 में हुई है। निगम की स्थापना के मुख्य उद्देश्य है–महिलाओं के आर्थिक स्वावलंबन हेतु योजनाएँ बनाना तथा उन्हें संचालित करना, महिलाओं को आर्थिक गतिविधियाँ संचालित करने हेतु प्रशिक्षण तथा मार्गदर्शन देना, महिला उद्यमों के उत्पादों के विपणन में सहायता देना, ऋण प्रदान करना, मार्जिन मनी तथा अनुदान के रूप में सहायता प्रदान करना आदि। निगम की प्रमुख योजनाओं में ग्राम्या योजना, फोटो कॉपियर योजना प्रमुख है। निगम मुख्य रूप से बैंकों द्वारा अपेक्षित मार्जिन मनी की व्यवस्था न होने पर महिलाओं को कुल परियोजना लागत का 20 प्रतिशत अथवा 10,000 रु. जो भी कम हो तथा संस्थागत प्रकरणों में 20 प्रतिशत अथवा अधिकतम 20,000 रु. जो भी कम हो, मार्जिन मनी के रूप में प्रदान करता है। इस पर 10 प्रतिशत की दर से ब्याज लिया जाता है।

4. मध्यप्रदेश खादी तथा ग्रामोद्योग बोर्ड –

इसकी स्थापना का प्रमुख उद्देश्य ग्रामीण अंचलों में रहने वाले गरीब, आदिवासी, हरिजन महिलाओं एवं पिछड़े वर्ग के सदस्यों को ग्रामोद्योग की स्थापना हेतु प्रशिक्षण, वित्तीय सहायता तथा विपणन हेतु सहायता प्रदान करना है, ताकि ग्रामीण क्षेत्रों में अधिक से अधिक रोजगारों का सृजन हो सके तथा ग्रामोद्योग पनप सकें। यह बोर्ड अति आसान शर्तों पर कुछ निश्चित कार्यकलापों हेतु अनुसूचित जाति/जनजाति के उद्यमियों को 90 प्रतिशत तक अनुदान की सुविधा उपलब्ध कराता है। जिन पर मात्र 1 प्रतिशत की दर से ब्याज लिया जाता है।

5. मध्यप्रदेश अंत्यावसायी सहकारी विकास निगम मर्यादित –

म.प्र. अंत्यावसायी सहकारी विकास निगम की स्थापना 1979 में हुई थी। इसका मुख्य उद्देश्य अनुसूचित जाति/जनजाति के सदस्यों को विकास की मुख्य धारा से जोड़ना है। तद् हेतु अनेकों योजनाओं यथ अंत्योदय स्वरोजगार योजना, स्वावलंबन योजना, मधुबन योजना, रफ्तार योजना, वनजा योजना, प्रतिष्ठा योजना आदि का संचालन निगम द्वारा किया जा रहा है।

6. मध्यप्रदेश लघु उद्योग निगम –

म.प्र. लघु उद्योग निगम की स्थापना वर्ष 1961 में हुई है। जिन प्रमुख योजनाओं तथा गतिविधियों के माध्यम से निगम द्वारा प्रदेश के लघु उद्यमियों को सहायता पहुँचाई जाती है, वे हैं–

(1) प्रदेश की लघु औद्योगिक इकाईयों को विपणन में सहायता प्रदान करना तथा शासकीय विभागों को उनकी आवश्यकतानुसार आरक्षित वस्तुओं का प्रदान करना।

(2) विपणन सहायता के अंतर्गत प्रदाय की जा रही वस्तुओं के गुणवत्ता नियंत्रण लघु इकाईयों को उनके उत्पादों की गुणवत्ता में सुधार लाने हेतु एवं इसके लिये टूल–रूम तथा प्रयोगशालाओं की सुविधा प्रदान करना।

(3) प्रदेश की लघु इकाईयों को दुर्लभ एवं नियंत्रित कच्चा माल प्राप्त करने में सहायता प्रदान करना अथवा कच्चा माल प्रदाय करना।

(4) औद्योगिक क्षेत्रों में उद्यमियों के लिए आधारभूत सुविधायें विकसित करने हेतु कार्य करना जैसे औद्योगिक शेडों का निर्माण करना, जल प्रदाय की व्यवस्था करना, निर्माण एवं विकास कार्य करना तथा उनका संधारण (मेन्टेन्स) करना,आदि।

7. राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम –

लघु क्षेत्र के उद्यमियों को अनेक प्रकार की सहायता जैसे प्रशिक्षण से वित्तीय सहायता तक तथा कच्चा माल उपलब्ध कराने से लेकर विपणन तक की सहायताएँ प्रदान करने वाली यह एक प्रमुख संस्था है। राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम द्वारा लघु उद्यमियों के लाभार्थ संचालित की जाने वाली प्रमुख योजनाएँ निम्नानुसार हैं–

(क) किराया–खरीद आधार पर मशीनें प्रदान करना।

(ख) मशीनें/उपकरण लीज (पट्टे)पर प्रदाय करने की योजना।

(ग) प्रोटोटाईप विकास एवं प्रशिक्षण केन्द्रों का संचालन।

(घ) कच्चा माल प्रदान करने में सहायता।

(ङ) विपणन में सहायता।[4]

8. लघु उद्योग सेवा संस्थान .

लघु उद्योग सेवा संस्थान देश के प्रत्येक राज्य तथा नई दिल्ली में कार्यरत् हैं। इन संस्थानों का मुख्य उद्देश्य लघु क्षेत्र के उद्यमियों को उद्योगों की स्थापना तथा विस्तार हेतु सहायता प्रदान करना है। मुख्य रूप से संस्थान निम्नलिखित सेवायें प्रदान करते हैं–

(1) विभिन्न इकाईयाँ स्थापित करने में तकनीकी सहायता देना,

(2) विभिन्न इकाईयों से संबंधित आर्थिक सर्वेक्षण करना तथा जानकारी उपलब्ध कराना।

(3) प्रबंधकीय परामर्श सेवाएँ प्रदान करना तथा उद्यमियों को उद्योग स्थापना हेतु प्रशिक्षण देना।

(4) सहायक उद्योगों का पता लगाना तथा स्थापित इकाईयों के आधुनिकीकरण हेतु प्रयास करना।

(5) उद्यमियों को वर्कशॉप तथा प्रयोगशालाओं की सुविधायें देना। औद्योगिक प्रसार तथा उद्योगों के उत्थान हेतु कार्य करना।

(6) बीमार तथा अलाभप्रद औद्योगिक इकाईयों को इनके पुनरूत्थान हेतु परामर्श देना तथा स्थापित इकाईयों को उनके विस्तार, विशाखन तथा विविधिकरण कार्यक्रमों हेतु सहायता प्रदान करना। म.प्र. में यह संस्थान औद्योगिक प्रक्षेत्र इंदौर में स्थित है।[5]

9. मध्यप्रदेश हस्तशिल्प विकास निगम –

इसकी स्थापना म.प्र. शासन के उपक्रम के रूप में वर्ष 1981 में हुई है। निगम की स्थापना के मुख्य उद्देश्य है–

(1) परंपरागत शिल्पियों द्वारा वर्तमान में अपनायी जा रही उत्पादन प्रक्रिया में सुधार लाने हेतु सहायता प्रदान करना।

(2) शिल्पियों द्वारा उत्पादित वस्तुओं में गुणात्मक सुधार लाने हेतु सहायता देना।

(3) शिल्पियों को तकनीकी सहायता/मार्गदर्शन देना।

(4) कच्चे माल की व्यवस्था करना।

(5) हस्तशिल्पों को शिल्पकलाओं में बुनियादी एवं अग्रिम प्रशिक्षण देना।

(6) हस्तशिल्पों के प्रचार–प्रसार एवं विक्रय को बढ़ावा देने हेतु कार्य करना।

(7) कालीन बुनाई, हाथ से कपड़े छपाई, बाँस शिल्प, टेरीकोटा, धातु एवं जरी शिल्प, गुड़िया शिल्प जूट शिल्प, पत्थर शिल्प में प्रशिक्षण देना।6

वर्तमान समय में विभिन्न शासकीय नीतियों के अंतर्गत महिला उद्यमिता के विकास हेतु बहुत से कार्यक्रमों/योजनाओं का संचालन किया जा रहा है। जिनका संक्षिप्त विवरण निम्नानुसार है–

(अ) केन्द्र सरकार की योजनायें व कार्यक्रम–

1. प्रधानमंत्री रोजगार योजना
2. प्रतिष्ठा योजना
3. एकीकृत ग्रामीणण विकास कार्यक्रम
4. जवाहर लाल नेहरू रोजगार योजना
5. शिक्षित बेरोजगार युवाओं के लिए सुलभ ऋण योजना
6. ट्रायसेम योजना
7. रोजगार आश्वासन योजना
8. कल्पतरू योजना
9. इंदिरा आवास योजना
10. दस लाख कुँओं की योजना (जीवनधारा)
11. स्वयंसिद्धा योजना।

(ब) मध्यप्रदेश राज्य सहकारी अनुसूचित जातिएवं विकास निगम मर्यादित भोपाल की योजनायें–

1. अंत्योदय स्वरोजगार योजना
2. पवन पुत्र योजना
3. रफ्तार योजना
4. फोटो कॉपियर योजना
5. खनिज कर्म कार्य हेतु योजना
6. धनवन्तरी योजना
7. एस.टी.डी./पी.सी.ओ./फैक्स इकाई स्थापित करने हेतु ऋण प्रदान करने की योजना
8. ट्रेक्टर, ट्राली प्राप्त करने की योजना
9. वीडियो कैमरा प्राप्त करने की योजना।

(स) मध्यप्रदेश राज्य सरकार की गरीबी उन्मूलनव रोजगार संबंधी शहरी क्षेत्रों के लिये योजनायें–

1. सुनिश्चित आय योजना
2. स्वर्ण जयंती शहरी रोजगार योजना
3. पर्यावरण सुधार योजना
4. राष्ट्रीय गंदी बस्ती विकास कार्यक्रम
5. सैंटविन योजना

(द) मध्यप्रदेश में महिला वित्त व विकास निगम की सहायता से महिलाओं के उद्यमिता विकास कार्यक्रम–

1. ग्राम्या योजना
2. समर्थ योजना
3. स्व सेवा समूह गठन
4. नोराड योजना
5. उद्यमिता जागरूकता शिविरों का आयोजन
6. हाट बाजार संचालन योजना
7. स्वशक्ति परियोजना, प्रशिक्षण कार्यक्रम– (i) कम्प्यूटर प्रशिक्षणए (ii) सचिवीय प्रशिक्षण
8. फोटो कॉपियर योजना
9. कौशल उन्नयन योजना
10. टंकण प्रशिक्षण योजना
11. स्टेप योजना
12. ममत्व मेला

(इ) राष्ट्रीयकृत बैंकों की योजनायें–

1. प्रियदर्शिनी योजना (बैंक ऑफ इंडिया)
2. सेण्ट कल्याणी योजना (सेंट्रल बैंक)
3. स्त्री शक्ति पैकेज (स्टेट बैंक ऑफ इंडिया)[7]

सन्दर्भ–

1. Indian Economic Survey (2003-04) Govt. of India, New Delhi March 2003
2. Gupta M.C.; Entrepreneurship in small sector Industries, Anmol Publication, New Delhi, 1987
3. उद्यम प्रेरणा–जिला उद्योग केन्द्र, छिंदवाड़ा, पृ. 38–50
4. उद्यमी, उद्योग और स्वरोजगार–उद्यमिता विकास केन्द्र मध्यप्रदेश (सेडमेप) छठवाँ संस्करण 2001, पृ. 92
5. सुधा जी.एस.–उद्यमिता के मूलाधार, रमेश बुक डिपो, जयपुर 2006, पृ. 16.1 से 16.7
6. उद्यमी, उद्योग और स्वरोजगार–उद्यमिता विकास केन्द्र, म.प्र. सेडमेप–छठवाँ संस्करण 2001, पृ. 93–95
7. श्रीवास्तव, डॉ. श्रीमती मीता, डॉ. श्रीमती पुष्पा रमेश का शोध पत्र ''शासकीय नीतियों का महिला उद्यमिता पर प्रभाव'' राष्ट्रीय सेमीनार शासकीय मानकुंवर बाई महिला महाविद्यालय, जबलपुर 24–25 फरवरी 2007

SHODH CHETNA – YEAR-2 (JAN. TO MARCH, 2016) VOL. 1
ISSN : 2350-0441

''हिंदी के प्रचार प्रसार में साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं का योगदान''

❐ अमृता केसरवानी

शोध सारांश

इक्कीसवीं सदी की दस्तक के साथ आज अपने देश में और अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रों में जनसंचार माध्यमों का क्षितिज बहुत बढ़ गया है। हिन्दी साहित्य के आधुनिकीकरण की प्रक्रिया भारतेन्दु काल से ही प्रारम्भ हुई और साहित्यिक पत्रकारिता का वास्तविक विकास भी लगभग इसी समय शुरू होता है। भारतेन्दु ने स्वयं तीन पत्रिकाओं-कवि वचन सुधा, हरिश्चन्द्र, चन्द्रिका और बल बोधिनी का संचालन और संपादन किया। इन पत्रिकाओं ने हिन्दी और उसके साहित्य के प्रचार-प्रसार में ही योगदान नहीं किया, बल्कि नई प्रतिभाओं को भी प्रात्साहित किया।

इक्कीसवीं सदी की दस्तक के साथ आज अपने देश में और अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्रों में जनसंचार माध्यमों का क्षितिज बहुत बढ़ गया है। आज जनसंचार माध्यमों का अर्थ केवल शब्द संचार माध्यम ही नहीं रह गया और इसमें भी केवल समाचार पत्र ही नहीं आते, बल्कि आज तो शब्द संचार माध्यमों में समाचार पत्रों के अतिरिक्त साप्ताहिक, पाक्षिक व मासिक पत्रिकाएँ और पुस्तकें भी धड़ल्ले के साथ शामिल हो गयी हैं। हिन्दी भाषा के प्रचार–प्रसार में जनसंचार माध्यमों के अंतर्गत साहित्यिक पत्र–पत्रिकाओं का बहुत बड़ा योगदान रहा है। यदि इनके इतिहास पर गौर किया जाए तो समझ में आता है, कि उन्नीसवीं और बीसवीं शती में हर राजनीतिक नेता का अपना एक–एक पत्र होता था और वे पत्र अंग्रेजी के साथ–साथ हिन्दी में भी प्रकाशित होते थे। जहाँ तक हिन्दी का प्रश्न है, आरंभ में साहित्यिक और राजनीतिक पत्रकारिता एकाकार थी और प्रताप, आज, मिलाप आदि पत्र–पत्रिकाओं ने राष्ट्रीय चेतना के साथ–साथ हिन्दी के विकास में बड़ा योगदान दिया।

पत्र–पत्रिकाओं के इतिहास की बात करते समय यह स्पष्ट कर देना आवश्यक हो जाता है, कि हिन्दी का प्रथम पत्र 'उदंत मार्तन्ड' 30 मई 1826 को कलकत्ता से पं. जुगल किशोर शुक्ल के संपादन में प्रकाशित हुआ। यह पत्र भले ही बहुत काल तक न चल सका, परंतु फिर भी हिन्दी को प्रोत्साहित करने में इसकी अहम् भूमिका रही है। इस पत्र के मुख पृष्ठ पर संस्कृत की पंक्तियों के साथ आदर्श वाक्य के रूप में हिन्दी का यह छंद भी प्रकाशित होता था –

* पता-सुरेश कुमार गुप्ता, 187, केसरवानी निवास, समान नाका, रीवा (म.प्र.)-486001
ई-मेल : subodhrewa@gmail.com

''दिनकर कर प्रगटत दिनहि यह प्रकाश अठयाम।
ऐसो रवि उग्यो महि जेहि तेहि सुख को धाम।
उत कमलनि विकसित करत, बढ़त चाव चित वाम।
लेत नाम या पत्र को होत हर्ष अरू काम।''

इस पत्र के पश्चात तो जैसे देशभर में साहित्यिक पत्र–पत्रिकाओं की लंबी परंपरा ही चल पड़ी, जिसने हिन्दी को नई दिशा प्रदान की। इस परंपरा से ज्ञात होता है, कि इन पत्र–पत्रिकाओं का प्रारंभ साहित्यिक अभिरूचि की ही देन है। यहाँ तक कि शुरू–शुरू में इस संसार पर हिन्दी भाषा और साहित्य का ही दबदबा रहा है और जैसे–जैसे लेखन का क्षेत्र विस्तृत होता गया, वैसे–वैसे इसमें साहित्य के साथ–साथ अन्य क्षेत्रों के लिए भी द्वार खुलते गए।

जैसा कि आप जानते हैं, हिन्दी साहित्य के आधुनिकीकरण की प्रक्रिया भारतेंदु काल से ही प्रारंभ हुई और साहित्यिक पत्रकारिता का वास्तविक विकास भी लगभग इसी समय शुरू होता है। भारतेंदु ने स्वंय तीन पत्रिकाओं–कवि वचन सुधा, हरिश्चंद्र चंद्रिका और बाला बोधिनी का संचालन और संपादन किया। इन पत्रिकाओं ने हिन्दी और उसके साहित्य के प्रचार–प्रसार में ही योगदान नहीं किया, बल्कि नई प्रतिभाओं को भी प्रोत्साहित किया। भारतेंदु ने पत्रकारिता को हिन्दी के विकास के लिए एक संबल के रूप में अपनाया। भारतेंदु का हिन्दी पत्रकारिता में वही स्थान है, जो बंगला में राजा राममोहन राय का है। इस युग की पत्र–पत्रिकाओं पर भारतेंदुजी के व्यक्तित्व की अमिट छाप स्पष्ट ही दिखाई देती है। इस युग के पत्रों में केवल भाषा और साहित्य का निखार ही नहीं हुआ, अपितु जनचेतना भी प्रस्फुटित हुई। इस काल में लगभग 350 पत्र–पत्रिकाएँ प्रकाशित हुई, जो विविध विषय सामग्री के साथ हिन्दी के प्रचार–प्रसार और जनजागृति का कार्य भी करती थी।

ई. सन् 1900–1920 तक के काल को हिन्दी में एक साहित्यिक युग की संज्ञा दी जा सकती है। विचारकों की दृष्टि से यह युग नीतिवादी और इतिवृत्तात्मकता प्रधान कहलाता है, जिसमें पौराणिकता की ओर रूझान की प्रधानता, भाषा शैली की रूक्षता, तथ्यवादिता और परोन्मुखी दृष्टि को महत्वपूर्ण कहा गया है। कहने का अभिप्राय यह है कि यह युग भावों की प्रबलता का नहीं, बल्कि ज्ञान संपादन और सतर्क अभिव्यक्ति का युग है। उसमें मर्यादा, औचित्य और रचना सौष्ठव पर विशेष ध्यान दिया जाता है। इस युग की पत्र–पत्रिकाओं के प्रत्येक अंक में हमें आधुनिक साहित्यिक चेतना के विकास के कई सूत्र मिलेंगे। इस युग के पूर्व हिन्दी की साहित्यिक पत्र–पत्रिकाओं की स्थिति बड़ी ही दयनीय थी। इसके कारण थे–पाठकों की कम संख्या, हिन्दी पढ़ने की ओर लोगों का झुकाव न होना, पराधीन देश की पत्र–पत्रिकाओं पर शासक वर्ग का नियंत्रण आदि। फलस्वरुप स्वतंत्रतापूर्वक कोई भी समाचार या विचारों की अभिव्यक्ति का अभाव था, जो उस समय की नवजागृति की मांग थी। अधिकांश जनता का अशिक्षित होना और शिक्षित जनता का अंग्रेजी की तरफ झुकाव एवं हिन्दी के प्रति हीन भावना भी इन पत्रिकाओं की सोचनीय स्थिति का कारण थे। इनके कारण अधिकांश पत्रों की जीवनलीला चार पाँच वर्षों में ही समाप्त हो जाया करती थी, जबकि इनका मूल्य अत्यल्प ही हुआ करता था।

खैर, यह तो हुई ई. सन् 1900 से पूर्व की हिन्दी पत्र–पत्रिकाओं की बात, किंतु यदि उपलब्धियों की दृष्टि से देखा जाए, तो सन् 1900–1920 तक का काल हिन्दी और उसके साहित्य के लिए महत्वपूर्ण काल रहा है। इस युग में कविता, कहानी, निबंध, नाटक, उपन्यास, रेखाचित्र, समालोचना आदि सभी विधाओं का विकास हुआ और तत्कालीन

पत्र–पत्रिकाओं में इन विधाओं के विकास के लिये ठोस पृष्ठभूमि का कार्य किया। हिन्दी पत्रकारिता ही नहीं, अपितु आधुनिक हिन्दी भाषा और साहित्य के सृजन की दिशा में 'सरस्वती' का महत्वपूर्ण योगदान रहा। सन् 1903 में जब द्विवेदीजी 'सरस्वती' के संपादक पद पर आये, तब उन्होंने 'सरस्वती' को हिन्दी पत्रकारिता का 'सरस्वती' बना दिया। द्विवेदीजी ने अपने 20 वर्षों के संपादन काल में अपनी विद्वत्ता, श्रमशीलता और कार्यदक्षता से साहित्य और हिन्दी के स्तर को उन्नत किया। 'सरस्वती' के उद्‌देश्य की चर्चा करते हुए डॉ. हरप्रकाश गौड ने लिखा है ''सरस्वती का उद्‌देश्य हिन्दी भाषी क्षेत्र में सांस्कृतिक जागरण करना था, राष्ट्रीय जागरण तो उसका अंग था ही।''

यह स्वीकृत तथ्य है कि 'सरस्वती' द्विवेदी काल की प्रमुख पत्रिका थी, किंतु नवनीत, इंदु, प्रभा, मर्यादा, चांद, स्त्रीदर्पण, हिन्दी प्रदीप, भारतमित्र, हिन्दी ग्रंथमाला, आदि अन्य पत्रिकाओं के भी भाषिक और साहित्यिक योगदान की अवहेलना नहीं की जा सकती। इनमें से कई पत्रिकाएँ 'सरस्वती' की तरह ही विविध विषय समन्वित पत्रिकाएँ थी। इसके अलावा साहित्य की विधाओं के नाम से भी विशिष्ट पत्रिकाएँ प्रकाशित होती थी। जिन्होंने हिन्दी के प्रचार–प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है। इसमें उपन्यास, हिन्दी नाविल, उपन्यास लहरी, उपन्यास और उपन्यास प्रचार आदि का समावेश होता है, जो केवल एक ही विषय या साहित्यिक विधा के लिए पाठक वर्ग निर्माण करती थी। 'नागरी प्रचारणी पत्रिका' अन्वेषण प्रधान पत्रिका थी। इसके अतिरिक्त विशिष्ट सिद्धांतों को लेकर चलनेवाली पत्रिकाएँ भी हिन्दी के क्षितिज पर उभरीं, जिनमें 'इंदु' और 'भारत मित्र' का नाम आता है। द्विवेदी जी के संपादन में 'सरस्वती' पूर्ण नैतिकवादी पत्रिका बन चुकी थी और साहित्य प्रकाशन, साहित्यिक अनुशासन और भाषा परिष्कार आदि दायित्वों को निभा रही थी। हिन्दी में व्यक्तिवादी साहित्य के प्रचार–प्रसार में 'इंदु' की भूमिका सर्वथा प्रशंसनीय है।

द्विवेदी काल की पत्रिकाओं ने खड़ी बोली को काव्यभाषा के रुप में प्रतिष्ठित करने के साथ–साथ उसे गद्य विधाओं की उन्नति के लिए भी प्रयोग किया। साथ ही साहित्य का संबंध प्रकृति से जोड़कर उसे एक नयी दिशा प्रदान की। वास्तव में निर्माणाधीन कला के सारे लक्षण इस काल की पत्र–पत्रिकाओं में बिखरे पड़े है। पत्रिकाओं की साक्षी से यह समझ लेना आसान है, कि भाषा और साहित्यिक विधाओं में परिवर्तन के सारे संधिकालीन स्तर इसी युग की उपलब्धियाँ है।

इन पत्रिकाओं के माध्यम से पारंपरिक विषयों, रूढ़ियों और अंधविश्वासों को समाप्त करके जीवन के साथ समीक्षा का संबंध भी स्थापित किया गया। समीक्षा के द्वारा हिन्दी भाषा की त्रुटियों व कमियों को दूर करने, नवीन साहित्यकारों व साहित्य का निर्माण करने, जनता में हिन्दी और उसके साहित्य के प्रति रूचि जागृत करने, और राष्ट्रीय आंदोलनों में जनचेतना का कार्य करने में इस काल की पत्रिकाएँ बहुत महत्व रखती हैं।

इसके पश्चात प्रसाद युग में मुंशी प्रेमचंद ने हिन्दी कहानी और उपन्यास के क्षेत्र में जो योग दिया, उससे सभी भली भाँति परिचित हैं। इसी के साथ कलम के सिपाही प्रेमचंद ने 'हंस' और 'जागरण' नामक दो पत्रिकाओं का संपादन भी किया। इस युग की अधिकांश पत्र–पत्रिकाएँ राष्ट्रीय भावों से भरपूर थी, जिनमें अभ्युदय, हिन्दी नवजीवन, आज, संघर्ष, संसार, विप्लव आदि का समावेश है। इन सभी पत्र–पत्रिकाओं ने हिन्दी के साथ ही राष्ट्रीय भावों के प्रचार का भी कार्य किया।

स्वतंत्रता के पश्चात भी हिन्दी में कई साहित्यिक पत्र–पत्रिकाएँ प्रकाशित होती रही है। इनमें साहित्यिक विधाओं से संबंधित पत्रिकाएँ जैसे–कविता, कविताएँ, निकष, अभीक, ठिठोली, हास्य कलश, नटरंग, साहित्य संदेश, आलोचना, गवेषणा, अनुसंधान, विश्व भारती पत्रिका, हिन्दी अनुशीलन, सम्मेलन, अंतर्राष्ट्रीय कहानियाँ, मनोहर कहानियाँ आदि का समावेश है। स्वतंत्रता के पश्चात इन पत्रिकाओं ने भाषा और साहित्य के क्षेत्र में नये आयाम स्थापित किए और विषय की दृष्टि से भी पत्रिकाओं का स्वरूप व्यापक हो गया। जैसे इस गद्यांश पर ध्यान दें – ''हमारे यहाँ आज शहरीकरण, औद्योगीकरण और व्यवसायीकरण के दबाव से हमारे नगरों, गाँवों और परिवेश का वातावरण जहरीला होता जा रहा है। किसी औद्योगिक नगर में चले जाइए, उसका आकाश मिलों की चिमनियों के धुएँ से काला पड़ा हुआ होगा। नदी–नालों का पानी रसायनों से गंदा हो ही रहा है। बाहर अंधाधुंध वृक्ष कटाई हो रही है, हरियाली नष्ट हो रही है। इससे आम आदमी का दम घुट रहा है।'' अतः सबसे पहले स्वच्छ वातावरण के लिए, परिवेश के सुधार के लिए, खुली हवा में सांस लेने के लिए हिन्दी की इन साहित्यिक पत्र–पत्रिकाओं ने जन जागरण के काम में योगदान देकर अपनी योग्यता को रेखांकित किया है। इसी के साथ इन पत्र–पत्रिकाओं ने ताजमहल की बिगड़ती छवि का भी सवाल उठाया था, क्योंकि उसके समीप केवल 40 किलोमीटर दूर एक तेल शोधक कारखाना स्थापित कर दिया गया था।

इससे स्पष्ट होता है कि साहित्य के साथ–साथ केवल पर्यावरणीय विषय ही नहीं, अपितु सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, शैक्षिक आदि अनेक विषय इन पत्र पत्रिकाओं मे समाविष्ट हो गये हैं।

वर्तमान समय में भी कई साहित्यिक पत्र–पत्रिकाएँ प्रकाशित हो रही है जो हिन्दी के प्रचार–प्रसार में महत्वपूर्ण कार्य कर रही है। इनमें अक्षर पर्व, उत्तरशती, कथा, कथा बिम्ब, दायित्व बोध, पल प्रतिपल, पत्रकार सदन, वसुधा, हंस, वागर्थ, माजरा, वातायन, भारत दर्शन, सम्मेलन, नवनीत, आलोचना, प्रतिश्रुति आदि पत्रिकाओं का नाम आता है। यह पत्रिकाएँ कविता, कहानी, नाटक, एकांकी, उपन्यास, रेखाचित्र, संस्मरण, साक्षात्कार, शोधपरक रचनाएँ, समीक्षा, आलोचना आदि विषयों से सुसज्जित है और हिन्दी के प्रचार–प्रसार के साथ नए पाठक भी निर्मित करती जा रही हैं।

आज हिन्दी की साहित्यिक पत्र–पत्रिकाएँ केवल भारत में ही नहीं, बल्कि विदेशों में भी अपनी धाक जमाए हुए है। विदेशों में प्रकाशित होनेवाला सबसे पहला पत्र था–हिन्दोस्थान, जो कालाकांकर से प्रकाशित होने के बाद त्रैमासिक पत्र के रूप में 1883–1885 के मध्य लंदन से प्रकाशित हुआ। प्रवासी भारतीयों ने अपनी साहित्यिक–सांस्कृतिक संपदा को बनाये रखने के उद्देश्य से कई पत्र–पत्रिकाओं का संचालन व संपादन किया। आज हिन्दी की पत्र–पत्रिकाओं का सर्वाधिक प्रचलन फीजी और मारिशस में है, जिसमें फीजी समाचार, सनातन संदेश, शांतिदूत, जागृति, जनता, जमाना, दर्पण आदि का नाम लिया जा सकता है। मारिशस से ही अभिमन्यु अनंत संपादित 'आभा' का स्तर साहित्यिक दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय है। इसके अलावा लंदन, नेपाल, बर्मा, पाकिस्तान (लाहौर), बांग्लादेश (ढाका), मास्को आदि अनेक देशों में भी हिन्दी की विविध पत्र–पत्रिकाएँ प्रकाशित हो रही है एवं हिन्दी को प्रसारित करने और उसके साहित्य को समुन्नत करने का महत्वपूर्ण कार्य कर रही है।

उपरोक्त विवेचन से हम यह स्पष्ट कह सकते हैं, कि आज हिन्दी का शायद ही ऐसा कोई पत्र

या पत्रिका होगी जिसमें साहित्य के लिए स्थान सुरक्षित न हो। यहाँ तक कि फिल्मी और समाचार पत्रिकाएँ भी उसकी उपेक्षा नहीं कर पाती है। इसी के साथ अच्छी–बुरी समीक्षाओं को भी पत्र–पत्रिकाओं में उचित स्थान मिल रहा है। इन सब को देखते हुए एक सुखद आश्चर्य अभिभूत करता है, कि आज हिन्दी और उसका साहित्य केवल बड़ी–बड़ी पुस्तकों तक ही सीमित नही रह गया है, बल्कि वह अब सीधा अपने पाठकों तक पहुँचने की सहूलियत में है। भाषा और साहित्य को अपने बल–बूते पर जीवित रहने का रास्ता वास्तव में इन पत्र–पत्रिकाओं ने ही दिखाया है। इसके लिए इन्हें पत्रकारिता का आभारी होना चाहिए। पत्रकारिता ने लोगों में पढ़ने की रूचि, उन्मुक्तता, जागरूकता और चेतना पैदा की है।

आज हजारों लघु पत्र–पत्रिकायें हर मास प्रकाशित होती हैं और साहित्यकार साहित्य सृजन के साथ–साथ उस साहित्य को आम पाठकों तक पहुँचाने के सबसे बड़े संबल पत्रकारिता के साथ जुड़ा हुआ महसूस कर रहा है। कई बार यह भी सुनने में आता है कि असली या सार्थक साहित्य इन लघु पत्र–पत्रिकाओं में ही प्रकाशित हेाता है, जो बहुत हद तक ठीक भी है।

यह तो हुआ साहित्यिक पत्र–पत्रिकाओं के योगदान का एक सुनहरा पक्ष, परंतु इसका एक और पहलू भी है, जिसका उल्लेख करना आवश्यक है। आज भले ही हिन्दी में पत्र–पत्रिकाएँ जोर–शोर से प्रकाशित हो रही है, परंतु क्या इन्हें पढ़ने वाले पाठक उतने प्रमाण मे नजर आ रहे हैं जितने आने चाहिए? साहित्यिक पत्र तो रहे नहीं और एक–एक करके बहुत–सी साहित्यिक पत्रिकाएँ भी बंद हो गई है जैसे– सरस्वती, सुधा, माधुरी, चांद, प्रतीक, पाटल, क–ख–ग, युगचेतना, समालोचक, आदि। पहले साधारण जनता, छात्र, आदि सभी वर्ग के लोग साहित्यिक पत्र–पत्रिकाओं को बहुत रूचि से पढ़ते थे और उनके आगामी अंकों का भी बेसब्री से इंतजार करते थे, किंतु क्या आज का छात्र वर्ग किसी एक पत्रिका का नाम बता सकता है, जिसे वह पढ़ता हो या जनता हो? क्या आज एम.ए., एम.फिल अथवा पी.एच.डी. करनेवाले विद्यार्थी अपने विषय से भिन्न कोई पत्रिका पढ़ता नजर आता है? नहीं। साहित्य तो छोड़िये आज लोग पारिवारिक या फिल्मी पत्रिकाओं को भी पढ़ना नहीं चाहते। ऐसा क्यों हो रहा है? लोगो में इतनी अरूचि क्यों हो रही है? इसका केवल एक ही कारण है, वह यह कि युवा वर्ग और नए लेखकों को प्रोत्साहन देनेवाली अच्छी उच्च कोटि की साहित्यिक पत्रिकाओं का आज अभाव–सा हो गया है और ज्ञान–विज्ञान के क्षेत्र में अनुसंधान एवं शोध के क्षेत्र में हिन्दी में मौलिक विचारों का भी अभाव है। सभी जगह देखा–देखी और नकल अधिक है। कई संपादकों का भाषा बोध का स्तर भी निम्न है। इस संदर्भ में निम्न पंक्तियाँ दृष्टव्य है –

''कर्तव्य को निज भूलकर, हम सो रहे हैं इन दिनों।
इस समय श्वास अमूल्य को, हा–खो रहे हैं इन दिनों।।
फूं फाड़ करते हैं पड़े, पर हा जगते हैं नहीं।
जो थे पिछाड़ी, अग्रसर वे हो रहे है इन दिनों।।
सच बात है यह सज्जनों, गिरिराजधारी की कसम।
अज्ञानवश हम शान अपनी, खो रहे हैं इन दिनों।।''

हिन्दी के प्रचार–प्रसार में आनेवाली इन कठिनाईयों को दूर करने की जिम्मेदारी शिक्षक वर्ग, साहित्य प्रेमियों, साहित्य सृजनकर्ताओं, भाषा वैज्ञानिकों और साहित्यिक पत्र–पत्रिकाओं के संपादकों पर अधिक है। साथ ही प्रबुद्ध जन समुदाय का भी यह दायित्व है कि वह नई पीढ़ी को प्रारम्भ से ही हिन्दी पढ़ने के लिए तैयार करें। ताकि आगे चलकर हिन्दी और उसकी साहित्यिक पत्र–पत्रिकाओं को उतनी ही रूचि

और मजे से पढ़ें जितनी रूचि से पूर्व में लोग इन्हें पढ़ा करते थे।

संदर्भ–

1. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास – नवम् भाग (हिन्दी साहित्य का परिष्कार) सं.पं. सुधाकर पांडेय, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, संवत् 2034 विक्रमी.
2. हिन्दी पत्रकारिता – डॉ. कृष्णबिहारी मिश्र, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, सन् 2000.
3. समग्र भारतीय पत्रकारिता – प्रथम खण्ड – 1780 – 1900 – विजयदत्त श्रीधर, लाभचंद्र प्रकाशन, इंदौर, दिसंबर, 2001.
4. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास त्रयोदश भाग
5. हिन्दी पत्रकारिता का आलोचनात्मक इतिहास

फार्म - IV

(घोषणा-पत्र)

1.	प्रकाशक का स्थान	121, शहरारा बाग, इलाहाबाद-3 .....
2.	प्रकाशन की नियत अवधि	मार्च, जून, सितम्बर, दिसम्बर .....
3.	मुद्रक का नाम	सुशील कुमार कुशवाहा .....
	राष्ट्रीयता	भारतीय .....
	पता	121, शहरारा बाग, इलाहाबाद-3 .....
4.	प्रकाशक का नाम	सुशील कुमार कुशवाहा .....
	राष्ट्रीयता	भारतीय .....
	पता	121, शहरारा बाग, इलाहाबाद-3 .....
5.	संपादक का नाम	सुशील कुमार कुशवाहा .....
	राष्ट्रीयता	भारतीय .....
	पता	121, शहरारा बाग, इलाहाबाद-3 .....

मैं.....**सुशील कुमार कुशवाहा**....घोषणा करता हूँ कि ऊपर दिये गये विवरण मेरे ज्ञान और विश्वास के अनुसार सही हैं।

तारीख...**30.03.2016**... **(सुशील कुमार कुशवाहा)**

SHODH CHETNA – YEAR-2 (JAN. TO MARCH, 2016) VOL. 1
ISSN : 2350-0441

हमारे प्रकाशन द्वारा प्रकाशित पुस्तकें

	पुस्तक का नाम	लेखक का नाम	मूल्य
1.	स्वदेश रक्षण में रानी दुर्गावती एवं लक्ष्मीबाई का योगदान	डॉ. पूनम तिवारी	280.00
2.	औरंगजेब व्यक्तित्व एवं कृतित्व	डॉ. पूनम मिश्रा, डॉ. पूनम तिवारी	250.00
3.	देश के प्रधानमंत्री	प्रफुल्ल कुमार गुप्ता 'अंशु'	125.00
4.	हमारा ब्रह्माण्ड	श्रीमती करुणा श्रीवास्तव	150.00
5.	आविष्कारों की कहानी	डॉ. (श्रीमती) विभा श्रीवास्तव	150.00
6.	प्रकृति और विज्ञान	डॉ. (श्रीमती) विभा श्रीवास्तव	150.00
7.	उपनिषदों की प्रेरक कथाएँ	डॉ. (श्रीमती) विभा श्रीवास्तव	300.00
8.	विश्व की महान महिलाएँ	डॉ. (श्रीमती) विभा श्रीवास्तव	250.00
9.	बघेली व्याकरण	सोमदत्त त्रिपाठी	250.00
10.	वीरांगना दुर्गावती (काव्य)	सोमदत्त त्रिपाठी	250.00
11.	सेहत जो खजानो योग जो आइनो (सिन्धी भाषा में)	धर्मवीर मलूकाणी	150.00
12.	विश्व के भारत रत्न	सन्तोष दुबे	400.00
13.	किहिनी, कहनूति, उखान कोश	रविरंजन सिंह	750.00
14.	काँटे (जीवन का सच), भाग-1	सोमदत्त त्रिपाठी	600.00
15.	काँटे (जीवन का सच), भाग-2	सोमदत्त त्रिपाठी	600.00
16.	किस्सन केर पोथन्ना (बघेली/हिन्दी)	डॉ. सूर्य नारायण गौतम	250.00
17.	विरचितं शतकम् (जनसंख्या निवारणम्)	डॉ. द्वारिका नाथ त्रिपाठी	100.00
18.	विरचितं शतकम् (एड्स रोग निवारणम्)	डॉ. द्वारिका नाथ त्रिपाठी	140.00
19.	वैयाकरण भूषणसार विवेचन (संस्कृत)	डॉ. द्वारिका नाथ त्रिपाठी	300.00
20.	तब और अब रीवा	रविरंजन सिंह	550.00
21.	मेरी आकाशवाणी वार्त्ताओं का संग्रह	डॉ. उमाकान्त मिश्र	375.00
22.	वैदिक चिन्तन मंजूषा	डॉ. सूर्यनारायण गौतम	350.00
23.	वेदान्तसार का पुनर्व्यवस्थापन	डॉ. उमाकान्त मिश्रा	250.00
24.	संस्कृत गीतमालिका	डॉ. उमाकान्त मिश्र	280.00
25.	शतपथ संदर्शन	डॉ. सूर्य नारायण गौतम	400.00

26.	संकल्प नाटक संग्रह	उमेश कुमार 'निराला'	250.00
27.	श्रीमद्भागवत में मानवीय संवेदना	डॉ. उमाकान्त मिश्र	(प्रेस में)
28.	षोडस संस्कार (संस्कृत)	डॉ. सूर्यनारायण गौतम	(प्रेस में)
29.	मेरे शोधपत्रों का संकलन	डॉ. उमाकान्त मिश्र	(प्रेस में)
30.	संस्कृत ग्रन्थों में राजनीतिक और आर्थिक चिंतन (बृहस्पति, शुक्र, कौटिल्य एवं कामान्दक के संदर्भ में)	डॉ. सन्ध्या कुमारी	(प्रेस में)
31.	A Simple Course of English Grammar, Part-I & II	Dr. Umakant Mishra	(प्रेस में)

पेपर बैक

1.	जल संरक्षण	गौरान्शी कुशवाहा	45.00
2.	मानव अधिकार	गौरान्शी कुशवाहा	60.00
3.	ग्लोबल वार्मिंग	श्रीमती करुणा श्रीवास्तव	50.00
4.	पर्यायवाची एवं मुहावरे	हर्ष कुशवाहा	50.00
5.	भारत के राष्ट्रपति	विजय थावानी	50.00
6.	दादी का आशीर्वाद	डॉ. (श्रीमती) विभा श्रीवास्तव	60.00
7.	विश्व प्रसिद्ध लोककथाएँ	डॉ. (श्रीमती) विभा श्रीवास्तव	60.00
8.	श्रेष्ठ बाल कहानियाँ	डॉ. (श्रीमती) विभा श्रीवास्तव	60.00
9.	भारत रत्न राष्ट्रपति	डॉ. (श्रीमती) विभा श्रीवास्तव	50.00
10.	भारत रत्न प्रधानमंत्री	डॉ. (श्रीमती) विभा श्रीवास्तव	50.00
11.	भारत रत्न महिलाएँ	डॉ. (श्रीमती) विभा श्रीवास्तव	50.00

SHODH CHETNA – YEAR-2 (JAN. TO MARCH., 2016) VOL. 1
ISSN : 2350-0441

भारतीय कृषि पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव एवं स्मार्ट कृषि तकनीकियाँ

❒ शिव प्रसाद विश्वकर्मा*
❒ एस. पी. वर्मा**

Corresponding Authors : drspverma_kadc@rediffmail.com

शोध सारांश

प्राकृतिक मशीनी एवं नव वैज्ञानिक प्रक्रियाओं से उत्सर्जित गैसों जैसे कार्बन डाई आक्साइड, मीथेन आदि ग्रीन हाउस गैसों के कारण पृथ्वी की जलवायु में हुए दीर्घकालिक परिवर्तनों को जलवायु परिवर्तन कहा जाता है। इण्टर गवर्नमेण्टल पैनल आन क्लाइमेट चेंज (आई.पी.सी.सी.) के अध्ययन के अनुसार वर्ष 1906 से 2005 के मध्य ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन के कारण पृथ्वी के तापमान में 0.74 सेंग्रे. की वृद्धि हो चुकी है। इस सदी के अन्त तक वैश्विक तापमान के 1.8 से 4.0 सेंग्रे. तक बढ़ने की आशंका है। जिससे बारम्बार सूखा, बाढ़, तूफान धीमी गति से ग्लेशियर के पिघलने आदि जैसी आपदाओं से खाद्यान्न उत्पादन के स्थायित्व पर खतरे की आशंका है। यह भी अनुमान है कि वर्ष 2100 तक कार्बन डाई आक्साइड का फसलों पर वृद्धि के प्रभाव के बावजूद कुल फसल उत्पादन में 10-40 प्रतिशत तक कमी आ सकती है। विश्व में भारत द्वारा कुल ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन में कृषि क्षेत्र का योगदान 28 प्रतिशत है जो मुख्यतः धान के खेतों से, जुगाली करने वाले पशुओं की पाचन क्रिया के फलस्वरूप मीथेन गैस उत्सर्जन, उर्वरकों एवं जैविक खादों के प्रयोग से नाइट्रस आक्साइड के उत्पन्नता के कारण है। इन दुष्प्रभावों से बचने एवं कृषि के सतत् विकास के लिए स्मार्ट कृषि तकनीकियों का प्रयोग करना होगा।

जलवायु परिवर्तन 21वीं सदी की सबसे जटिल चुनौतियों में से एक है। इसके प्रभाव से कोई भी देश अछूता नहीं है और न ही इससे जुड़ी चुनौतियों से कोई अकेला देश निपट सकता है। जलवायु परिवर्तन का विकास, आपदा और निर्धनता से निकट सम्बन्ध है। विश्व मौसम विज्ञान संगठन के अनुसार वर्ष 2001 पाँचवा सबसे गर्म वर्ष रहा। डेनमार्क की राजधानी कोपेनहेगन में दिसम्बर, 2009 में आयोजित सम्मेलन के ग्लोबल क्लाइमेट रिस्क इन्डेक्स-2010 की सूची में भारत उन प्रथम 10 देशों में शामिल है, जो जलवायु परिवर्तन से सर्वाधिक प्रभावित होने वाले हैं। क्योंकि भारतीय अर्थव्यवस्था की आधारशिला कृषि ही है। एक अध्ययन के अनुसार वर्ष 2050 तक वायुमण्डल का तापमान 3 डिग्री से

* कुलभास्कर आश्रम पी.जी. कालेज, इलाहाबाद-211001
** कुलभास्कर आश्रम पी.जी. कालेज, इलाहाबाद-211001

4 डिग्री सेल्सियस तक बढ़ सकता है जिसका मौसम पर व्यापक असर पड़ने की सम्भावना है। जलवायु में परिवर्तन कृषि को विभिन्न प्रकार से जैसे औसत तापमान में बदलाव, वर्षो, कीड़ों एवं बीमारियों का प्रसार, कार्बन डाई आक्साइड, भू-स्तरीय ओजोन, सान्द्रता, समुद्र जल स्तर में वृद्धि एवं अनेकों खाद्यान्नों की गुणवत्ता आदि को प्रभावित कर सकता है।

सारणी (1)

भारत के प्रमुख क्षेत्रों का ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन में योगदान

क्रम संख्या	क्षेत्र	गैस उत्सर्जन (प्रतिशत में)
1.	उर्जा क्षेत्र	61
2.	कृषि	28
3.	औद्योगिक प्रक्रियाएं	8
4.	कचरा	2
5.	भू उपयोग परिवर्तन	1

सारणी (2)

भारत में कृषि के अन्तर्गत विभिन्न उपक्षेत्रों द्वारा ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन में योगदान

क्रम संख्या	क्षेत्र	गैस उत्सर्जन (प्रतिशत में)
1.	पशुधन पाचन क्रिया	59
2.	धान की खेती	23
3	मृदा द्वारा उत्सर्जन	12
4.	जैविक खाद प्रबन्धन	5
5.	फसल–अवशेष	1

भारतीय कृषि वैज्ञानिकों द्वारा मौसम में उतार-चढ़ाव एवं जलवायु परिवर्तन का कृषि पर पड़ने वाले सम्भावित प्रभावों का अनेकों प्रकार से अध्ययन करने का प्रयास किया जा रहा है। मौसम के उतार-चढ़ाव के कृषि पर पड़ने वाले प्रभाव को पुराने आंकड़ों के विश्लेषण वर्षा एवं तापमान के पारस्परिक विधा है। अद्यतन में फसल विकास सिमुलेशन मण्डल द्वारा कार्बन डाई आक्साइड, वर्षा एवं तापमान के पारस्परिक क्रियात्मक प्रभाव को ज्ञात करना सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण एवं विश्वसनीय तकनीक है। आज वैज्ञानिकों द्वारा जलवायु परिवर्तन के कृषि पर पड़ने वाले प्रभाव को जानने के लिए अनेकों फसल माडल

जैसे डी.एस.एस.ए.टी. श्रेणी, ओ.आर.वाई.जेड.ए. तथा डब्ल्यू.टी.जी.आर.ओ. अनेकों वैज्ञानिक अध्ययनों के प्रमुख आधार हैं।

स्वदेशी डिसीजन सपोर्ट सिस्टम आधारित फसल मॉडल 'इनफो क्राप' का प्रयोग फसलों की जलवायु के प्रति अति संवेदनशीलता एवं तदनुरूप इष्टतम फसल प्रबन्धन हेतु तेजी से हो रहा है।

जलवायु परिवर्तन का भारतीय कृषि पर पड़ने वाले प्रभावों के महत्त्वपूर्ण अध्ययनों का सारांश इस प्रकार है—

धान-गेहूँ फसल चक्र की उत्पादकता पर प्रभाव

गंगा-यमुना के दोआब में धान-गेहूँ फसल चक्र में पैदावार के आँकड़ों को क्षेत्रीय आँकड़ीयन दीर्घकालीन उर्वरता प्रयोगों एवं अन्य पारम्परिक प्रयोग विधियों एवं सिमुलेशन मॉडल से विश्लेषण करने पर यह निष्कर्ष निकाला गया कि पिछले तीन दशकों से जलवायु में धीरे-धीरे परिवर्तन के कारण उपज में निरन्तर गिरावट दर्ज की गई। (अग्रवाल एवं सहयोगी, 2002) इसी प्रकार भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान के अनुसार मात्र एक डिग्री सेंटीग्रेट तापमान वृद्धि से भारत में 40 से 50 लाख टन गेहूँ की उपज कम होने की सम्भावना है।

कार्बन डाई आक्साइड का फसलों की वृद्धि पर प्रभाव

वातावरण में कार्बन डाई आक्साइड की व्यापक बढ़ोत्तरी से विभिन्न फसलों की प्रकाश संश्लेषण क्रिया में वृद्धि पायी जाती है। विशेष कर सी-3 मैकेनिज्म वाले पौधे जैसे गेहूँ एवं धान। एक अध्ययन में पाया गया कि कार्बन डाई आक्साइड की 660 पी.पी.एम. सान्द्रता पर फसलों की उपज में 24 से 43 प्रतिशत तक प्रकाश संश्लेषण में वृद्धि हुई।

लाभांश में कमी

कार्बन डाई आक्साइड की मात्रा में बढ़ोत्तरी के कारण अनेक फसलों की उपज में वृद्धि के बावजूद तापमान एवं वर्षा के कुप्रभाव के कारण कुल खाद्यान्न उत्पादन में कमी होगी। आई.पी.पी.सी. एवं अन्य अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के अध्ययनों से ज्ञात हुआ कि वायुमण्डलीय तापमान में वृद्धि के कारण भारत में वर्ष 2080 से 2100 के मध्य 11 से 40 प्रतिशत तक फसलों की उपज में कमी आने की सम्भावना है। (रोजनवेग एवं सहयोगी, 1994 तथा आई.पी.सी.सी., 2007)

कृषि उत्पाद की गुणवत्ता पर प्रभाव

तापमान का अधिकांश फसलों की गुणवत्ता पर पर सीधा प्रभाव पड़ता है। तापमान में वृद्धि का कपास, फलों, सब्जियों, चाय, काफी एवं सगन्ध तथा औषधीय पौधों की गुणवत्ता पर सीधा प्रभाव पड़ता है। यही नहीं अनाज एवं दाल वाली फसलों के पोषक तत्त्वों पर भी प्रभाव पड़ता है। विभिन्न अनुसंधानों में यह पाया गया कि वातावरण में तापमान एवं कार्बन डाई आक्साइड की मात्रा बढ़ने से अनाजों में प्रोटीन की मात्रा घटती है (जिस्का एवं सहयोगी, 1997)

कीटों, रोगों एवं व्याधियों पर प्रभाव

फसलों एवं कीटों की पारस्परिक प्रतिक्रिया एवं उनका वितरण जलवायु परिवर्तन से सीधा प्रभावित होता है। जिससे फसल की उपज पर प्रभाव पड़ता है। इसी प्रकार फसल-खरपतवार की आपसी प्रतियोगिता भी सार्थक रूप से प्रभावित होती है। वायुमण्डलीय तापमान का खरपतवारों में वृद्धि एवं उनकी फसलों से प्रतियोगिता पर असर पड़ता है। रोगकारी जीवों एवं कीटों की संख्या वायुमण्डलीय तापमान एवं आर्द्रता पर निर्भर करती है। उदाहरणार्थ, 16 डिग्री से तापमान पर पीली गेरुई का प्रकोप अधिक होता है किन्तु 18 डिग्री सेंग्रे. पर इस गेरुई का प्रभाव कम हो जाता है (नागराजन एवं जोशी, 1978) मध्यपूर्व में उत्पन्न होने वाले टिड्डी दल ग्रीष्म ऋतु में प्रायः भारत एवं पाकिस्तान के पूरब की ओर ही आक्रमण करते थे। समयान्तराल में वर्षा, तापमान एवं वायुगति की चाल में परिवर्तन टिड्डियों के आक्रमण में कमी का परिचायक है।

पशुस्वास्थ्य पर दुष्प्रभाव

जलवायु में परिवर्तन विशेषकर तापमान में वृद्धि के कारण पशुओं की प्रजनन शक्ति बुरी तरह प्रभावित होती है। एक अनुमान के अनुसार वैश्विक तपन के कारण भारत में वर्ष 2020 तक लगभग 1.60 मिलियन टन दूध का उत्पादन घटने की सम्भावना है।

मत्स्य पालन पर प्रभाव

समुद्रीय एवं नदियों के माल 1 डिग्री सें.ग्रे. तापमान में वृद्धि से मछलियों का वितरण एवं स्वास्थ्य बुरी तरह प्रभावित होता है। समुद्र जल की ऊपरी सतह में 0.5 से 1 डिग्री सें.ग्रे. वृद्धि के कारण तेलीय सारडाइन उत्तरी अक्षांश एवं पूर्वी देशान्तर की तरफ पाई जाती है।

मृदा स्वास्थ्य पर प्रभाव

भारत की उर्वरक उपयोग दक्षता औसतन 30-50 प्रतिशत है। भविष्य में तापमान में वृद्धि के कारण यह दक्षता और घटेगी जिससे फसलोत्पादन में वृद्धि के लिए उर्वरक की माँग बढ़ेगी। अग्रवाल, 2003 ने अपने नाइट्रोजन सिमुलेशन के अन्तर्गत पाया कि नाइट्रोजन का प्रबन्धन जलवायु परिवर्तन की स्थिति पर निर्भर करेगा। वैश्विक तपन के कारण जीवांश पदार्थों का विघटन तेजी से होगा और मृदा की उपजाऊ शक्ति क्षीण होगी।

जैव विविधता पर प्रभाव

वैश्विक तपन का समुद्रतटीय क्षेत्रों की वनस्पतियों एवं वृक्षों पर कुप्रभाव पड़ेगा तथा इनके असन्तुलन का खतरा पैदा होगा। पेड़ों के विनाश से तटीय क्षेत्रों की स्थिरता प्रभावित होगी एवं उष्ण कटिबंधीय वनों में आग की घटनाओं में वृद्धि होगी और वनों के विनाश से जैव विविधता में कमी आयेगी। यही नहीं अनेकों प्रकार की फसलें और प्रजातियाँ भी नष्ट हो सकती हैं।

मानव स्वास्थ्य पर प्रभाव

उष्णता के कारण श्वांस तथा हृदय सम्बन्धी बीमारियों में वृद्धि की सम्भावना बढ़ेगी। दस्त, हैजा, पेचिस, मियादी बुखार, पीत, ज्वर, क्षयरोग जैसी बीमारियाँ बढ़ेंगी। मच्छरों से फैलने वाली बीमारियाँ जैसे मलेरिया, डेंगू, पीला बुखार, जापानी बुखार (मेननजाइटिस) के प्रकोप में बढ़ोत्तरी होगी।

जलवायु परिवर्तन के प्रभाव से निपटने की स्मार्ट तकनीकियाँ

जलवायु परिवर्तन के कारण कृषि पर प्रायः नकारात्मक प्रभाव पड़ना अत्यन्त चिन्ताजनक पहलू है। इसी को ध्यान में रखते हुए सुरक्षा, कृषि एवं जलवायु परिवर्तन पर वर्ष 2010 में हेग में हुए अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में जलवायु स्मार्ट कृषि की अवधारणा का प्रादुर्भाव हुआ। स्मार्ट कृषि के अन्तर्गत उन सभी विधाओं एवं नवीनतम तकनीकियों का प्रयोग करना होगा जो प्राकृतिक एवं अप्राकृतिक संसाधनों का न्यायसंगत उपयोग पर आधारित हो और जिनसे खाद्य सुरक्षा तो बनी ही रहे साथ ही कृषि में स्थायित्व हो एवं यह लाभकारी भी हो। जलवायु परिवर्तन का भारतीय कृषि पर पड़ने वाले दुष्प्रभावों को कम करने के लिए निम्न मुख्य जलवायु स्मार्ट विधाएँ एवं तकनीकियों पर जोर देना होगा।

भूमि उपयोग एवं उसके प्रबंध में परिवर्तन

जलवायु में आंशिक परिवर्तन को एग्रोक्लाइमेटिक जोन के अनुसार वैकल्पिक फसलों का चयन किया जाए तथा विभिन्न फसलों के उपलब्ध जर्मप्लाज्म द्वारा अधिक उष्णता एवं सूखा सहनशील प्रजातियाँ विकसित की जाएँ। जल संग्रहण प्रबंध परियोजना अन्तर्गत टिकाऊ उत्पादन, संसाधन संरक्षण, भूजल रिचार्ज, सूखा प्रबन्धन, रोजगार सृजन पर हुए विभिन्न शोधों का प्रयोग हो (ध्यानी एवं सहयोगी, 1997)

जल उपयोगी तकनीकियाँ

शून्य बुआई तकनीकी, सतही बिजाई, फसल विविधीकरण के अन्तर्गत मक्का की खेती, धान की सीधी बुवाई, भूमि का समतलीकरण एवं फसलों में सूक्ष्म सिंचाई विधियों का उपयोग करने से जलवायु परिवर्तन के कुप्रभावों को कम किया जा सकता है।

पोषक तत्त्व प्रबन्धन तकनीकियाँ

फसलों में पोषक तत्त्व प्रबन्ध के लिए प्रिसीजन खेती के अन्तर्गत साइट स्पेसिफिक न्यूट्रिएन्ट मैनेजमेंट तकनीकी एवं न्यूट्रिएन्ट एक्सपर्ट साफ्टवेयर द्वारा पोषक तत्त्व की आवश्यकता का निर्धारण करना, यूरिया एवं अन्य उर्वरकों का दक्षतापूर्वक उपयोग प्रयोग करना आदि तकनीकियों को अपनाना होगा।

उत्सर्जित जल एवं ठोस कचरों तथा अवशेषों की वृद्धि में पुनर्चक्रण

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सीमित जल के संसाधनों को ध्यान में रखते हुए उद्योगों से निकलने वाले दूषित जल की

भारी मात्रा के कृषि में सदुपयोग हेतु शोध एवं परीक्षण करना एवं संस्तुति करना तथा फसल अवशेषों का उचित प्रबन्ध करना (अग्रवाल, 2008)।

ऊर्जा संरक्षण तकनीकियाँ

न्यून ऊर्जा या ईंधन की खपत से बुवाई; जैसे—शून्य भू-परिष्करण विधि का उपयोग, धान की सीधे खेत में बुवाई, फसल अवशेष प्रबन्धन एवं सूक्ष्म सिंचाई विधियों का प्रयोग आदि।

कृषि आधारित उद्योगों द्वारा आय में वृद्धि हेतु तकनीकियाँ

कृषि में आगतों की निरन्तर बढ़ती लागतों एवं प्रमुख फसलों की उपज में ठहराव ने कृषि क्षेत्र को अत्यधिक कमजोर किया है। ऊपर से जलवायु परिवर्तन का भारतीय कृषि पर और विपरीत प्रभाव पड़ रहा है। इससे निपटने के लिए स्थान विशेष आधारित उर्वरक प्रबन्धन, उर्वरक पूर्ति एवं वितरण, उपयोगी कृषि विस्तार सेवाएँ तथा उर्वरकों के दक्षतापूर्ण प्रयोग के लिए भौतिक एवं संस्थागत संरचनात्मक ढाँचे का विकास करना होगा।

मौसम संबंधी पूर्वानुमान आधारित तकनीकियाँ

इसमें मौसम में बड़े परिवर्तन; जैसे—सूखा, बारिश, तूफान, पाला आदि से किसानों को अवगत कराते हुए उनके मोबाइल पर संदेश भेजना तथा फसलों की कीटों से एवं रोगों से सुरक्षा, सिंचाई आदि की त्वरित जानकारी देना, फसल बीमा, फसल विविधीकरण आदि की जानकारी देने की तकनीकियाँ शामिल हैं (अग्रवाल, 2008)।

निर्देश

अग्रवाल, पी.के. तथा मल्ल, आर.के : Climate Change (2002, 52 : 331-43)

रोजेनवेग, सी. तथा पैरी. एम.एल. : Nature (1994), 367 : 197-202

आई.पी.पी.सी. : Summary for Policy Maker Inter Governmental Panel on Climate Change.

जिस्का एल.एच. नामुको : मोया टी. तथा क्लिलैण्ड जे. : Agronomy Journal (1997), 89 : 45-53

नागराजन, एस. तथा जोशी, एल.एम. : Plant Disease Reporter (1978), 62 : 186-88

अग्रवाल, पी.के. : Indian Agrl. J. of Pl. Bio. (2003), 30 : 189-98

ध्यानी, बी.एल., ए. शर्मा, जे.एस.ए., जुयाल, जी.पी.ए., बाबूराम तथा कटियार, वीएस. : Rice-Wheat consortium paper series 10-New Delhi, India (1997).

अग्रवाल, पी.के. : Indian J. of Agri. Se. (2008), 78 (10) : 911-19

SHODH CHETNA – YEAR-2 (JAN. TO MARCH., 2016) VOL. 1
ISSN : 2350-0441

भारत में भैंस से माँस उत्पादन : एक समीक्षा

❒ एस. पी. वर्मा*

Corresponding Authors : drspverma_kadc@rediffmail.com

शोध सारांश

विश्व में पाई जाने वाली सम्पूर्ण भैसों की संख्या का 90 प्रतिशत से अधिक हिस्सा सिर्फ एशिया महाद्वीप में पाया जाता है एवं एशिया महाद्वीप में पाई जानी वाली भैसों की संख्या का 60 प्रतिशत से अधिक सिर्फ अपने भारत देश में पाया जाता है। अर्थात सम्पूर्ण विश्व की कुल भैसों का आधे से अधिक भाग अपने देश में उपलब्ध है। देश में गोवध एवं गोमाँस खाने के उपयोग में भारत के कई राज्यों में रोक है परन्तु भैंस वध एवं भैंस माँस के उपभोग एवं उपयोग पर देश में किसी भी प्रकार की निषिद्धि नहीं है। पोषण सुरक्षा को देखते हुए भारत की जनसंख्या को पशु प्रोटीन उपलब्ध कराने की दिशा में भैंस के माँस की एक महत्वपूर्ण भूमिका है एवं भविष्य में इसके अत्यन्त विस्तार की सम्भावना है। विदेशी मुद्रा की प्राप्ति हेतु भैंस माँस की माँग इतनी अधिक है कि भारत उस माँग को पूरा करने में अभी तक असमर्थ है। यदि हम भैंस वध करने की वर्तमान दर 3.0 प्रतिशत को नेपाल के भैंस वध करने की दर 23 प्रतिशत के बराबर कर दें तो इसके द्वारा विदेशी मुद्रा अर्जन में 800 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी हो सकती है। ग्रामीण क्षेत्रों में माँस उद्देश्य हेतु भैंस पालन करके देश में गुलाबी क्रान्ति लाई जा सकती है तथा किसानों की आर्थिक स्थिति को कुछ हद तक सुदृढ़ किया जा सकता है।

मुख्य शब्द– पशु प्रोटीन, गुलाबी क्रान्ति, ड्रेसिंग प्रतिशत

प्रस्तावना–

श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा था, ''हे अर्जुन! गोधन संसार में अति उत्तम एवं पवित्रतम है, क्योंकि बिना दही और घी के कोई यज्ञ पूर्ण नहीं हो सकता। गोधन अपने दूध, घी, दही, खाल, चमड़ी तथा हड्डियों, बालों एवं सींगों के द्वारा हमारे लिये उपयोगी है।''

अर्थात् तत्कालीन समय में गोधन से उत्तम कोई धन नही था। प्राचीन काल से ऐसी मान्यता रही है कि जहाँ पशुओं की देखभाल होती है, वहाँ की अर्थव्यवस्था उन्नति करती है। पशुओं को उनके महत्वपूर्ण योगदान के लिये पूजा जाता था। गोवर्धन को प्रोत्साहित करने के लिये ही गो–वध का निषेध किया गया है।

* सह प्राध्यापक (पशुपालन एवं दुग्ध विज्ञान), कुलभास्कर आश्रम पी.जी. कालेज, इलाहाबाद-211001

भैंस का उल्लेख अनके दन्त परिकथाओं तथा प्राचीन ग्रन्थों में मिलता है। अभी भी ग्रामीण क्षेत्रों में किसान के पास अधिक गो पशु विशेष भैंस का होना उसकी समृद्धि का प्रतीक माना जाता है। यद्यपि यह ठीक प्रकार से ज्ञात नहीं है कि भैसों का उद्‌भव अथवा पालतू बनाया जाना कब शुरू हुआ था। फिर भी सिन्धु घाटी की सभ्यता में मिले अवशेषों से चलता है कि भैंस भारत में करीब 4000 साल पहले अवश्य पाली जाती रही है। विशेषज्ञों का अनुमान है कि उस समय में भैंस दूध तथा माँस के लिये पाली जाती थी। तथा भैंस से बोझा ढोने का कार्य बाद में शुरू किया गया था।

विश्व में लगभग 15 करोड़ भैंसे है जिसका 99 प्रतिशत से अधिक भैंसे विकासशील देशों में पायी जाती है। एशिया उपमहाद्वीप भैंसों का प्रमुख केन्द्र है। विश्व की 96.6 प्रतिशत भैंसे एशिया में ही पायी जाती हैं। भैस पालन के दृष्टिकोण से भारत प्रथम प्रथम, चीन द्वितीय, पाकिस्तान तृतीय एवं थाइलैण्ड चतुर्थ स्थान पर है। पूरे विश्व में भैंसों कि कुल संख्या का आधे से अधिक भारत में पाई जाती हैं।

भैंस गर्म जलवायु को भलीभाँति सहन कर जाती है। इसी कारण भैंसों को गर्म देशों में अधिकतर डेयरी विकास के कार्य में प्रयोग किया जाता है। भैंस की लम्बी उम्र एक लाभकारी गुण है जो गाय की तुलना में अधिक उपयोगी सिद्ध होने में सहायक है। भैंस में रोग प्रतिरोधन क्षमता की काफी अधिक होती है।

माँस भोजन का एक महत्वपूर्ण अंग है। यह एक ऐसा आहार है जो गुणकारी होने के साथ–साथ स्वादिष्ट एवं सुपाच्य भी है। माँस शरीर रक्षा के लिये आवश्यक प्रोटीन का उत्तम स्रोत है। माँस शरीर के लिये आवश्यक वसा, खनिज लवण तथा विटामिन की पूर्ति करती है। विशेषज्ञों के अनुसार संसार में 1990 में यह उत्पादन 1. 4 प्रतिशत की दर से बढ़कर 17.76 करोड़ टन हो गया।

सारणी–1 दुनिया में माँस का उत्पादन (करोड़ टन इकाई में)

	1989	**1990**	**1991**	**1993**
सभी प्रकार का मास	17.08	17.52	17.76	18.62
गाय/भैंस से	5.21	5.28	5.30	5.27
भेड़ तथा बकरी से	0.91	0.93	0.93	0.98
सूअर से	6.76	6.95	7.04	7.39
मुर्गा से	3.82	3.98	4.10	4.19
अन्य से	0.38	0.38	0.38	0.78

स्रोत–विश्व खाद्‌य एवं कृषि संगठन

भैंस से माँस उत्पादन–

पुराने समय में तथा आजकल भी ज्यादातर भैंस का माँस बूढ़े जानवरों के वध से प्राप्त होता है जो कि काम करना अथवा दूध देने के लिए अशक्त हो जाती है। यही कारण है कि बाजार में बिकने वाला भैंस का माँस

घटिया किस्म का होता है। परन्तु भैंस को उचित भोजन दिया जाये तथा उत्तम देखभाल का प्रबन्ध किया जाय तो भैंस से भी नर्म तथा खाने में स्वादिष्ट माँस का उत्पादन किया जा सकता है।

भारत में विभिन्न जानवरों से प्राप्त माँस का अनुपात इस प्रकार हैः–

भैंस	20 प्रतिशत
भेड़ तथा बकरी	54 प्रतिशत
मुर्गा	13 प्रतिशत
सूअर	7 प्रतिशत

भारत तथा पाकिस्तान में भैंस का माँस अरब देशों तथा मलेशिया को नियति किया जाता है। भैंस के माँस को अलग–अलग नामों से पुकारा जाता है। जैसे–बफैलों बीफ, काराबीफ, बफन। भैंस के बछड़ों से प्राप्त माँस को बफैलों वील अथवा बफैलों ब्रायलर भी कहा जाता है। भारत में माँस का निर्यात से प्रतिवर्ष करोड़ों रूप की विदेशी म्रुदा प्राप्त होती है। अधिकतर माँस का निर्यात भैंस के माँस का किया जाता है। भारत में 1993 में 3600 वधशालायें थी। इस वधशालाओं में 394 लाख पशु प्रतिवर्ष वध किये जाते थे। भैंस का वध धार्मिक अनुष्ठानों में देवी–देवताओं को प्रसन्न करने के लिये भी किया जाता है। दशहरे के दिन नेपाल की राजधानी काठमांडू में सैकड़ों भैसों की बलि दी जाती है।

सारणी–2 भैसों से माँस उत्पादन

देश	संख्या (दस लाख)	भैंस वध सं0 (दस लाख)	वध पद प्रतिशत
विश्व	148.86	10.67	5.4
एशिया	136.27	9.31	5.8
बांग्लादेश	2.05	0.40	2.0
म्यांमार	1.01	0.12	6.0
चीन	21.39	1.70	8.0
भारत	75.00	2.36	3.0
नेपाल	2.95	0.69	23.0
पाकिस्तान	15.00	2.80	18.0
ईरान	0.23	0.07	28.0
इराक	0.15	0.03	19.0

खाने योग्य माँस प्राप्ति अथवा ड्रेसिंग प्रतिशत–

भैंस में माँस प्राप्ति का प्रतिशत 55–60 है। यह प्रायः भैंस के स्वास्थ्य पर निर्भर करता है साथ ही भैंस के वध पर भी निर्भर करता है। भैंस का वजन प्रतिदिन एक किग्रा तक बढ़ सकता है तथा आहार का माँस में परिवर्तन 5.5 : 1 से 6.5:1 तक हो सकता है।

भैंस माँस के गुण–

गाय के माँस में पाये जाने वाले सभी गुण भैंस के माँस में भी पाये जाते हैं। तुलनात्मक दृष्टि से भैंस व गाय के माँस का विश्लेषण निम्नवत् है ।

सारणी–3 भैंस तथा गाय के माँस का विश्लेषण

गुण	भैंस	गाय
ड्रेसिंग प्रतिशत	59.0	62.2
ड्रेसिंग प्रतिशत खाली पेट	65.5	69.9
रिब आई एरिया (सेमी^{2})	68.4	81.9
परिपक्वता मानक	1.65	1.44
मारबलिंग मानक अंक	2.30	3.76
नमी प्रतिशत	76.00	72.75
प्रोटीन प्रतिशत	20.3	19.21
वसा प्रतिशत	1.6	2.2
खनिज लवण	1.0	1.0
रंग	गहरा लाल	हल्का लाल

भैंस वध से प्राप्त माँस–

यद्यपि भैंस की खाल तथा भैंस का सिर गौ पशु के तुलना में भारी होता है फिर भी उनसे प्राप्त माँस गौ–पशुओं के बराबर ही होता है। ड्रेसिंग प्रतिशत भैंस की नस्ल, आयु, स्वास्थ्य तथा लिंग पर निर्भर करता है। ड्रेसिंग प्रतिशत में काफी भिन्नता पाई जाती है। जैसे कमजोर पशुओं में ड्रेंसिंग प्रतिशत 40 प्रतिशत तक हो सकता है। जबकि 18 माह के मोटे भैसों में ड्रेसिंग प्रतिशत 60 प्रतिशत तक पाया जाता है।

सारणी–4 विभिन्न भैंसा में ड्रेसिंग प्रतिशत

	भैसों का प्रकार/स्थान	ड्रेसिंग प्रतिशत
1.	आस्ट्रेलिया की दलदली प्रजाति की भैंस	53%
2.	ब्राजील की उष्ण कटिबन्धीय भैंस	55.5%

गायों में ड्रेसिंग प्रतिशत भैंस की तुलना में लगभग 3 प्रतिशत ज्यादा है। भैंस के माँस से विभिन्न प्रान्तों में अलग–अलग व्यंजन बनाये जाते हैं। भैंस के माँस से कश्मीर में बनने वाला व्यंजन मोस्तावा, रिश्ता तथा नतेयग्नि समूचे विश्व में विख्यात है। सामान्यतः भैंस के माँस से कवाब कोफ्ता या ट्रिक्की बनाये जाते हैं।

भैंस वध से प्राप्त उपउत्पादों का प्रयोग–

रक्त में काफी मात्रा में प्रोटीन होती है। भैंस के वध से औसतन 10–15 किग्रा0 रक्त प्राप्त होता है। रक्त को ठीक तरह से संग्रह व संरक्षण करके उससे औषधियाँ एवं जैव रसायन बनाये जाते हैं। रक्त से प्लासमा, सीरम, एलब्युमिन, रक्त चूर्ण तथा हिमैटोबिक्स रसायन बनाया जाता है। रक्त से प्राप्त प्लाज्मा के द्वारा फिब्रिन चूर्ण तैयार किया जाता है। जिसका प्रयोग शल्य चिकित्सा में रक्त स्राव को रोकने के लिये किया जाता है :–

1. अग्नाशय की बिटा कोशिका से इंसुलिन प्राप्त किया जाता है। भैंसों के प्रति किलोग्राम अग्नाशय से 326 मिली0 इसुलिन क्रिस्टल के रूप में प्राप्त होती है।
2. रक्तालपता में जलीय तथा प्रोटीन रहित यकृत निष्कर्ष का प्रयोग किया जाता है।
3. अक्टुग्रन्थि से थाइराक्सिन श्रावित होता है। इस ग्रन्थि में 0.17 से 0.23 प्रतिशत आयोडीन होता है। इस ग्रन्थि से थाइराक्सिन की प्राप्ति 0.125 प्रतिशत होती है।
4. भैंसों में मस्तिष्क के आधार पर पाई जानी वाली छोटी से पीयूष ग्रन्थि का भार 1–1.5 ग्राम तक होता है। इस ग्रन्थि से हार्मोन प्राप्त किया जाता है।
5. अधिवृक्क ग्रन्थियों से भैंस में 1.83 और भैंस में 1. 81 प्रतिशत एड्रेनलिन होता है। जल या अम्लीकृत एल्कोहल से अधिवृक्क ग्रन्थि को निष्कर्षित करके नाइट्रोजन के वातावरण में एड्रेनलिन प्राप्त कर लिया जाता है। एड्रेनलिन का उपयोग दमा रोगियों को ठीक करने में किया जाता है।

अंततः हम कह सकते हैं कि भैंस के माँस की उपलब्धता, उपयोगिता तथा माँग को देखते हुए इसके, उत्पादन में अपार सम्भावनाएँ हैं। भैंस के उत्पादन सम्बन्धी क्रान्ति को वैज्ञानिकों ने पिंक रिवोल्युशन अर्थात गुलाबी क्रान्ति की संज्ञा दी है।

संदर्भ

1. चोपड़ा, एस0सी0 एवं जिन्दल, एस0के0 (2014) भैंस पालन, कृषि प्रबन्ध निदेशालय, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली।
2. तनेजा, बी0के0, नागरशंकर, आर एवं भट्ट, पी0एन (2010) गौ पशु एवं भैंस प्रजनन (हैंडबुक ऑफ एनिमल हस्बैन्ड्री भाग–1) कृषि ज्ञान प्रबन्ध निदेशालय, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली।
3. जगदीश प्रसाद (2001) एनिमल हस्वैन्ड्री एण्ड डेरी हस्वैन्ड्री कल्याणी पब्लिशर्स, राजिन्दर नगर, लुधियाना।

SHODH CHETNA – YEAR-2
(JAN. TO MARCH, 2016) VOL. 1

ISSN : 2350-0441

ग्रामीण क्षेत्रों से कौशल पलायन का ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर आर्थिक प्रभाव

❒ डॉ. जे.पी. सिंह*

शोध सारांश

प्रस्तुत शोध पत्र अलीगढ़ जनपद पर आधारित है। इस शोध में ग्रामीण क्षेत्रों से होने वाले कौशल पलायन के ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर पड़ने वाले आर्थिक प्रभावों का विश्लेषण किया गया है। ग्रामीण क्षेत्रों से कौशल पलायन एक बड़ी समस्या है। बड़ी संख्या में कारीगर, दस्तकार, कलाकार तथा कला कौशल से सम्बन्धित व्यक्ति विभिन्न सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, मनोवैज्ञानिक, राजनैतिक कारणों से गाँव छोड़कर शहरों की ओर रुख कर लेते हैं जिसका ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर गम्भीर प्रभाव पड़ा है। ग्रामीण अर्थव्यवस्था में कुटीर उद्योग व लघु उद्योग का महत्व भारत में प्राचीन काल से रहा है।

प्रस्तावना

ग्रामीण अर्थव्यवस्था स्वयं एक आत्मनिर्भर तथा स्वावलम्बी अर्थव्यवस्था थी परन्तु दो सौ वर्षों के अंग्रेजों के गुलामी शासन काल में ग्रामीण अर्थव्यवस्था को नष्ट भ्रष्ट कर दिया गया। कुटीर एवं लघु उद्योग नष्ट हो गये और उनमें काम कर रहे कुशल कारीगर एवं दक्ष दस्तकार योग्य शिल्पकार मजबूरी वश आय व रोजगार की तलाश में गाँवों से शहरों की ओर पलायन कर गये। स्वतंत्रता के पश्चात भी कुटीर एवं लघु उद्योगों तथा कला कौशल ग्रामीण क्षेत्रों में विकसित करने के लिये जरूर प्रयास हुए। परन्तु इन प्रयासों का भी विशेष परिणाम नहीं निकला। कौशल पलायन के ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर पढ़ने वाले आर्थिक प्रभावों का विश्लेषण निम्न प्रकार किया जा सकता है–

- ग्रामीण अर्थव्यवस्था में कौशल की कमी।
- ग्रामीण अर्थव्यवस्था का स्वावलम्बन में कमी।
- ग्राम क्षेत्रों में आय में कमी।
- ग्रामीण क्षेत्रों की श्रमशक्ति में कमी।
- ग्रामीण विकास की उपेक्षा।
- वस्तुओं के उपभोग में अनावश्यक वृद्धि।
- ग्रामीण क्षेत्रों का आर्थिक पिछड़ापन।

ग्रामीण अर्थव्यवस्था में कौशल की कमी

ग्रामीण क्षेत्रों में कौशल पलायन का प्रत्यक्ष प्रभाव यह पड़ता है कि ग्रामीण क्षेत्रों में काम करने वाले कुशल कारीगर दसतकारों, कलाकारों की कमी हो जाती है। ग्राम समाज के बहुत सारे कार्यों में उनका योगदान महत्वपूर्ण होता है जो उनके गाँव छोड़कर चले जाने की वजह से प्रभावित होते हैं। अध्ययन क्षेत्र अलीगढ़ जनपद के ब्लाक गंगीरी व बिजौली के चयनित ग्रामों में ग्रामीण कारीगर, दस्तकार, कलाकार

* एसो. प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग, डी.एस. कालेज, अलीगढ़ (उ.प्र.)

तथा विलेन कला कौशलों के जानकार लोगों की कमी से उत्तम कोटि की वे ग्रामीण वस्तुएँ आसानी से उपलब्ध हो जाती थीं अब नहीं हो पाती हैं। चयनित ग्राम सिरसा में 5– परिवार दरी बनाना का काम करते थे। आज मात्र एक परिवार ही रह गया है, जो इस कार्य को कर रहा है। इस परिवार के मुखिया ने साक्षात्कार में बताया कि उसे पर्याप्त मजदूरी न मिलने से और कानून व्यवस्था खराब होने से कब ग्राम छोड़ना पड़ जाय उसका भरोसा नहीं है। ग्राम तरैची में रस्सी बनाने वाले 15 परिवार थे, जो क्षेत्र की रस्सी की जरूरत पूरी करते थे। क्षेत्रवासियों को आसानी से रस्सी उपलब्ध हो जाती थी लेकिन आज 4–5 परिवार ही इस कार्य को करते हैं। बाकी परिवार ग्राम छोडकर शहरों की ओर पलायन कर गये। उदित के नगला से कुम्भकार कला से सम्बन्धित 20 परिवार थे आज वहाँ मात्र 2 परिवार इस कार्य को करते हैं।

विकास खण्ड बिजौली के ग्राम सिरसा रहने वाले धोबी परिवार जिनकी संख्या 10 थी जो पूरे वर्ष भर लोगों को कपड़े साफ करके फलफ लगाने व प्रैस करते थे। 8 परिवारों ने यह कार्य छोड़ दिया तथा 4 परिवार शहरों की ओर पलायन कर गये। साक्षात्कार में शोधार्थी को बताया कि ग्रामीण क्षेत्र में कपड़े धोने की मशीनों का आवगमन तथा तालाय, पोखरो पर अवैध ा कब्जे तथा टेरीकोट कपड़े का चलन आदि में उसके काम को कम कर दिया है। ग्राम अटा में तेली दो परिवार ने बैल काल्हू से तेल निकालना बन्द कर दिया, ग्राम में एक्सपेलर का प्रयोग होने से वह परिवार शहर जो पलायन गया गया। अधिकांश इन कार्यों को छोड़ कर ये परिवार पास के कस्बों छर्रा, अतरौली, दादों तथा अलीगढ़ आदि में जा कर बस गये।

ग्राम शेखूपुर में 6 परिवार पशुओं की खाल से वस्तुएं निर्मित करते थे। इनके द्वारा निर्मित माल की मांग न होने के कारण इन परिवारों ने यह कार्य छोड़ दिया। ग्राम तरैथी में नाई जाति के 10 परिवार नाईगिरी का काम करते थे। अब ग्राम में 5 परिवार इस कार्य को करते हैं तथा 5 परिवार मजदूरी व अन्य कार्य करते हैं। विकास खण्ड गंगीरी चयनित ग्राम परौरा, फुसावली दतावली में 15 परिवार रूई धुन कर रजाई गददा भरने का कार्य करते थे। इन परिवारों में मात्र दो परिवार इस कार्य को करते हैं। शेष परिवारों ने इस कार्य को छोड़ दिया। इसका मुख्य कारण रूई धुनने की मशीन का आगमन होना है। ये हताश परिवार मजदूरी करके अपना भरण पोषण कर रहे हैं।

ग्रामीण अर्थव्यवस्था के स्वावलम्बन में कमी

अंग्रेजों के आने से पहले उ०प्र० की ग्रामीण अर्थव्यवस्था स्वयं आत्मनिर्भर स्वावलम्बी और स्वतंत्र थी। गाँव की जरूरतें गाँव के कारीगर दस्तकार पूरी करते थे ग्राम के लोगों को अपने आवश्यकता की वस्तुएँ शुद्ध एवं उचित मूल्यों पर मिल जाती थी। ग्राम का अपना जीवन खुद में आत्मनिर्भर रहकर आर्थिक रूप से खुशहाल था परन्तु अंग्रेजों ने इस ग्रामीण अर्थव्यवस्था की मजबूती को अपने स्वार्थों के वश अपने व्यापारिक हितों की पूर्ति के लिये भंग कर दिया। इंग्लैण्ड की मिलों के बने कपड़े बेचने के लिये ग्रामीण बुनकरों को परेशान किया गया। उनका मोटा कपड़ा मिल के महीन कपड़े के आगे टिक नहीं सका और उसे टिकने भी नहीं दिया गया। किसानों को खाद्यान्न खेती की जगह नील की खेती के लिये दबाव डाला गया। जिससे इंग्लैण्ड की मिलो को नील मिल सके किसान बदहाल, लाचार और भुखमरी की स्थिति में पहुँच गया, जिससे जुड़ा हुआ ग्रामीण कारीगर, दस्तकार, कलाकार, कौशलकार आदि भी बर्बाद हो गया। इस तरह ग्रामीण अर्थव्यवस्था को चौपट कर दिया गया तथा ग्रामीण अर्थव्यवस्था स्वावलम्बी की स्थिति की बजाय वह पराधीन हो गयी।

स्वतन्त्रता के पश्चात सरकार का ध्यान ग्राम के विकास पर गया। कुटीर व लघु उद्योग विकास लिये विभिन्न बोर्ड व आयोग बनाये गये जिनसे ग्रामीण अर्थव्यवस्था को थोड़ी राहत मिली। परन्तु अभी भी ग्रामीण अर्थव्यवस्था उस दौर में नहीं पहुँच सकी है जिससे उसे आत्मनिर्भर व स्वावलम्बी कहा जा सके।

वर्तमान वैश्वीकरण व उदारीकरण की नीतियों ने भी ग्रामीण अर्थव्यवस्था को उपेक्षित किया है और ग्रामीण कुटीर उद्योग से सम्बन्धित कलाकार, हस्तकार, कारीगर संकट की स्थिति में हैं।

ग्रामीण क्षेत्रों में आय में कमी

कौशल पलायन ने जहां ग्रामीण क्षेत्रों से कौशल कारीगरों, दस्तकारों, कलाकारों, कौशलकाकरों आदि की कमी से जिन परिवारों में कौशल पलायन हुआ उन परिवारों की आय में स्वाभाविक रूप से कभी आयी क्योंकि उनके परिवार से हुनरमन्द व्यक्ति चले गये। परिवार के सामने दोहरा सकट खड़ा हो गया। एक ओर उनका व्यक्ति परिवार से चला गया और दूसरी ओर उसके द्वारा जो कुछ आय अर्जित की जाती थी।

संयुक्त परिवार में एक विशेष प्रकार की मजबूती रहती है। उसमें कमी आई है। जाने वाला व्यक्ति प्रारम्भ में परिवार को ग्राम में छोड़ कर गया जिससे पालन पोषण की जिम्मेदारी ग्रामीण परिवारों ने उठाई। व्यय बढ़ गया, आमदनी घट गयी। इससे बच्चों की शिक्षा पर भी विपरीत असर पड़ा। क्योंकि जिम्मेदारी व्यक्ति के जाने से बच्चों पर नियंत्रण नहीं रहता है।

ग्रामीण क्षेत्रों में श्रमशक्ति की कमी

कौशल पलायन का दुष्परिणाम को ग्रामीण अर्थव्यवस्था को झेलना पड़ा। ग्रामीण अर्थव्यवस्था में निरन्तर कौशल पलायन होने से कुशल श्रमशक्ति की कमी अनुभव की जाने लगी। ग्रामीण क्षेत्रों के लोगों ने शोधकर्ता को बताया कि उन्हें अपने खेत– खलिहानों से सम्बन्धित बहुत सारे कार्यों को करने के लिये जो पहले ग्राम में ही सम्पन्न हो जाते थे, जैसे लुहार से सम्बन्धित कार्य, बढ़ई से सम्बन्धित कार्य, डलिया, रस्सी आदि। इन कार्यों के लिये उन्हें आज शहर जाना पड़ता है जिसमें समय व धन की बर्बादी होती है तथा ग्राम देहात के काम भी पिछड़ जाते हैं। यह भी अनुभव में आया है कि जो परिवार गाँव से पलायन करता है, वह अपने साथ–साथ अपने परिवार/खानदान के दूसरे लोगों को भी ग्राम छोड़ने के लिये सुझाव देता है, जिसका निश्चित प्रभाव पड़ता है। स्थिति यह है कि गाँव में कुशल श्रमिकों की विशेष कमी हो गयी है। ग्रामीण व्यक्ति रोजगार व अन्य कारणों की वजह से शहरों की ओर पलायन करते हैं।

अलीगढ़ जनपद के ग्रामीण क्षेत्रों से भारी मात्रा में कौशल पलायन नोयडा, फरीदाबाद गुडगाँव, दिल्ली, गाजियाबाद, पलवल औद्योगिक नगरों के लिये हो रहा है।

ग्रामीण विकास की उपेक्षा

कौशल पलायन का प्रभाव ग्रामीण क्षेत्रों के विकास पर पड़ा है। ग्रामीण क्षेत्रों में जब पढ़े लिखे एवं कुशल व्यक्ति ग्राम से शहर की ओर पलायन करते हैं इनका प्रभाव इस रूप में आया है कि ग्राम में ग्राम की समस्याओं को सही रूप में उठाने वाले व्यक्तियों का अभाव होने से समस्याओं का निदान नहीं हो पाता। अशिक्षा, पिछड़ापन, और जाहिलपन का फायदा गाँव के चतुर चालाक व्यक्ति अपने व्यक्तिगत लाभ के लिये करते हैं। उन्हें ग्राम के विकास से कोई लेना देना नहीं है। यह युग लोकतंत्र का है जो समुदाय संगठित होकर अपनी आवाज उठाता है उसकी जायज मांग पूरी होती है और कमी–कभी नाजायज बातों को भी जनप्रतिनिधि तथा सरकार पूरा करती है। जिसका एक उदाहरण किसान यूनियन है जो एक जायज तथा नायजाज भाँगों कोदबाव बनाकर मनवाना चाहते हैं। नाली खरंजा, विद्युतीकरण शिक्षा की अव्यवस्था, चिकित्सा की अव्यवस्था, स्वच्छता जैसे विकास के मुद्दे छोड़कर जातिवाद, राजनीति, गाँव के विकास में अवरोध बनी हुई है और इसके पीछे बड़ा कारण यह है कि ग्रामीण समाज के चुद्धजीवी एवं कुशल व्यक्तियों का ग्रामीण क्षेत्रों से पलायन से सरकार की अनेक योजना का लाभ ग्राम प्रधान और उनसे सांठगांठ रखने वाले व्यक्ति लेते हैं। बाकी अधिकांश लोग विकास से वंचित रहते हैं।

वस्तुओं के उपभोग में अनावश्यक वृद्धि

ग्रामीण क्षेत्रों में हाल के वर्षों में अनावश्यक वस्तुओं के उपयोग में वृद्धि हुई है। शहरों से आने वाले ग्रामीण परिवारों के सदस्य उन्हें शहरी सुख सुविधाओं की वस्तुओं

से परिचित कराते हैं। टी०वी० चौनलों के माध्यम से तरह तरह की सामग्री की जानकारी अपने घरों में बैठे मिलती है। वे भी शहरी वस्तुओं के आकर्षण में उन वस्तुओं को अपना रहे हैं जिनकी उन्हें आवश्यकता नहीं है। इससे भी ग्रामीण दस्तकारों, कौशलकारों, कारीगरों की कलाओं का महत्व घटा है। ग्रामीणों का अपनी लोक संस्कृति से अपने ग्रामीण जुड़ाव से दूरी बढ़ी है। ग्रामीणों की नई पीढ़ी जमीनी सोच से दूर हट गयी हैं। साइकिल पर ग्रामीण युवक को चलना बुरा लगता है उसे फर्राटेदार गाड़ी की जरूरत है। ग्रामीणजन बैलगाड़ी या ''तांगे से चलना पसन्द नहीं करते, उन्हें इंजन से चलने वाली जुगाड़ अच्छी लगती है। भले ही वह भारी प्रदूषण ग्रामीण क्षेत्रों में करती हो। घड़े सुराही की जगह फ्रीज ग्रामीण घरों में जगह बना रहा है परन्तु कुम्हार बेकारी तथा बदहाली का शिकार होता जा रहा है। मिट्टी व लकड़ी के खिलौने के स्थान पर प्लास्टिक के चीन देश से आये खिलौने पसन्द है। इस स्थिति में ग्राम के कुम्हार, बढई गाँव छोड़ने को विवश हैं।

खादी का बना हुआ कुर्ता पाजामा और खादी के कपड़े नेतागिरी का बाना बनकर रह गये हैं। ग्रामीणजन टेरीकोट, टेरीलिन की ओर भागते हैं। छाछ की जगह ग्रामीणजनों को समारोह में कोकोकोला बाँटते देखा जा सकता है। ढाक के पत्तों की पत्तल की जगह प्लास्टिक पत्तलों ने जगह ले ली है। उस स्थिति में यह कारीगर आखिर जाये तो कहाँ जायें।

गुड़ के स्थान पर चीनी का प्रयोग सर्वत्र हो रहा है। एक समय था जब चीनी व चाय डालडा का उपयोग करने वाले को हेय दृष्टि से देखा जाता था। आज यही चीजें सम्मान पा रही है। ग्रामीण अशिक्षितजनों की नकल करने की प्रवृत्ति अनावश्यक वस्तुओं के उपयोग को बढ़ावा दे रही है।

ग्रामीण क्षेत्र का आर्थिक पिछडापन

कौशल पलायन से ग्रामीण क्षेत्रों में विकास की जगह पिछड़नेपन ने ले ली है। अंग्रेजों से पूर्व ग्रामीण अर्थव्यवस्था खुद में सम्पन्न थी। ग्रामीण कारीगर दसतकार, कौशलकार, शिल्पकार, कलाकार, कुम्हार, बढ़ई, लुहार, मूर्तिकार अन्य कलाकार अपनी कलाओं के माध्यम से अच्छी आय प्राप्त कर लेता है और वे गाँव के सम्पन्न उद्यमी कहलाते थे। उन्हें वर्ष भर रोजगार मिलता था दूर–दूर के लोग उनके पास काम के लिये आते थे। अंग्रेजों को यह रास नहीं आया, ग्रामीण उद्यमी, लघु उद्यमी को बेकार किया और यहाँ तक हुआ कि बुनकरों के अंगूठे तक भी कटवा दिये जिससे वे करघा न चला सके जिससे इंग्लैण्ड के कारखाने चलते रहें। इन हालातों में ग्रामीण कारीगर ग्रामों को छोड़ने के लिये विवश हुये। शहरों में काम की तलाश में गये। वहाँ भी उनके साथ न्याय नहीं हुआ।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1 अजीज, अब्दुल, द रूरल पुअर – प्रोब्लम्स एण्ड प्रोस्पेक्टस'' आशीष पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली (1983)

2. गौड, के०डी० व सिंह, अनिल कुमार, ''इकॉनोमिक्स ऑफ एग्रो इण्डस्ट्रीज सनराइज पब्लिकेशन, 2008

3. घोष, बी०एन०: ''इकॉनोमिक डेवलपमेंट एण्ड सोशल चेन्ज''. 1986

4. दत्तचन्द्र, ''विकास गरीबी और समता'', रीगल पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2009

5. मदन, जी०आर०, ''इण्डियास डेवलपिंग विलेजेज, प्रिन्ट हाउस (इण्डिया), लखनऊ, 1983

6 वर्मा, उदय कुमार, रहमान, एम०एम० व चौहान, पूनम एस०, ''इम्पॉवरिंग रूरल वर्कर्स सनराइज पब्लिकेशन, लक्ष्मी नगर, नई दिल्ली, 2005

7. सिंह, पूनम, ''ग्रामीण निर्बल वर्गों के उत्थान में बैंकों का योगदान साहित्य संस्थान, गाजियाबाद, 2002

8. सिंह, वीरेन्द्र, ''उत्तर प्रदेश विस्तृत अध्ययन, अरिहन्त पब्लिकेशन (इ०) प्राव लिव, मेरठ, 2007